अच्छी बातें अच्छे काम

मतीन तारिक़ बाग़पती

विषय सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो बे-इन्तिहा मेहरबान और निहायत रहमवाला है"

(1)
बुनियादी बातें

सबसे अच्छी और सच्ची बात

दुनिया की सबसे अच्छी बात जो हो सकती है, वह यह है कि आदमी अपनी ज़बान से यह कहे और दिल से इक़रार करे—

لَاإِلٰهَ إِلَّا اللّٰهُ

'ला इला-ह इल्लल्लाह'

"अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं।"

और सच पूछिए तो सबसे सच्ची बात भी यही है कि अल्लाह के सिवा इस कायनात (जगत) का कोई पैदा करनेवाला और मालिक नहीं है। वह सबसे महान और सबसे बड़ा है, वह कभी न ख़त्म होनेवाले ख़ज़ानों और क़ुव्वतों का मालिक है, उसकी बराबरी का कोई नहीं और हमें भी उसी ने पैदा किया है, हम हर तरह उसके मुहताज और ज़रूरतमन्द हैं। फ़ायदा और नुक़सान, ज़िन्दगी और मौत, इज़्ज़त और रुसवाई सब उसी के हाथ में है। उसका हुक्म न हो तो कोई ज़र्रा बराबर न फ़ायदा पहुँचा सकता है और न ही नुक़सान। वह देना चाहे तो कोई रोक नहीं सकता, वह छीनना चाहे तो कोई बचा नहीं सकता। मतलब यह कि हर चीज़ का वही मालिक है। हम अगर अपनी हस्ती पर ग़ौर करें तो यह बेहतरीन जिस्म, ये निहायत मुनासिब अंग, यह सधा जिस्म और डील-डौल, ये सधे हुए हाथ और पाँव, ये आँख, नाक और कान, बोलती हुई ज़बान और यह अजीबो-ग़रीब सलाहियतों का

ख़ज़ाना दिमाग़। क्या हमने इन सबको ख़ुद बनाया है या हमारे माँ-बाप ने इन्हें बनाया है या किसी नबी या वली (बुज़ुर्ग) या देवता में यह क़ुदरत थी कि इन्हें बनाता? फिर इस निहायत मुनासिब जिस्म की परवरिश और उसके पलने-बढ़ने के लिए कैसी चीज़ें पैदा की हैं। कहीं ग़ल्ले (अनाज) और तरकारियाँ उग रही हैं, कहीं दूध और शहद की पैदावार है, कहीं नमक, मिर्च-मसाले, खाने को मज़ेदार बनाने के लिए पैदा कर दिए हैं, जो हम तक मुसलसल पहुँच रहे हैं और उनका सिलसिला कभी टूटने नहीं पाता। फिर बारिश, धूप और हवा को कितनी अधिक मात्रा में बेहिसाब तरीक़े से इधर से उधर तक बग़ैर किसी मेहनत के मुहैया कर दिया है।

इन सब नेमतों और ज़िन्दगी की ज़रूरी चीज़ों को देखकर अब हमें पक्का इरादा करना है कि—

जब उसने हमें पैदा किया है, हम उसी का दिया हुआ खा रहे हैं, उसी की हवाओं में साँस ले रहे हैं और उसी की ज़मीन पर रह रहे हैं तो फिर हमारा फ़र्ज़ (कर्तव्य) है कि हम बन्दगी भी उसी की करें। किसी और को उसका साझीदार न ठहराएँ और न किसी दूसरे की बन्दगी करें।

इसलिए कि वह अकेला है, तमाम अच्छे गुणों का मालिक है, तमाम ख़ूबियों का सरचश्मा (स्रोत) है और हर तरह की क़ुदरत रखता है। जब हमें यक़ीन हो गया है कि ख़ुदा एक है, उसके अलावा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं है, उसका कोई साझीदार नहीं है। हमारी कोई बात उससे छिपी नहीं है। वह बड़ी ताक़त और क़ुदरतवाला है, वह मारता और जिलाता है, संसार की हर चीज़ उसकी मुहताज है और वह ख़ुद हर कमज़ोरी और ऐब से पाक-साफ़ है। वह अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) पर सबसे ज़्यादा मेहरबान है, तो फिर हमें सिर्फ़ उसी की इबादत भी करनी चाहिए।

यह भी हम इनसानों पर उसकी बड़ी मेहरबानी है कि उसने पहले दिन से ही ऐसे लोग दुनिया में भेजे जिन्होंने सारे इनसानों को तौहीद (एकेश्वरवाद) और ख़ुदापरस्ती की तरफ़ बुलाया और जीवन व्यतीत करने का वह तरीक़ा बताया जो सीधा और सच्चा है और ख़ुद उसे भी पसन्द है। ये वे लोग हैं

जिन्हें हम नबी या रसूल (पैग़म्बर) कहते हैं। दुनिया में कोई क़ौम, कोई देश ऐसा नहीं जहाँ ख़ुदा की तरफ़ से उसके नबी या रसूल न आए हों और आख़िर में उसी ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अपना रसूल और पैग़म्बर बनाकर संसार में भेजा। नबी (सल्ल॰) ने भी लोगों को वही बातें बताईं जो नबी (सल्ल॰) से पहले भेजे गए नबी और रसूल बता चुके थे। इसलिए अब हिदायतवाला होने के लिए ज़रूरी है कि हर इनसान नबी (सल्ल॰) की पैरवी करे और ज़बान और दिल से भी इक़रार करे—

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ

'ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'

"अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं है, हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं।"

नबी (सल्ल॰) को अल्लाह ने क़ियामत तक के लिए और सारी दुनिया के लिए पैग़म्बर बनाकर भेजा है। नबी (सल्ल॰) के ज़रिए अल्लाह ने दीन को मुकम्मल कर दिया। नबी (सल्ल॰) जिन बातों की पैरवी का हुक्म देते हैं, वे ख़ुदा की तरफ़ से दिए हुए आदेश होते हैं। इस्लाम में दाख़िल होने के बाद हमारी ज़िम्मेदारी (कर्तव्य) है कि हम हर उस हुक्म के आगे सिर झुका दें, जिनके बारे में हमें मालूम हो जाए कि यह हुक्म अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने दिया है और हर उस बात से दूर रहें, जिसके बारे में यह मालूम हो जाए कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इससे रोका है। किसी चीज़ को उस वक़्त तक क़बूल न किया जाए जब तक यह न मालूम हो जाए कि वह अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के लाए हुए दीन और उनके तरीक़े के मुताबिक़ है। यही वह चीज़ है जिसे ईमान (आस्था) की जड़ कहा जाता है। जिसकी तफ़सील (व्याख्या) नबी (सल्ल॰) ने बयान करते हुए कहा—

"ईमान के सत्तर हिस्से हैं उनमें सबसे अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) 'अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं है, हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के पैग़म्बर हैं' है और सबसे छोटी बात रास्ते में से कोई तकलीफ़ देनेवाली चीज़ हटा देना है। शर्मो-हया भी ईमान का हिस्सा है।

बाक़ी ईमान की बातें ये हैं—

- अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) पर सच्चे दिल से ईमान लाना।
- यह अक़ीदा (आस्था) रखना कि सारी मख़लूक़ अल्लाह की पैदा की हुई है।
- फ़रिश्तों पर यक़ीन रखना।
- सभी आसमानी किताबों को सच मानना, अलबत्ता हुक्म कुरआन का ही माना जाएगा।
- सब पैग़म्बरों को सच्चा मानना लेकिन अब सिर्फ़ प्यारे नबी (सल्ल॰) के तरीक़े की पैरवी की जाएगी।
- यह यक़ीन करना कि अल्लाह को सब बातों का इल्म (ज्ञान) है।
- इस बात पर पूरा यक़ीन रखना कि क़ियामत ज़रूर आएगी।
- जन्नत को मानना।
- दोज़ख़ (नरक) को मानना।
- अल्लाह तआला से मुहब्बत रखना।
- हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से मुहब्बत रखना और बग़ैर कुछ बोले उनकी पैरवी करना।
- किसी से मुहब्बत या दुश्मनी सिर्फ़ अल्लाह ही के लिए करना।
- हर काम दीन (धर्म) के लिए करना। यानी हर काम ख़ुदा के हुक्म के मुताबिक़ किया जाए और हर काम में ख़ुदा की ख़ुशनूदी (प्रसन्नता) नज़र के सामने हो।
- गुनाहों पर पछतावा।
- ख़ुदा से डरना।
- ख़ुदा की रहमत की उम्मीद रखना।
- शर्मो-हया करना।

- अल्लाह की नेमतों का शुक्र अदा करना।
- अहद (वादा) पूरा करना।
- सब्र (धैर्य) करना।
- विनम्रता अपनाना।
- तमाम जीवधारियों पर रहम (दया) करना।
- खुदा पर भरोसा करना।
- जो कुछ खुदा की तरफ़ से हो, उस पर राज़ी (प्रसन्न) रहना।
- अपनी किसी ख़ूबी (गुण) पर न इतराना।
- किसी से कीना (छल-कपट) न रखना।
- हसद (ईर्ष्या) न करना।
- घमण्ड न करना।
- किसी का बुरा न चाहना।
- दुनिया से मुहब्बत न करना।
- कुरआन की तिलावत करना।
- इल्म सीखना।
- इल्म सिखाना।
- दुआ करना और अल्लाह ही से हर चीज़ माँगना।
- अल्लाह का ज़िक्र (गुणगान) करना।
- बेकार की बातों से बचना।
- पाक-साफ़ रहना।
- कलिमा पढ़ना।
- नमाज़ का पाबन्द होना।
- ज़कात देना।
- रोज़ा रखना।

- हज करना।
- ऐतिकाफ़ में बैठना।
- खुदा की मन्नत पूरी करना।
- सही क़सम पूरी करना।
- सतर (शरीर के वे अंग जिनको ढकना अनिवार्य है) ढकना।
- टूटी हुई क़सम का कफ़्फ़ारा देना।
- कुरबानी करना।
- मुर्दे को कफ़न देना।
- क़र्ज़ हो तो उसको अदा करना।
- लेन-देन में इस्लामी नियमों का पालन करना।
- सच्ची गवाही देना।
- निकाह करना।
- हक़ों को अदा करना।
- माँ-बाप को आराम देना।
- औलाद की अच्छी परवरिश करना।
- रिश्तेदारों से अच्छा बर्ताव करना।
- मालिक की आज्ञा का पालन करना।
- इनसाफ़ करना।
- मुसलमानों की जमाअत से अलग कोई तरीक़ा नहीं निकालना।
- हाकिम की ताबेदारी करना, इस शर्त के साथ कि शरीअत के ख़िलाफ़ न हो।
- लड़ने-झगड़नेवालों में सुलह कराना।
- नेक काम में मदद करना।
- नेक और सीधा रास्ता बताना और बुरे रास्ते पर चलने से रोकना।

- इस्लामी हुकूमत हो तो शरीअत के मुताबिक़ सज़ा देना।
- इस्लाम की राह में तन-मन-धन के साथ जिद्दो-जुहद करना।
- अमानत अदा करना।
- ज़रूरतमन्दों को कर्ज़ देना।
- पड़ोसी का ख़याल रखना।
- हलाल (वैध) आमदनी तलाश करना।
- रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ें जैसे काँटे, कीलें, काँच के टुकड़े इत्यादि हटा देना।

ईमान की सभी बातें अच्छी हैं। अगर उन पर पूरी तरह अमल किया जाए तो ज़िन्दगी में खुशगवार वातावरण बन सकता है। लेकिन चूँकि हर आदमी के पीछे शैतान लगा हुआ है इसलिए उसके जाल में फँसकर बहुत से लोग अल्लाह को छोड़ देते हैं और दूसरों से मुरादें माँगते हैं। पत्थर की बेजान चीज़ों के सामने माथा टेकते हैं। पीरों और फ़क़ीरों के नाम के रोज़े रखते हैं। क़ब्रों को सजदा करते हैं और उन पर चढ़ावा चढ़ाते हैं।

सच बात यह है कि दुनिया की हर चीज़ को पैदा करनेवाला सर्वशक्तिमान अल्लाह है और वह अपनी शान में इतना बड़ा है कि उससे बड़ा कोई भी नहीं। वह इस बात का मुहताज नहीं है कि कोई उसकी तारीफ़ करे। अगर हम उसकी प्रशंसा करते हैं तो इसमें खुद हमारा ही फ़ायदा है। उसके बताए हुए तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ारने में भी हमारा ही फ़ायदा है। इसलिए फ़ायदे के तरीक़े पर अमल करना चाहिए जो इस कलिमे, 'ला इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' यानी "अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं है, हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं" का हासिल है। और हमारे तमाम कर्मों, अख़लाक़ और ज़िन्दगी की व्यवस्था की बुनियाद है। अगर हम पूरे विवेक और समझ के साथ इस 'कलिमे' को दिल से मान लें तो इससे न सिर्फ़ ज़ेहनी व दिल की सजगता हासिल होगी बल्कि ज़िन्दगी की काया पलट जाएगी और हमारे सारे विचार, ख़याल और कर्म सही हो जाएँगे।

हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से पूछा कि ईमान क्या है? नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जब तुम को अपने अच्छे अमल से ख़ुशी हो और बुरे काम से रंज और दुख हो तो मोमिन हो।" (हदीस : मुसनद अहमद)

ऊपर की लाइनों में अच्छे कामों का ज़िक्र आ चुका है। उनको मानने और अंजाम देने के बाद ख़ुशी हासिल होना ईमान की अलामत है और उसके ख़िलाफ़ दीन का जो काम भी हो जिसके न करने से रंज और अफ़सोस हो तो वह भी इस बात की तरफ़ इशारा है कि दिल में ईमान की चिंगारी मौजूद है।

नबी (सल्ल॰) की पैरवी

अल्लाह अपनी मख़लूक़ (सृष्टि) पर बहुत ज़्यादा मेहरबान है। वह नहीं चाहता कि इनसान, जिसको उसने अपना ख़लीफ़ा (नायब) बनाया है, गुमराह हो और शैतान को उस पर हँसने का मौक़ा मिले। इसलिए जब भी कभी उसने ग़लत रास्ता अपनाया और ख़ुदा के क़ानून को तोड़ा, उसने उनकी हिदायत (मार्गदर्शन) के लिए अपने रसूल भेजे। ये रसूल (पैग़म्बर) हर ज़माने, हर देश और हर क़ौम में आए। रसूलों ने एक ही हक़ीक़त से लोगों को आगाह किया वह यह कि सबके सब इनसान अल्लाह के बन्दे और ग़ुलाम हैं। इसलिए उन्हें अपने तमाम मामलों में उसी की पैरवी करनी चाहिए और उसी के बताए हुए रास्ते पर चलना चाहिए ताकि समाज में किसी भी तरह का बिगाड़ बाक़ी न रहे और आदमी अल्लाह और उसके बन्दों के हक़ों को न्याय और इनसाफ़ के साथ अदा करे। क़ुरआन मजीद में कहा गया—

"हमने अपने रसूलों को साफ़-साफ़ निशानियों के साथ भेजा और उनके साथ किताब और तराज़ू उतारी ताकि लोग इनसाफ़ (न्याय) पर क़ायम हों।" (क़ुरआन, सूरा-57 हदीद, आयत-25)

अतः इसी काम के लिए सबसे आख़िर में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को क़ियामत तक के लिए और सारी दुनिया के लिए अपना पैग़म्बर बनाकर भेजा और नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी को ईमानवालों के लिए आदर्श ठहरा

दिया और क़ुरआन मजीद में फ़रमाया—

"तुम लोगों के लिए अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) में एक बेहतरीन नमूना है हर उस आदमी के लिए जो अल्लाह और आख़िरत के दिन का उम्मीदवार हो।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)

इन आयतों से पता चलता है कि अब हिदायत पाने का केवल एक ही रास्ता है कि आदमी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की पैरवी करे। चूँकि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं और आप (सल्ल॰) लोगों को जिन बातों की पैरवी का हुक्म देते हैं वे ख़ुदा ही की बताई हुई हैं, इसलिए हमें उन पर अमल करना चाहिए जैसा कि इस सिलसिले में अल्लाह ने एक दूसरी जगह फ़रमाया है—

"और जो कुछ रसूल तुम्हें दे उसे ले लो और जिस चीज़ से वह तुम्हें रोक दे उससे रुक जाओ।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-7)

एक और जगह फ़रमाया—

"जिसने रसूल (सल्ल॰) की इताअत (आज्ञापालन) की उसने यक़ीनन अल्लाह ही की इताअत की।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-80)

यानी अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की पैरवी और इताअत ही अब एक ज़रिआ है ख़ुदा की इताअत और पैरवी का, इसके अलावा ख़ुदा की मर्ज़ी पर चलने का और कोई ज़रिआ नहीं है। अरबी की मूल आयत में शब्द 'उसवा' इस्तेमाल हुआ है, जिसका हिन्दी अनुवाद हमने नमूना (आदर्श) किया है और यही दुरुस्त भी है। अल्लाह ने यह 'नमूना' नबी (सल्ल॰) की शक्ल में भेज दिया। अब हमारा काम सिर्फ़ उनकी बताई हुई बातों पर अमल करना है। यानी जिस तरह नबी (सल्ल॰) खाते-पीते थे, जिस तरह बैठते-उठते थे, जिस तरह लोगों से मिलते-जुलते थे और जिस तरह नमाज़ वग़ैरा पढ़ते थे हमारा अमल भी वैसा ही होना चाहिए।

वैसे भी रास्ता चलने में आदमी को किसी रहनुमा (मार्गदर्शक) की ज़रूरत होती है और जब रहनुमा का चयन हो जाता है तो उसकी हिदायतों पर चलने में ही भलाई और कामयाबी है। ज़िन्दगी का रास्ता तो बहुत ही

लम्बा है, जिसमें कुफ़्र, शिर्क, ज़ुल्म, सितम (अत्याचार) और खेल-तमाशे के हज़ारों ख़तरे पेश आते हैं। इन्हीं से बचाने के लिए ख़ुदा ने नबी (सल्ल०) को इनसानियत का रहनुमा बनाकर भेजा और रहनुमा भी ऐसा कि माँ-बाप से भी बढ़कर मुहब्बत करनेवाला। आदमी के माँ-बाप उसको गुमराही में डाल सकते हैं, वे उसके साथ ख़ुदग़र्ज़ी का मामला भी कर सकते हैं, उसके बीवी-बच्चे उसको नुक़सान पहुँचा सकते हैं, यहाँ तक कि आदमी ख़ुद अपने हाथों से अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार सकता है। मगर नबी (सल्ल०) हमें सिर्फ़ वही हुक्म देंगे, जिसमें हमारी भलाई और सफलता हो।

जब हक़ीक़ी हालत यह है तो फिर हमारा भी फ़र्ज़ (कर्तव्य) होना चाहिए कि नबी (सल्ल०) से दुनिया की हर चीज़ और हर रिश्ते-नाते यहाँ तक कि अपनी जान से भी ज़्यादा मुहब्बत करें। मुहब्बत का मतलब यह है कि हम नबी (सल्ल०) के हर हुक्म की पैरवी करें, आप (सल्ल०) का जो फ़ैसला या जो तरीक़ा भी सामने आए उसके आगे अपने सिर को झुका दें और किसी प्रकार की नागवारी महसूस न करें। क़ुरआन मजीद में अल्लाह ने फ़रमाया है—

> "अतः (ऐ मुहम्मद) क़सम है तेरे परवरदिगार की, ये हरगिज़ ईमानवाले नहीं हो सकते, जब तक अपने आपस के मतभेदों में ये तुमको फ़ैसला करनेवाला न मान लें, फिर जो कुछ तुम फ़ैसला करो उस पर अपने दिलों में भी कोई तंगी न पाएँ, बल्कि अपने सिर को झुका दें।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-65)

पक्के और सच्चे मुसलमान होने की पहचान ही यह है कि अल्लाह और उसके नबी (सल्ल०) की हर बात मानी जाए, हर मामले में उनकी पैरवी (आज्ञापालन) की जाए, चाहे वे लेन-देन के मामले हों या निकाह-तलाक़ के मसले हों, या इबादत (उपासना) का मामला हो या हुकूमत और राजनीति का, सबके लिए यही हुक्म है। इस हुक्म की पाबन्दी की जाएगी तो अल्लाह भी ख़ुश होगा और पैग़म्बर (सल्ल०) भी। हदीस में आया है—

हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि तीन आदमी नबी (सल्ल०) की

बीवियों के पास आए और कहा कि वे नबी (सल्ल॰) की इबादत (उपासना) के बारे में जानने के लिए आए हैं। फिर जब उनको नबी (सल्ल॰) की इबादत के बारे में मालूम हुआ तो उन्होंने इसको बहुत कम समझा और कहने लगे कि हमको अल्लाह के पैग़म्बर से क्या बराबरी है, नबी (सल्ल॰) के तो अगले और पिछले गुनाह अल्लाह ने माफ़ कर दिए हैं। चुनाँचे एक ने कहा; भाइयो! "मैं तो सारी रात नमाज़ पढूँगा।" दूसरे ने कहा, "मैं हमेशा रोज़े रखूँगा और किसी दिन भी बे-रोज़ा नहीं रहूँगा।" और तीसरे ने कहा, "मैं औरतों से अलग रहूँगा और कभी शादी नहीं करूँगा"। जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को ख़बर हुई तो आप उनके पास तशरीफ़ ले गए और फ़रमाया—

> "क्या तुम्हीं हो जिन्होंने ऐसा और ऐसा कहा है? ख़ूब अच्छी तरह जान लो ख़ुदा की क़सम मैं तुम में सबसे ज़्यादा अल्लाह से डरनेवाला और ख़ौफ़ खानेवाला हूँ, मगर मैं रोज़े भी रखता हूँ और किसी दिन बे-रोज़ा भी रहता हूँ। नमाज़ें भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और औरतों से निकाह भी करता हूँ। लिहाज़ा जिस आदमी ने भी मेरे तरीक़े से बे-रग़बती (अरुचिता) की वह हममें से नहीं है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

सब जानते हैं कि नमाज़ पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन उसी तरह जिस तरह नबी (सल्ल॰) ने बताया है। अब अगर कोई सूरज निकलते और डूबते वक़्त भी नमाज़ पढ़ने लगे तो फिर इन वक़्तों में नमाज़ें पढ़ना ग़लत होगा।

मिसाल के तौर पर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने को अकेले नमाज़ पढ़ने के मुक़ाबले में सत्ताईस दर्जा फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) है। इसको सुनने के बाद अगर कोई मुसलमान बिना किसी सही वजह के जमाअत की नमाज़ छोड़े तो यह बड़ी बेवक़ूफ़ी होगी या 'अल्लाह माफ़ करे!' वह यह सोचे कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का यह हुक्म महज़ उस ज़माने की इन्तिज़ामी मसलिहत की बिना पर होगा ताकि ज़्यादा सवाब पाने की वजह से लोग एक जगह जमा हो जाएँ, लेकिन अब इसकी कोई ज़रूरत नहीं तो यह कुफ़्र (सत्य का इनकार) है, जो नीचे लिखे वाक़िए से साफ़ ज़ाहिर है—

हज़रत ज़ाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) मक्का फ़तह के साल रमज़ान के महीने में मक्का को रवाना हुए, यहाँ तक कि "कुराउल-ग़मीम" के मक़ाम तक पहुँच गए। नबी (सल्ल॰) और तमाम सहाबी (रज़ि॰) रोज़े से थे। जब उस उपर्युक्त मक़ाम पर पहुँचे तो नबी (सल्ल॰) ने पानी का एक प्याला मँगाया, फिर उसको उठाया यहाँ तक कि लोगों ने देखा, इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने पानी पी लिया (यानी रोज़ा तोड़ दिया) क्योंकि मुसाफ़िर थे और जिहाद की मुहिम दरपेश थी। बाद में आपको सूचना मिली कि कुछ लोग अब भी रोज़े से हैं उन्होंने अपना रोज़ा नहीं तोड़ा। तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "वे लोग नाफ़रमान हैं।"

(हदीस : मुस्लिम)

क़ुरआन मजीद में अल्लाह ने मुसाफ़िर को रोज़ा न रखने की इजाज़त दी है और कहा है कि जो लोग रमज़ान में सफ़र की हालत में हों वे दूसरे दिनों में इसकी क़ज़ा कर लें यानी रोज़ा रखकर गिनती पूरी कर लें। नबी (सल्ल॰) और उनके सहाबा (रज़ि॰) का यह सफ़र रमज़ान में हुआ था और चूँकि यह कोई आम तिजारती सफ़र नहीं था, बल्कि मक्का फ़तह करने और ख़ुदा के दुश्मनों से लड़ने के लिए निकले थे। अगर रोज़ा न तोड़ते तो जंग पर बुरा असर पड़ सकता था। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने जानते-बूझते रोज़ा तोड़ा और लोगों ने नबी (सल्ल॰) को रोज़ा तोड़ते देखा, फिर रोज़ा रखने के क्या मानी? यह तो नबी (सल्ल॰) के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी हुई। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वे लोग नाफ़रमान हैं। ज़ाहिर है कि नबी की नाफ़रमानी ख़ुदा की नाफ़रमानी है।

इस हदीस से यह बात भी साफ़ और स्पष्ट हुई कि असल चीज़ नबी (सल्ल॰) की इताअत और पैरवी है। नबी (सल्ल॰) के तरीक़े से हटकर कोई शख़्स चाहे कितनी ही ज़्यादा इबादत (उपासना) करे उसका ख़ुदा के यहाँ वज़न नहीं है। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने लोगों को ख़बरदार करते हुए फ़रमाया है—

"तुम में से कोई आदमी ईमानवाला न होगा जब तक कि उसके नफ़्स की ख़ाहिश उसके अधीन न हो जाए, जो मैं लाया हूँ।"

(हदीस : मिशकात)

यानी हक़ीक़त में ईमानवाला वही है जो दिल से फ़िक्र व अमल के उस रास्ते को अपनाता है, जिसकी तरफ़ नबी (सल्ल॰) ने रहनुमाई की और दिल से यह मान लेता है कि हक़ (सत्य) वही है जिसे अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने हक़ कहा है और जिसे नबी (सल्ल॰) ने ग़लत ठहरा दिया वह हक़ीक़त में ग़लत है। ईमान की सही कैफ़ियत यही है कि आदमी की ख़ाहिश और उसके मैलानात (रुचियाँ) उस हिदायत के अधीन हो जाएँ, जिसे लेकर अल्लाह के पैग़म्बर दुनिया में आए और जिसने उन हिदायतों को छोड़कर नफ़्सानी ख़ाहिशों की पैरवी की वह सही रास्ते से भटक गया।

उसूली तौर पर भी यह बात दुनिया के सारे अक़्लमन्द मानेंगे कि जब हमने अल्लाह को अपना पालनहार और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को अल्लाह का सच्चा नबी मान लिया है तो फिर उनकी पैरवी (आज्ञापालन) करना भी हम पर ज़रूरी हो गया। अब हमारे सामूहिक और व्यक्तिगत जीवन के मामले उस तरीक़े पर हों जिस तरीक़े पर अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने बताया है और अगर कोई आदमी यह सब मालूम हो जाने के बाद भी जिहालत पर अड़ा हुआ है तो याद रखिए, उसके लिए सिवाय अंधकार के कुछ नहीं है।

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की एक ख़ुशख़बरी सुनने और अमल करने के लायक़ है। अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जो आदमी मेरी उम्मत (समुदाय) के आम बिगाड़ के ज़माने में मेरे तरीक़े पर चलेगा उसको सौ शहीदों के बराबर फल और इनाम मिलेगा।" (हदीस : तरग़ीब व तरहीब)

आख़िर में यह बात भी याद रखनी चाहिए कि नबी (सल्ल॰) से हमारा ताल्लुक़ एक दिन, एक महीना या एक साल का नहीं है बल्कि उम्र-भर का है, ज़िन्दगी के एक-एक क्षण का है, अकेले और मजमे का है, खाने-पीने,

इबादत, तिजारत, शादी, ग़मी (शोक) ग़रज़ कि ज़िन्दगी के हर हिस्से का है और नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी हमारे लिए नमूना और रहनुमा है, और हमारे दीन की बुनियाद है। इसलिए हमें इस रास्ते पर पूरी ज़िन्दगी चलने की कोशिश करनी चाहिए। यही नबी (सल्ल०) से सच्ची मुहब्बत की माँग भी है।

नबी (सल्ल०) को अपना महबूब बनाने का मतलब यह है कि आप (सल्ल०) के एक-एक नक़्शे-क़दम और एक-एक निशाने-राह को मालूम किया जाए और उस पर चला जाए। आपने जिस तरह नमाज़ें पढ़ीं उन्हें जानने की कोशिश की जाए और जानने के बाद उन पर अमल किया जाए। नबी (सल्ल०) ने जिस रास्ते में चोटें खाईं हैं उस रास्ते में हमें भी चोटें खाने की हिम्मत करनी चाहिए। आपने जिन बद-अख़लाक़ियों (दुराचरण) को छोड़ने के लिए कहा, अगर हमारे अन्दर ज़र्रा बराबर भी बुराई हो तो हम उसको छोड़ देने की हिम्मत करें और फिर हमें मालूम है कि ग़ारे-हिरा भी नबी (सल्ल०) की राह है, और बद्र व हुनैन भी आप (सल्ल०) की राह है। दीने-इस्लाम की राह पर चलने के नतीजे में भूख-प्यास की मार भी पड़ेगी और हम जानते हैं कि ग़रीबी (निर्धनता) की मार सबसे बुरी है। इसका मुक़ाबला तवक्कुल (भरोसा), बुलन्द अख़लाक़ी और अल्लाह की मुहब्बत के हथियार से ही किया जा सकता है, जैसा कि नीचे लिखी हदीस में है—

> अब्दुर्रहमान-बिन-अबू-क़ुराद (रज़ि०) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने एक दिन वुज़ू किया, तो सहाबा (रज़ि०) वुज़ू करते वक़्त नीचे गिरनेवाले पानी को हाथों में ले-लेकर अपने चेहरों और जिस्मों पर मलने लगे। नबी (सल्ल०) ने कहा, "तुमको क्या चीज़ इस काम पर आमादा करती है और कौन-सा जज़्बा तुम से यह अमल कराता है?" सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया, "अल्लाह और उसके नबी (सल्ल०) की मुहब्बत।" उनका यह जवाब सुनकर नबी (सल्ल०) ने कहा, "जिस आदमी की यह ख़ुशी हो और वह चाहे कि उसको अल्लाह और रसूल (सल्ल०) से सच्ची मुहब्बत हो या यह कि अल्लाह और रसूल उससे मुहब्बत करें तो उसे चाहिए कि जब वह बात करे तो हमेशा सच बोले और जब कोई अमानत उसके पास

रखी जाए तो ख़ियानत के बग़ैर उसको अदा करे और जिसके पड़ोस में उसका रहना-सहना हो उसके साथ बेहतर सुलूक करे।"

(हदीस : बैहक़ी)

यह एक आसान उपाय है अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) से मुहब्बत का। हमें इसको इस्तेमाल करके अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की मुहब्बत का हक़दार बनना चाहिए। हम अगर ऐसा करेंगे तो समाज में ख़ुशी और प्रसन्नता, अमन व सुकून की कलियाँ खिल उठेंगी।

दुरूदो-सलाम की फ़ज़ीलत

दुनिया कभी भी बड़े और महान इनसानों से ख़ाली नहीं रहती, बड़े-बड़े शासक, सेनापति, चिकित्सक (डॉक्टर) और फ़लसफ़ी (दार्शनिक) इस दुनिया में गुज़रे हैं, जिन से तमाम लोगों ने फ़ायदा उठाया। मगर यह भी सच्चाई है कि ये बड़े इनसान अपने-अपने शोबे (विभाग) में जो कुछ कर सकते थे, उससे आगे उन्हें कुछ पता नहीं था कि क्या करना है।

इसके बरख़िलाफ़ हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) जिनको अल्लाह ने अपना नबी बनाकर दुनिया में भेजा था, तमाम ख़ूबियों, तमाम अख़लाक़ी आदतों, और कमालों (क़ाबिलियतों) और अच्छाइयों के स्रोत थे। नबी (सल्ल॰) की ज़िन्दगी का हर पहलू तमाम इनसानों के लिए रास्ते की मशाल रहा है। आपके व्यक्तित्व में शराफ़त, ईमानदारी, अमानतदारी, सच्चाई, अच्छे अख़लाक़, सुचरित्रता और उच्च साहस व वीरता के गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। सबसे बड़ी बात यह है कि नबी (सल्ल॰) इनसानी क़ाफ़िले के ख़ैरख़ाह (शुभचिन्तक) थे। नबी (सल्ल॰) हमारी दुनिया और आख़िरत (परलोक) दोनों जगह की कामयाबी चाहते थे। आपकी ज़िन्दगी का मक़सद हमें जहन्नम की आग से बचाना था। ऐसी हालत में नबी (सल्ल॰) का भी हम पर यह हक़ (अधिकार) है कि हम आपसे अपने माँ-बाप, अपनी औलाद, और अपनी जान से भी बढ़कर मुहब्बत करें और मुहब्बत का तरीक़ा यह है कि जो कुछ नबी (सल्ल॰) ने बताया और जिन बातों के करने का हुक्म दिया उन पर जी-जान (तन-मन-धन) से अमल करें और इसी के साथ-साथ ज़बान से नबी

(सल्ल॰) पर दुरूदो-सलाम भेजें, जिसका हुक्म खुद अल्लाह ने भी दिया है। क़ुरआन मजीद में आया है—

> "अल्लाह और उसके फ़रिश्ते नबी (सल्ल॰) पर दुरूद भेजते हैं, ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! तुम भी उन पर दुरूदो-सलाम भेजो।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-56)

नबी (सल्ल॰) ने भी दुरूद पढ़ने की बार-बार ताकीद फ़रमाई क्योंकि इससे नबी (सल्ल॰) से मुहब्बत पैदा होती है और ख़ुदा भी ख़ुश होता है।

दुरूद पढ़ने का हुक्म

- नबी (सल्ल॰) ने कहा कि जिसके सामने मेरा ज़िक्र आए उसको चाहिए कि मुझ पर दुरूद भेजे।
- फ़रमाया कि जुमे के दिन मुझ पर बहुत ज़्यादा दुरूद पढ़ा करो इसलिए कि मुझ पर दुरूद पेश होता है।
- यह भी फ़रमाया कि क़ियामत के दिन सबसे ज़्यादा मेरे क़रीब वह होगा, जो मुझ पर ज़्यादा दुरूद पढ़ता होगा।
- नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है, "जो आदमी मुझ पर एक बार दुरूद पढ़ता है अल्लाह उस पर दस रहमतें उतारता है और उसके दस गुनाह माफ़ कर देता है और दस नेकियाँ उसके आमालनामे में लिखी जाती हैं।"
- हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जो आदमी मुझ पर दुरूद पढ़ने की बहुतायत करेगा वह अर्श के सामने होगा।"

दुरूद छोड़नेवालों को चेतावनी और धमकी

- नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया; "बड़ा कन्जूस है वह आदमी जिसके सामने मेरा ज़िक्र आए और वह मुझ पर दुरूद न पढ़े।"
- नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जो कोई मुझ पर दुरूद भेजना भूल गया वह जन्नत के रास्ते से बहक गया।" (हदीस : इब्ने-माजा)

दुरूद पढ़ने के मौक़े और तरीक़े

अगर एक मजलिस (सभा) में कई बार नबी (सल्ल॰) का ज़िक्र किया जाए तो इमाम तहावी (रह॰) कहते हैं कि एक मर्तबा दुरूद पढ़ना फ़र्ज़ है और हर बार पढ़ना मुहब्बत का तक़ाज़ा है। (दुर्रे-मुख़्तार)

- नबी (सल्ल॰) के नाम से पहले 'सैयदना' (हमारे सरदार) बढ़ा देना ज़्यादा अच्छा और बेहतर है।
- हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि॰) बयान करते हैं, "दुआ आसमान और ज़मीन के बीच लटकी रहती है और ऊपर नहीं जाती है जब तक कि नबी (सल्ल॰) पर दुरूद न भेजा जाए।"

इसलिए दुआ करने से पहले और आख़िर में दुरूद पढ़ना चाहिए।

नबी (सल्ल॰) के फ़रमान

तौहीद

नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"अल्लाह का हक़ बन्दों पर यह है कि वे उसी की बन्दगी (उपासना) करें और बन्दगी में किसी ग़ैर को ज़रा भी उसका साझीदार न बनाएँ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

रिसालत

"तुम में से कोई ईमानवाला न होगा जब तक कि मैं उसकी निगाह में उसके बाप, उसके बेटे और दुनिया के दूसरे तमाम लोगों से ज़्यादा महबूब न हो जाऊँ।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

आख़िरत

"क़ियामत के दिन इनसान के क़दम अपनी जगह से न हट सकेंगे, यहाँ तक कि उससे पाँच बातों की पूछगछ न हो जाए।

(1) उम्र किन कामों में बिताई?

(2) जवानी की क़ुव्वतें कहाँ लगाईं?

(3) माल-दौलत कहाँ से कमाया?

(4) कमाया हुआ माल कहाँ ख़र्च किया?

(5) जो इल्म हासिल किया उस पर कहाँ तक अमल किया?"

इस्लाम की ख़ूबी

"आदमी के इस्लाम की ख़ूबी और उसके कमाल में यह भी दाख़िल है कि वह बेकार और बिना फ़ायदे के कामों और बातों से बचा रहे।" (हदीस : तिरमिज़ी)

दीन का ख़ुलासा

"दीन नाम है ख़ुलूस और वफ़ादारी का।" इसकी तशरीह (व्याख्या) करते हुए फ़रमाया–

"अल्लाह के साथ, अल्लाह की किताब के साथ, अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) के साथ, मुसलमानों के सरदारों और पेशवाओं के साथ और उनके आम लोगों के साथ (ख़ुलूस और वफ़ादारी का मामला होना चाहिए)।" (हदीस : मुस्लिम)

ईमान का आख़िरी दर्जा

"तुममें से कोई किसी बुराई को होते देखे तो ज़रूरी है कि अगर ताक़त रखता हो तो अपने हाथ की ताक़त से उसको बदलने की कोशिश करे और अगर इसकी ताक़त न रखता हो तो अपनी ज़बान से ही उसको बदलने की कोशिश करे और अगर इसकी भी ताक़त न रखता हो तो अपने दिल में ही उसको बुरा समझे, और यह ईमान का सबसे कमज़ोर दर्जा है।" (हदीस : मुस्लिम)

क़ुरआन मजीद

"जो आदमी ख़ुदा की किताब की पैरवी (अनुपालन) करेगा वह न तो दुनिया में भटकेगा और न आख़िरत में उसके हिस्से में महरूमी आएगी।" (हदीस : मिशकात)

नमाज़ की अहमियत

"अगर तुम में से किसी के दरवाज़े पर कोई नहर हो जिसमें वह रोज़ाना पाँच बार नहाता हो, तो बताओ कि उसके जिस्म पर कुछ भी मैल-कुचैल बाक़ी रह सकता है? सहाबा (रज़ि॰) ने कहा कि नहीं, उसके जिस्म पर ज़रा भी मैल-कुचैल नहीं रहेगा। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि यही हाल पाँच वक़्त की नमाज़ों का है। अल्लाह इन नमाज़ों के ज़रिए गुनाहों को मिटाता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

रोज़े को ख़राब करनेवाली बातें

"(रोज़े की हालत में) जिसने झूट बोलना और झूट पर अमल करना न छोड़ा तो अल्लाह को उसके खाना-पीना छुड़ा देने की कोई ज़रूरत नहीं।" (हदीस : बुख़ारी)

ज़कात पर तंबीह

"जिस माल में से ज़कात न निकाली जाए और वह उसमें मिली-जुली रहे तो वह माल को तबाह करके छोड़ती है।"

(हदीस : मिशकात)

सदक़ा (दान)

"सदक़ा अल्लाह के ग़ज़ब (गुस्से) को ठंडा करता है और बुरी मौत को दफ़ा (दूर) करता है।"

सदक़े के मौक़े और फ़ज़ीलत

- वह सदक़ा जो आदमी अपने ग़रीब रिश्तेदार को दे जबकि वह रिश्तेदार उससे दुश्मनी रखता हो। (हदीस : तरग़ीब, तरहीब)
- अपने मुसलमान भाई से मुस्कुराते हुए मिलना। (हदीस : तिरमिज़ी)
- मस्जिद बनाना, कुआँ या नहर खुदवाना और ऐसे ही दूसरे नेक काम जैसे दीन का इल्म सीखना वग़ैरा। (हदीस : इब्ने-माजा)
- सदक़ा (दान) की वजह से माल में कमी नहीं आती।

- बेहतरीन सदक़ा वह है कि कोई किसी भूखे को पेट भरकर खिलाए।
(हदीस : मिशकात)
- हर नेक काम में सदक़े का सवाब होता है। (हदीस : बुख़ारी)
- हर क़र्ज़ सदक़ा है यानी ज़रूरतमन्द को क़र्ज़ देना सदक़ा है।
- दूसरों को नेकी की तलक़ीन करना (उभारना) सदक़ा है।
- अन्धे आदमी की रहनुमाई करना भी सदक़ा है।
- किसी कमज़ोर का बोझ अपने सिर पर उठा लेना भी सदक़ा कहलाता है। (हदीस : तरग़ीब व तरहीब)

मस्जिद की सफ़ाई

"जिसने मस्जिद में से ऐसी चीज़ बाहर कर दी, जिससे तकलीफ़ होती थी जैसे कंकर, पत्थर, कूड़ा करकट वग़ैरा, अल्लाह उसके लिए जन्नत में एक घर बना देगा।" (हदीस : इब्ने-माजा)

बिदअत की मनाही

"जिसने हमारे दीन (इस्लाम) में कोई नई बात पैदा की, जो उसमें नहीं है तो वह बात क़बूल करने लायक़ नहीं है।" (हदीस : बुख़ारी)

फ़हश (अश्लील और गन्दी) बातें करना

"ख़ुदा की नज़र में बदतरीन आदमी क़ियामत के दिन वह होगा, जिसकी बदज़बानी और अश्लील (गन्दी) बातों की वजह से लोग उससे मिलना छोड़ दें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

माँगने की निन्दा

"जो आदमी बग़ैर ज़रूरत सवाल करता (माँगता) है, वह मानो आग की चिंगारियों में हाथ डालता है।" (हदीस : बैहक़ी)

ऐशो-आराम से परहेज़

"देखो! ज़्यादा चैन और मज़े न करना, अल्लाह के नेक बन्दे ऐशो-आराम नहीं किया करते।" (हदीस : मुसनद अहमद)

सादगी

"सादगी के साथ ज़िन्दगी गुज़ारना ईमान की अलामत है।"
(हदीस : अबू-दाऊद)

हुसने-अख़लाक़

"ईमानवालों में सब से ज़्यादा मुकम्मल ईमानवाले वे लोग हैं, जो अख़लाक़ में ज़्यादा अच्छे हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

जन्नत की ख़ुशख़बरी

"उसके लिए ज़न्नत की ख़ुशख़बरी है जिसने अच्छी बातें करने की आदत बनाई, भूखों को खाना खिलाया, अक्सर रोज़े रखे और उस वक़्त नमाज़ पढ़ी जब दुनिया सोती है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

नर्म-मिज़ाजी (विनम्र स्वभाव)

"क्या मैं तुमको ऐसे आदमी की ख़बर न दूँ जो दोज़ख़ के लिए हराम है और दोज़ख़ की आग उस पर हराम है। सुनो-सुनो मैं बताता हूँ कि दोज़ख़ की आग हर ऐसे आदमी पर हराम है जो स्वभाव का तेज़ न हो, नर्म हो, लोगों से क़रीब होनेवाला हो और जिसका स्वभाव नर्म हो।" (हदीस : तिरमिज़ी)

सब्रो-शुक्र

"चार चीज़ें ऐसी हैं कि वे जिस आदमी को मिल गईं, उसको दुनिया और आख़िरत की तमाम भलाइयाँ मिल गईं। पहली चीज़ शुक्र करनेवाला दिल, दूसरी वह ज़बान जो अल्लाह का ज़िक्र (याद) करनेवाली हो और तीसरी चीज़ वह बदन जो मुसीबत में सब्र करनेवाला हो और चौथी चीज़ वह बीवी जो अपनी जान और शौहर के माल में उससे ख़ियानत नहीं करती।" (हदीस : बैहक़ी)

अमानत

"चार चीज़ें अगर तुम्हारे पास हों तो दुनिया की किसी चीज़ से महरूमी तुम्हारे लिए नुक़सान देनेवाली नहीं है, (1) अमानत की

हिफ़ाज़त (2) सच्ची बात कहना (3) अच्छा अख़लाक़ (4) रोज़ी में पाकीज़गी।"

तक़वा (परहेज़गारी)

"तुम में बेहतर लोग वे हैं जिन्हें देखकर खुदा याद आता है।"

माँगनेवाले को देना

"माँगवाले को कुछ-न-कुछ देकर वापस करो, अगरचे जली हुई खुर ही क्यों न हो।" (हदीस : मिशकात)

माल की बरकत ख़त्म होना

ताजिरों (व्यापारियों) को ख़बरदार करते हुए फ़रमाया—

"अपना माल बेचने में ज़्यादा क़समें खाने से बचो। यह चीज़ (वक़्ती तौर पर) तो तिजारत को बढ़ाती है लेकिन आख़िरकार बरकत ख़त्म कर देती है।" (हदीस : मुस्लिम)

झूठी क़सम का अंजाम

तीन तरह के लोग ऐसे हैं कि जिनसे अल्लाह क़ियामत के दिन न तो बात करेगा, न उनकी तरफ़ देखेगा और न उनको पाक-साफ़ करके जन्नत में दाख़िल करेगा बल्कि दर्दनाक अज़ाब (सज़ा) देगा। हज़रत अबू-ज़र (रज़ि०) ने पूछा कि ऐ अल्लाह के रसूल! ये नाकाम व नामुराद लोग कौन हैं? आप (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"एक वह आदमी जो गुरूर और घमण्ड से अपने तहबन्द को टख़नों से नीचे तक लटकाता है। दूसरा वह आदमी जो एहसान जताता है और तीसरा वह आदमी जो झूठी क़सम के ज़रिए अपने तिजारत के माल को बढ़ाता है।" (हदीस : मुस्लिम)

बड़े गुनाह

बड़े-बड़े गुनाह ये हैं—

- अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराना।
- माँ-बाप की नाफ़रमानी करके उनको तकलीफ़ देना।

- बिना ख़ता के किसी को क़त्ल करना।
- झूठी क़सम खाना। (हदीस : बुख़ारी)

कुछ और बड़े गुनाह

(1) माँ-बाप को तकलीफ़ पहुँचाना (2) शराब पीना (3) किसी की ग़ीबत (चुग़ली) करना (4) किसी के हक़ में बदगुमानी करना (5) वादा पूरा न करना (6) अमानत में ख़ियानत करना (7) जुमे की नमाज़ छोड़ देना (8) किसी ग़ैर औरत के साथ अकेले बैठना (9) ग़ैर-इस्लामी रस्मों को पसन्द करना (10) लोगों को दिखाने के लिए इबादत करना (11) क़ुदरत होने पर भी नसीहत छोड़ देना (12) किसी का ऐब तलाश करना।

गुनाहों पर अज़ाब की चेतावनी

- हक़ीर समझकर किसी पर हँसना।
- किसी पर लान-तान करना।
- बुरे लक़ब (नाम) से पुकारना।
- चुग़ली खाना।
- दो मुहाँ होना यानी इसके मुँह पर ऐसा, उसके मुँह पर वैसा।
- तोहमत (लांछन) लगाना।
- धोखा देना।
- तकलीफ़ देने के लिए शर्म दिलाना।
- घमण्ड व अभिमान करना।
- किसी के नुक़सान पर ख़ुश होना।
- ज़ुल्म व अत्याचार करना।
- किसी की इज़्ज़त व आबरू को चोट पहुँचाना।
- छोटों पर रहम न करना।
- बड़ों की इज़्ज़त न करना।
- ज़रूरतमन्दों की मदद न करना।

- जानदार की तस्वीर बनाना।
- तंदुरुस्त होकर भी भीख माँगना।
- दाढ़ी मुंडवाना।
- ग़ैर-मुस्लिमों, फ़ासिक़ों जैसा लिबास पहनना।
- औरतों का मर्दाना रूप बनाना जैसे मर्दाना लिबास, जूते वग़ैरा पहनना।

जिन बातों से ईमान जाता रहता है

- अल्लाह का डर ख़त्म हो जाना।
- नाउम्मीद हो जाना।
- अल्लाह और नबी (सल्ल॰) की बातों में शक करना।
- गुनाह को हलाल समझना।

झूठ का असर

"जब बन्दा झूठ बोलता है तो फ़रिश्ता उसके झूठ की बदबू की वजह से उससे दूर हटता चला जाता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

बुख़्ल (कंजूसी) का अंजाम

"धोखेबाज़, बख़ील (कंजूस) और एहसान जतानेवाला जन्नत में नहीं जा सकेगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

मुनाफ़िक़त (कपटाचार)

"चार आदतें ऐसी हैं कि जिस व्यक्ति में वे चारों जमा हो जाएँ तो वह पक्का मुनाफ़िक़ है और जिसमें इन चारों में से कोई एक आदत हो तो उसका हाल यह है कि उसमें निफ़ाक़ (कपट) की एक ख़सलत है और वह इसी हाल में रहेगा जब तक कि उस आदत को न छोड़ दे। वे चारों आदतें ये हैं कि जब उसको कोई अमानत रखने के लिए दी जाए तो उसमें ख़ियानत करे और जब बोले तो झूठ बोले, वादा करे तो उसे न निभाए और जब किसी से झगड़ा हो तो गाली-गलौज करने पर उतर आए। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

तहारत और पाकीज़गी

"पाक-साफ़ रहना आधा ईमान है।" (हदीस : बुख़ारी)

मुसलमान को गाली देना

"मुसलमान को गाली देना गुनाह है और उसे बिना शरीअ़त के हुक्म के क़त्ल करने का गुनाह कुफ़्र है।" (हदीस : बुख़ारी)

मज़दूर की मज़दूरी

"मज़दूर की मज़दूरी उसका पसीना सूखने से पहले दे दो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

सबसे अच्छा अमल

"सबसे अच्छा अमल यह है कि दोस्ती भी ख़ुदा के लिए करे और दुश्मनी भी ख़ुदा ही के वास्ते करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

प्यारा अमल

"ख़ुदा को सबसे ज़्यादा प्यारा वह अमल है, जो हमेशा हो, चाहे थोड़ा ही हो।" (हदीस : बुख़ारी)

दुनिया में रहना-बसना

"दुनिया में इस तरह रहो जैसे कोई मुसाफ़िर या राहगीर रहता है।" (हदीस : बुख़ारी)

क़ुरआन मजीद की अहमियत

इमाम शाफ़ई (रह॰) के ज़माने में एक आदमी के औलाद नहीं होती थी, काफ़ी उम्र के बाद एक लड़की पैदा हुई। ख़ुशी-ख़ुशी में यह क़सम खा बैठा कि मैं इसको "दो जहान की दौलत" दूँगा। कहने को तो कह गया मगर जब उसने इस क़सम के बारे में सोचा तो उसे बड़ी फ़िक्र हुई कि मैं क्या और मेरी सामर्थ्य क्या, दो जहान की दौलत मैं किस तरह अपनी बेटी को दे सकता हूँ। इसी परेशानी की हालत में हर एक आलिम की ख़िदमत में हाज़िर हुआ कि मैं क्या करूँ और किस तरह अपनी क़सम पूरी करूँ। लेकिन किसी से तसल्ली-बख़्श जवाब न मिला। आख़िरकार किसी ने इमाम शाफ़ई (रह॰) का पता दिया तो वह उनकी ख़िदमत में हाज़िर हुआ। उन्होंने सुनकर कहा, "तेरी क़सम का निहायत आसान इलाज है। तू अपनी बेटी को क़ुरआन

मजीद की तालीम दे। अगर तू ऐसा करता है तो क़सम है अल्लाह की कि तूने दो जहान की दौलत अपनी बेटी को दे दी और तू अपनी क़सम से बरी हुआ।"

यह सिर्फ़ कहानी नहीं है बल्कि हक़ीक़त में क़ुरआन मजीद दो जहान की दौलत से भी बढ़कर है। ख़ुशनसीब है वह आदमी जिसे यह दौलत मिली। क्योंकि यह एक ऐसा रौशन चिराग़ है जिससे कुफ़्र का अन्धकार दूर होता है और दिल को हर तरह का सुकूनो-चैन मिलता है। इससे ख़ुदा की रहमत के दरवाज़े खुलते हैं और इसके ज़रिए से यह मालूम किया जा सकता है कि वह कौन-सा ज़िन्दगी का तरीक़ा है जिसे ख़ुदा पसन्द करता है और किन उसूलो-आदाब को वह नापसन्द करता है।

अस्ल में क़ुरआन ख़ुदा का कलाम (वाणी) है और भलाई और ख़ैर का स्रोत है, जिसे इनसानों की हिदायत के लिए उतारा गया है। इस दुनिया में सबसे महान इनसान वह है जो क़ुरआन मजीद की हिदायतों पर ख़ुद भी अमल करे और दूसरों को भी उसकी तरफ़ बुलाए।

क़ुरआन मजीद की हिदायतों पर अमल करने की पहचान यह है कि आदमी की पूरी ज़िन्दगी उसके साँचे में ढल जाए और वह यह सच्चाई जान ले कि इनसान सिर्फ़ एक ही ख़ुदा का बन्दा है और उसी की बन्दगी में उसकी नजात (मुक्ति) है। यह यक़ीन और अक़ीदा जितना पक्का होगा, ज़िन्दगी की हक़ीक़त उतनी ही उस पर खुलती चली जाएगी और यह तभी हो सकता है जब कि क़ुरआन ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़ा और समझा जाए और इस इरादे के साथ पढ़ा जाए कि मुझे इसके हुक्मों के मुताबिक़ अपनी ज़िन्दगी को बदलना है और इसकी हिदायत की रौशनी में अपने-आप को सँवारना है। अल्लाह ने इस किताब को इसी लिए उतारा है। क़ुरआन में है—

> "तुम्हारे पास अल्लाह की तरफ़ से एक रौशनी और खुली किताब पहुँच गई, जिसके ज़रिए से अल्लाह उस आदमी को सलामती की राह दिखाता है, जो उसकी ख़ुशनूदी (रिज़ा) चाहता है।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-15,16)

यह किताब इनसानों को वह सीधा रास्ता दिखाती है जो कामयाबी और सफलता की ज़मानत है और जो अपनी रौशनी में चलनेवालों को दुनिया के उतार-चढ़ाव से बचाती है लेकिन शर्त यह है कि वे अल्लाह की मरज़ी की पैरवी करनेवाले हों।

यक़ीनी तौर पर, यह अल्लाह का बड़ा एहसान है कि उसने बन्दों को क़ुरआन मजीद जैसी नेमत अता (प्रदान) की। अब यह हमारा अपना काम है कि हम इस नेमत से फ़ायदा उठाएँ और समझ के साथ इसको पढ़ें। पढ़ने का मतलब सिर्फ़ ज़बान से अलफ़ाज़ का दोहराना नहीं है बल्कि पूरी समझ और फ़िक्र के साथ अपनी भावनाओं, एहसासों और ज़िन्दगी को उससे जोड़ना है।

इससे सिर्फ़ ज़ेहन की बेदारी ही हासिल नहीं होगी, बल्कि ज़िन्दगी की भी काया पलट जाएगी और समस्त विचार और कर्म सही हो जाएँगे। फिर आप ख़ुदा के वफ़ादार गुलाम की तरह ज़िन्दगी बसर करेंगे और दुनिया में रहते हुए सिर्फ़ वही काम करेंगे जिनके करने का हुक्म अल्लाह दे और उन कामों से रुक जाएँगे जो ख़ुदा की मरज़ी के ख़िलाफ़ हों। सिर्फ़ ख़ुदा का फ़ैसला आपके लिए अमल के क़ाबिल होगा। न क़ौम का, न बिरादरी का और न अपने नफ़्स (मन) का।

मिसाल के तौर पर आप का दिल चाहता है कि शराब पिऊँ लेकिन अल्लाह ने अपनी किताब के ज़रिए इसको पीने से मना किया है तो लाख दिल चाहे मगर आप एक बूँद भी गले से नीचे नहीं उतारेंगे। या बिरादरीवाले किसी काम को रस्म के तौर पर अदा करना चाहते हैं लेकिन आपको मालूम है कि अल्लाह ने उस काम को ग़लत बताया है तो आप पर अनिवार्य होगा कि ऐसे काम के पास भी न जाएँ। क़ुरआन पाक आपसे सच्ची वफ़ादारी चाहता है। वह चाहता है कि आप दुनिया में सिर्फ़ एक ख़ुदा के बन्दे और दास बनकर जीवित रहें। क़ुरआन चाहता है कि आपका ज़ाहिर और अन्दरून एक समान हो और आपकी सलाहियतें, आपकी क़ुव्वतें, आपकी पूँजी और आपका समय मतलब यह कि पूरी ज़िन्दगी अल्लाह और अल्लाह के दीन (धर्म) के लिए समर्पित हो।

संक्षेप में यह कि क़ुरआन मजीद पढ़नेवाला हर आदमी इस्लामी तरीक़े के मुताबिक़ साफ़-सुथरी और पवित्र ज़िन्दगी बसर करे। वह सच्चा, नेक और परहेज़गार हो। उसका रोज़गार हासिल करने का ज़रिआ जाइज़ और हलाल हो। वह लड़ने-झगड़नेवाला न हो। सबके साथ अच्छा बरताव करता हो। ऐसे ही लोग दुनिया और आख़िरत में ऊँचा मक़ाम पाएँगे। हज़रत उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह इस किताब (क़ुरआन) के ज़रिए बहुत से लोगों को ऊँचा मक़ाम देता है और इसके ज़रिए बहुत से लोगों को गिराता है।"

मतलब यह है कि जो लोग क़ुरआन पढ़ते हैं और दिल से उस पर अमल करते हैं, वे सही अर्थों में उसे अपनी ज़िन्दगी की रहनुमा (मार्गदर्शक) किताब समझते हैं। ऐसे ही लोगों को ख़ुदा ऊँचा मक़ाम देता है और आख़िरत में भी उनके लिए कामयाबी की ज़मानत है। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग इस किताब की सच्चाई को नहीं पहचानते अल्लाह उनको पतित (पस्त) कर देता है। वे ऐसे बेज़मीर लोग हैं, जिनके ज़ेहन, फ़िक्र और अख़लाक़ व किरदार में क़ुरआन पढ़ने के बाद कोई तब्दीली नहीं आती। क़ुरआन मजीद पढ़ने के बाद भी वही काम करते हैं, जिससे क़ुरआन ने मना किया। ऐसे लोग हक़ीक़त में क़ुरआन को नहीं मानते, क़ुरआन को मानने का मतलब तो यह होता है कि आदमी अपने-आप को बिलकुल क़ुरआन की रहनुमाई में दे दे और उन तमाम चीज़ों और बातों से रुक जाए जिनसे क़ुरआन मजीद रोकता है।

क़ुरआन को पढ़ने के आदाब

क़ुरआन मजीद को पढ़ने के लिए दिल का क़ुरआन की तरफ़ पूरा लगाव (एकाग्रता) होना और ख़ुदा का डर और विनम्रता बहुत ज़रूरी है। जब क़ुरआन को पढ़ने की नीयत हो तो पूरी सावधानी के साथ वुज़ू करें, बेहतर है कि क़िबले की तरफ़ मुँह करके बैठें। पढ़ने में जल्दी न करें; अल्लाह की बड़ाई और उच्चता को दिल में जगह दें। जिस तरह की आयतें पढ़ें यानी रहमतवाली आयतें या अज़ाब (प्रकोप) वाली आयतें तो उनका पूरा हक़ अदा करें और हमारा दिल ख़ुदा की रहमतों और पनाह का चाहनेवाला हो।

क़ुरआन को पढ़ने के दौरान किसी से बातचीत न करें। मतलब पर ग़ौर करते रहें।

हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) से निवेदन किया कि मुझे कुछ वसीयत फ़रमाएँ। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "तक़वा (ईश-भय) का ध्यान रखो कि यह तमाम मामलों की जड़ है।" मैंने पूछा कि इसके साथ कुछ और भी बताएँ, तो नबी (सल्ल॰) ने कहा कि क़ुरआन को पढ़ने की पाबन्दी करो कि दुनिया में यह नूर (रौशनी) है और आख़िरत में ज़ख़ीरा (भण्डार)।"

तक़वा (ईश-भय) हक़ीक़त में तमाम बातों और मामलों की बुनियाद है। जिसके दिल में अल्लाह का डर पैदा हो जाए उससे फिर कोई भी गुनाह होना मुश्किल है और यह दशा क़ुरआन मजीद के पढ़ने से पैदा होती है। इससे आदमी को सोचने का मौक़ा मिलता है कि अच्छे काम कौन से हैं और बुरे कौन से हैं? किन बातों से अल्लाह ख़ुश होता है और किन बातों से नाराज़? और हमसे पहले जो क़ौमें गुज़र चुकी हैं वे क्यों अल्लाह के अज़ाब की पकड़ में आईं? अब हम ज़िन्दगी का कौन-सा तरीक़ा अपनाएँ कि अल्लाह हम से राज़ी (प्रसन्न) रहे? जब क़ुरआन मजीद को इस तरह समझ-बूझकर पढ़ा जाता है तो दुनिया की ज़िन्दगी भी रौशनी से भर जाती है और आख़िरत (परलोक) की कामयाबी और कामरानी भी हिस्से में आती है।

क़ुरआन की शिक्षाएँ

इक़्तिदार सिर्फ़ अल्लाह का है

"इक़्तिदार (सत्ता) तो बस अल्लाह ही का है। उसने हुक्म दिया है कि उसके अलावा क़िसी की इबादत (उपासना) न करो यही सही और सीधा दीन है।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-40)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के तरीक़े में मुकम्मल बन्दगी है

"और जो कुछ रसूल तुम्हें दे उसे ले लो और जिस चीज़ से वह तुम्हें रोक दे उससे रुक जाओ।" (क़ुरआन, सूरा-59 हश्र, आयत-7)

अल्लाह का दीन

"अल्लाह के नज़दीक (निकट) दीन तो इस्लाम ही है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-19)

दीन में ग़ुलू (हद से आगे बढ़ना)

"ऐ किताबवालो! अपने दीन में नाहक़ सीमा से आगे न बढ़ो।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-77)

सिर्फ़ अल्लाह ही से डरो

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह से डरो जैसा कि उससे डरने का हक़ है। तुम को मौत न आए मगर इस हाल में कि तुम फ़रमाँबरदार हो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-102)

नमाज़ की हिफ़ाज़त

"अपनी नमाज़ों की हिफ़ाज़त (सुरक्षा) करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-238)

नाजाइज़ माल न खाओ

"आपस में एक दूसरे के माल नाजाइज़ (अवैध) तरीक़े से न खाओ।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-188)

अल्लाह से तौबा करो

"ऐ लोगो जो ईमान लाए हो! अल्लाह से तौबा करो, ख़ालिस तौबा।" (क़ुरआन, सूरा-66 तहरीम, आयत-8)

परहेज़गारी अपनाओ

"हक़ीक़त में अल्लाह के नज़दीक सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुम्हारे अन्दर सबसे ज़्यादा परहेज़गार हो।"

(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-13)

आपस में मिलकर जमाअत बनाओ

"सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ लो और विभेद में न पड़ो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-103)

मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं

"तमाम मुसलमान (आपस में) एक-दूसरे के भाई हैं।"
(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-10)

दीन में ज़बरदस्ती नहीं

"दीन के मामले में कोई ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं है।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

अच्छे अन्दाज़ से बहस करो

"किताबवालों के साथ बहस न करो मगर अच्छे तरीक़े से।"
(क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-46)

निराश और मायूस कभी न हो

"निराश न हो, ग़म न करो तुम्ही प्रभावी (ग़ालिब) रहोगे अगर तुम मोमिन हो।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-139)

अल्लाह की याद (ज़िक्र) दिल के इत्मीनान की वजह है

"अल्लाह की याद से दिलों को इत्मीनान नसीब होता है।"
(क़ुरआन, सूरा-13 रअद, आयत-28)

फ़ैसला करो तो इनसाफ़ के साथ करो

"और जब लोगों के बीच फ़ैसला करो तो इनसाफ़ के साथ करो।"
(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-58)

इनसाफ़ करना अल्लाह को पसन्द है

"और इनसाफ़ करो, अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-9)

लान-तान और बुरे लक़ब से बचो

"आपस में एक दूसरे पर लान-तान न करो और न एक-दूसरे को बुरे लक़ब (नामों) से याद करो।"
(क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-11)

फ़लाह (कामयाबी) का रास्ता

"तुम्हें एक ऐसा गरोह बन जाना चाहिए जो नेकी की तरफ़ बुलाए, भलाई का हुक्म दे और बुराइयों से रोकता रहे और जो लोग यह काम करेंगे वही फ़लाह (कामयाबी) पाएँगे।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-104)

अल्लाह के सामने गिड़गिड़ाओ

"अपने रब को पुकारो गिड़गिड़ाते हुए और चुपके-चुपके। बेशक वह हद से गुज़रनेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-55)

आख़िरत की पूछगछ का एहसास

आदमी दुनिया में आता है और अपने आसपास रुपया-पैसा, दुकान-जायदाद और ऊँचे-ऊँचे महल देखता है तो वह भी सोचता है कि मेरे पास भी दौलत हो, महल हों, जायदाद हो ताकि दुनिया की ज़िन्दगी ऐशो-आराम से बसर हो। चुनांचे वह हर मुमकिन तरीक़े से दुनिया कमाने और धन-दौलत हासिल करने में लग जाता है। फिर अचानक एक दिन ऐसा भी आता है कि मौत आकर बेचारे को दबोच लेती है और वह जो कुछ माल बटोरे हुए था वह सब पड़ा-का-पड़ा रह जाता है।

अस्ल में दुनिया में किसी भी आदमी को हमेशा की ज़िन्दगी नहीं मिलती। दुनिया की हर चीज़ फ़ानी (मिट जानेवाली) है। बाक़ी रहनेवाली सिर्फ़ अल्लाह की ज़ात (हस्ती) है। इस्लाम बताता है कि मरने के बाद तमाम इनसानों को दोबारा ज़िन्दा किया जाएगा और हर एक से उन कामों का हिसाब लिया जाएगा, जो उन्होंने दुनिया में रहते हुए अपनी ज़िन्दगी में किए थे। फिर जिसने अच्छे काम किए होंगे उसे जन्नत मिलेगी और जिसने बुरे काम किए होंगे उसे दोज़ख़ (जहन्नम) में डाल दिया जाएगा। यह बात न्याय और इनसाफ़ के भी मुताबिक़ है कि ज़ालिम को उसके ज़ुल्म की सज़ा मिले और अच्छे लोगों को उनकी अच्छाई का बदला मिले।

एक मुसलमान के लिए जिस तरह यह ज़रूरी है कि वह ख़ुदा और रसूलों

पर ईमान लाए, उसी तरह उसके लिए यह भी ज़रूरी है कि वह इस बात पर यक़ीन रखे कि मरने के बाद दोबारा ज़िन्दा करके उठाया जाएगा और उसकी ज़िन्दगी के एक-एक अमल और कर्म का हिसाब लिया जाएगा।

यह एक ऐसा अक़ीदा है जिसको अपनानेवाला लाज़मी तौर पर अपने-आपको ख़ुदा के सामने जवाबदेह समझता है। इसी लिए वह हमेशा अच्छे काम करेगा। सच बोलेगा, झूठ कभी न बोलेगा। हर तरह की बेईमानी से बचेगा। ख़ुदा के हुक्मों को पूरा करने के लिए हर वक़्त तैयार रहेगा। क्योंकि वह जानता है कि यह दुनिया की ज़िन्दगी अस्थायी (आरज़ी) है, अस्ल ज़िन्दगी आख़िरत की है। इसके बरख़िलाफ़ जिसको यह एहसास न हो कि एक दिन ख़ुदा के सामने पेश होना है और कौड़ी-कौड़ी का हिसाब देना है वह ग़ैर ज़िम्मेदारी की ज़िन्दगी गुज़ारता है। जुल्म-सितम, क़त्ल ग़ारत-गरी और मामलात में बेइनसाफ़ी उसकी पहचान बन जाती है। ऐसे माहौल में खेल-कूद, तमाशा और बेहयाई और कमीनगी के पनपने का ख़ूब मौक़ा मिलता है। लेकिन क़ुदरतवाले ख़ुदा का उससे कहना यह है—

"और तेरे लिए पूछगछ का एक दिन निश्चित है जो कभी भी तुझसे न टलेगा।" (क़ुरआन, सूरा-20 ता-हा, आयत-97)

और दूसरी जगह कहा गया—

"(अब ख़ूब कान खोलकर सुन लो) वह दिन बरहक़ है जिसका जी चाहे अपने रब की तरफ़ पलटने का रास्ता अपना ले। हमने तुम लोगों को उस अज़ाब से ख़बरदार कर दिया, जो बिलकुल तुम्हारे क़रीब आ लगा है। जिस दिन आदमी वह सब कुछ देख लेगा जो उसके हाथों ने आगे भेजा है।" (क़ुरआन, सूरा-78 नबा, आयत-39,40)

आमतौर पर बारिश से बचने का प्रबन्ध कर लिया जाता है, नक़द-उधार करके मकान की छतों और दीवारों की मरम्मत करा ली जाती है। इसी तरह से अगर किसी को कहीं जाना होता है तो जाने से पहले कपड़े धुलवाकर सलीक़े से अटैची में रख लेता है। जिस दिन चलना होता है उस दिन सुबह ही से तैयारी शुरू कर दी जाती है क्योंकि ऐसा न करने की सूरत में उसे भी

परेशानी होगी और लोग भी उसे लापरवाह और बेवक़ूफ़ कहेंगे। ख़ुद अपनी नज़र में भी वह बेवक़ूफ़ ठहरेगा। यह तो थोड़ी मुद्दत के इन्तिज़ाम की बात है। सोचिए आख़िरत के सफ़र का मामला तो बहुत ही सख़्त है, जिसमें हिसाब-किताब का भय और डर दिलाते हुए अल्लाह ने यहाँ तक फ़रमाया है—

"जिसने ज़र्रा बराबर भलाई की होगी वह उसको देख लेगा और जिसने ज़र्रा बराबर बुराई की होगी वह उसको देख लेगा।"

(क़ुरआन, सूरा-99 ज़िलज़ाल, आयत-7,8)

ये आयतें सचेत करती हैं कि बन्दा बार-बार सोचे कि आख़िरत भी आएगी। अल्लाह का सामना भी होगा और इस ज़िन्दगी का हिसाब भी देना होगा और इस तरह देना होगा कि कोई छोटी-बड़ी नेकी या बदी मिट नहीं जाएगी कि सामने न आए। इस तरीक़े की सोच पवित्र जीवन देने का वचन देती है। बहुत से लोगों की ज़िन्दगियाँ इस सोच से सुधरी हैं लेकिन शर्त यह है कि इसका एहसास हो।

हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक आदमी नबी (सल्ल॰) के पास आया और उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे बहुत थोड़े और व्यापक शब्दों में नसीहत कर दीजिए। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"जब तुम अपनी नमाज़ पढ़ने के लिए खड़े हो तो उस आदमी की तरह नमाज़ पढ़ो जो दुनिया को छोड़कर जानेवाला हो और अपनी ज़बान से ऐसी बात न निकालो कि अगर क़ियामत में उसका हिसाब हो तो तुम्हारे पास कुछ कहने के लिए न रह जाए और लोगों के पास जो कुछ माल व दौलत है उससे तुम बेनियाज़ हो जाओ।"

(हदीस : मिशकात)

जो इनसान मरनेवाला हो और उसे यक़ीन हो गया हो कि अब वह नहीं बचेगा तो उसका दिल ख़ुलूस (निष्ठा) से भर जाता है, वह नमाज़ें पढ़ता है तो पूरे दिली लगाव से पढ़ता है। इसी तरह जो बात भी ज़बान से निकालता

है तो सोचता है कि कोई ऐसी बात न हो जाए जो सच्चाई के ख़िलाफ़ हो और क़ियामत में हिसाब देना पड़े। इसी तरह लोगों के रुपए-पैसों की अधिकता भी उसे अपनी तरफ़ नहीं खींचती है इसलिए कि उसकी नज़र में यह सब कुछ ख़त्म हो जानेवाला है। बस मुसलमान को भी इसी तरह सोचना चाहिए और ज़िन्दगी गुज़ारनी चाहिए।

देखिए जब आख़िरत की पूछगछ का डर पैदा हो जाता है तो एक नेक व्यक्ति तक की क्या हालत हो जाती है इस वाक़िए से देखिए—

इबराहीम-बिन-ख़वास का बयान है कि हम रहला आबिदा के यहाँ गए थे, वे बहुत ख़ुदापरस्त और दीनदार औरत थीं। उन्होंने इतने रोज़े रखे थे कि उनके शरीर का रंग काला पड़ गया था। ख़ुदा के ख़ौफ़ (भय) से इतना अधिक रोती थीं कि आँखों की रौशनी चली गई और इतनी इबादतें की थीं कि पाँव बेकार हो गए थे, वे बैठकर नमाज़ें पढ़ा करती थीं। हमने सलाम किया और बातों ही बातों में कहा कि आप इतनी ज़्यादा मशक़्क़त अपने ऊपर न करें तो उन्होंने हमारी बात सुनकर एक दर्दनाक चीख़ मारी और कहा कि क़ियामत के ख़ौफ़ और डर ने मेरे दिल को ज़ख़्मी और जिगर को छलनी कर दिया है। मेरे दिल में हर वक़्त यही खटका लगा रहता है कि आख़िरत की पूछगछ से कैसे बचा जाएगा।

अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "क़ियामत के दिन अल्लाह की अदालत से आदमी हट नहीं सकता, जब तक उससे पाँच बातों के बारे में हिसाब नहीं ले लिया जाएगा। उससे पूछा जाएगा कि उम्र किन कामों में गुज़ारी? दीन का इल्म हासिल किया तो उस पर कहाँ तक अमल किया? माल कहाँ से कमाया और कहाँ ख़र्च किया? और जिस्म (शरीर) को किस काम में घुलाया।" (हदीस : तिरमिज़ी)

यह हमारी ज़िन्दगी की पूरी रूपरेखा है कि ज़िन्दगी और जवानी कैसे बसर की। ये ऐसी चीज़ें हैं कि इनके नशे में आदमी कुछ-से-कुछ करने को तैयार रहता है। इसी तरह माल के बलबूते पर बहुत से ग़लत काम कर जाता

है। लेकिन यही चीज़ें हैं कि जिनके ज़रिए अल्लाह के दीन और उसके बन्दों की ख़िदमत की जा सकती है लोगों तक ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाया जा सकता है। इसी लिए यह पूछगछ होगी कि दुनिया में ज़िन्दगी, जवानी, रुपया-पैसा और वक़्त किन कामों में लगाया।

यह हमारा हर रोज़ का तजरिबा है कि कपड़ा रंगने के लिए जिस तरह का रंग डाला जाता है, कपड़े पर उसी तरह का रंग चढ़ जाता है, ऐसे ही हमारे आमाल और कर्मों का मामला है। अगर आदमी ऊपर की हदीस को सामने रखकर अच्छे काम करता है, सच बोलता है, नमाज़ें पढ़ता है, व़ादे को पूरा करता है और लोगों की ख़िदमत को अपनी पहचान बनाता है तो क़ियामत में पूछगछ से बच सकता है। लेकिन अगर आदमी ने जानने के बावजूद ग़लत काम किए हैं, झूठ बोला है, चोरी की है, शिर्क और जाहिलियत से वास्ता रखा है तो इस सरकशी का मज़ा दोज़ख़ की आग की सूरत में मिलना है। अब जिसका जी चाहे जहन्नम की आग के डर से अपना रवैया दुरुस्त कर ले और जिसका जी चाहे निडर होकर बिना नंकेल के ऊँट की तरह चलता रहे। ख़ुदा का अज़ाब और सज़ा बड़ी सख़्त चीज़ है, जिससे कोई भी नहीं बचा सकता। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने अपने क़रीबी रिश्तेदारों तक से कह दिया—

> "ऐ अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे अब्बास (नबी (सल्ल॰) के सगे चचा)! मैं अल्लाह के अज़ाब को तुम से थोड़ा भी नहीं हटा सकता। ऐ सफ़ीया (नबी (सल्ल॰) की सगी फूफी)! मैं तुमको अल्लाह के अज़ाब से ज़रा भी नहीं बचा सकता और ऐ मेरी प्यारी बेटी फ़ातिमा! तू मेरे माल में से जितना माँगे मैं दे सकता हूँ लेकिन अल्लाह के अज़ाब को तुम से नहीं टाल सकता। इसलिए अपने-आपको बचाने की फ़िक्र करो क्योंकि ईमान और अमल ही वहाँ काम आएँगे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यह हदीस हम लोगों को ख़बरदार करने के लिए बड़ा एलान है कि जब अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के रिश्तेदारों के लिए यह मामला है तो फिर औरों का ज़िक्र ही क्या, जबकि गुनाहों का पहाड़ साथ हो। अतः अल्लाह ही ऐसे

मौक़े पर कुछ मदद करे तो करे नहीं तो हालात नाज़ुक हैं। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि एक दिन नबी (सल्ल॰) ने हमारे दरमियान ख़ुतबा दिया। जिसमें जंग में मिलनेवाले माल यानी माले-ग़नीमत की चोरी के मसले को बड़ी अहमियत के साथ पेश किया। नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"तुममें से किसी को क़ियामत के दिन इस हालत में न पाऊँ कि उसकी गर्दन पर ऊँट है जो ज़ोर-ज़ोर से बिलबिला रहा है और वह आदमी कह रहा है कि ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! मेरी मदद कीजिए। इस गुनाह के वबाल से बचाइए, तो मैं कहूँ कि मैं तेरी यहाँ कुछ मदद नहीं कर सकता। मैंने दुनिया में यह बात पहुँचा दी थी। मैं तुममें से किसी को इस हाल में न पाऊँ कि उसकी गर्दन पर कोई घोड़ा हिनहिना रहा है और वह आदमी कह रहा है, ऐ अल्लाह के नबी! मेरी मदद को दौड़िए, तो मैं यह कहूँ कि मैं तेरे लिए यहाँ कुछ भी नहीं कर सकता, मैंने तुझे दुनिया में यह बात पहुँचा दी थी। मैं तुममें से किसी को इस हाल में क़ियामत के दिन न देखूँ कि उसकी गर्दन पर बकरी सवार है और वह मिमिया रही है और वह कह रहा है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी मदद को पहुँचिए, तो मैं उसकी फ़रियाद के जवाब में कहूँ कि मैं तेरे लिए यहाँ कुछ नहीं कर सकता। मैंने तो दुनिया में ख़ुदा के अहकाम (आदेश) पहुँचा दिए थे। मैं तुममें से किसी को क़ियामत के दिन इस हाल में न देखूँ कि उसकी गर्दन पर कोई आदमी सवार है और वह चीख़ रहा है और वह आदमी (जिस पर दूसरा आदमी सवार है) कह रहा है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी मदद को पहुँचिए, तो मैं उसके जवाब में कहूँ कि मैं तेरे लिए यहाँ कुछ भी नहीं कर सकता, मैंने तो तुझे दुनिया में हक़ बात पहुँचा दी थी। मैं तुममें से किसी को क़ियामत के दिन इस हाल में न देखूँ कि उसकी गर्दन पर कपड़े के टुकड़े लहरा रहे हैं और वह कह रहा है कि ऐ अल्लाह के नबी! मेरी मदद कीजिए, तो मैं उसके जवाब में कहूँ कि मैं तेरे लिए यहाँ कुछ भी नहीं कर सकता, मैंने तो तुझे दुनिया में हक़ बात पहुँचा दी थी। मैं तुममें से

किसी को क़ियामत के दिन इस हाल में न पाऊँ कि उसकी गर्दन पर सोना-चाँदी सवार है और वह कह रहा है कि ऐ अल्लाह के रसूल! मेरी मदद कीजिए, तो मैं उसके जवाब में यह कहूँ कि मैं तेरे गुनाह की सज़ा को ज़रा भी नहीं टाल सकता, मैंने तो तुझे दुनिया में ही हक़ बात पहुँचा दी थी।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

आदमी दुनिया में रहते हुए धन-दौलत के लालच में बहुत से ग़लत काम करता रहता है। किसी की चोरी कर ली, चुपके से किसी की फ़सल काट लाए, आँख बचाकर डंडी मार दी (यानी कम तौला), सीने-पिरोने के मामले में ग्राहक का कपड़ा बचा लिया। चुनाँचे जानवरों के बोलने और कपड़े लहराने का मतलब यही है कि ग़नीमत के माल में की जानेवाली चोरियाँ, क़ियामत के दिन छिपाई न जा सकेंगी। हर गुनाह चीख़-चीख़कर बताएगा और उसके अपराधी होने का ऐलान करेगा। इतना ही नहीं बल्कि वह ज़मीन भी गवाही देगी जहाँ वह गुनाह किया गया था।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि एक दिन नबी (सल्ल॰) ने यह आयत पढ़ी, "उस दिन ज़मीन अपने (ऊपर बीते हुए) सारे हालात बयान कर देगी।" (क़ुरआन, सूरा-99 ज़िलज़ाल, आयत-4), और सहाबा (रज़ि॰) से पूछा, जानते हो हालात बयान करने का क्या मतलब है? लोगों ने कहा, अल्लाह और रसूल को ही इनका इल्म है। नबी (सल्ल॰) ने कहा, "ज़मीन क़ियामत के दिन गवाही देगी, बयान करेगी कि फ़ुलाँ मर्द और फ़ुलाँ औरत ने मेरी पीठ पर फ़ुलाँ दिन और फ़ुलाँ वक़्त बुरा या अच्छा काम किया, यही मतलब है इस आयत का।"

अल्लाह इस बुरे अंजाम से हमें बचाए और बुरा वक़्त आने से पहले तौबा करने की तौफ़ीक़ दे। (आमीन)

(2)

अल्लाह का शुक्र और उसकी याद

अल्लाह का शुक्र वाजिब है

बयान किया जाता है कि शेख़ सादी (रह॰) को कहीं दावत में जाना था। उनके पास पहनने के लिए कपड़े तो ठीक थे मगर जूते थोड़े पुराने थे। जिसकी वजह से बेचारे बड़े उदास थे, मगर जाना भी ज़रूरी था। आख़िर कपड़े बदलकर उसी हालत में घर से निकले और मन्ज़िले-मक़सूद की तरफ़ चल दिए। मगर दिल कमतरी के एहसास का शिकार था कि मेरे पास अच्छे जूते नहीं हैं। इसी ख़याल में गुम-सुम चले जा रहे थे कि रास्ते में सड़क के किनारे एक आदमी को पड़ा देखा, जिसके पैर कटे हुए थे उसको देखते ही शेख़ सादी (रह॰) की आँखें खुल गईं और साथ ही दिल से आवाज़ निकली—

"ऐ अल्लाह, तेरा लाख-लाख शुक्र है! मेरे पास जूते न सही मगर पैर तो हैं।"

शेख़ सादी के दिल से निकलनेवाली यह आवाज़ चौंका देनेवाली और ख़बरदार कर देनेवाली आवाज़ है जो हम लोगों को उभारती है कि अल्लाह की नेमतों का हर वक़्त शुक्र अदा करते रहना चाहिए। ये आँखें जिनसे हम देखते हैं, ये कान जिनसे हम सुनते हैं, ये हाथ और पैर जिनसे हम काम करते और चलते-फिरते हैं और यह दिमाग़ जिससे हम सोचते हैं, अगर इनमें से कोई चीज़ भी ख़राब हो जाए या छिन जाए तो हमें कितनी तकलीफ़ होगी!

फिर साँस लेने के लिए हवा और प्यास बुझाने के लिए पानी जैसी नेमत हमारे पालनहार ख़ुदा ने हमें दी है। हमसे अगर ज़रा देर के लिए इनमें से कोई एक नेमत भी छीन ली जाए तो हमारी ज़िन्दगी की क्या हालत होगी। ज़रा-सी देर में सारी पहलवानी मिट्टी में मिल जाएगी। इस मौक़े पर एक सच्चा क़िस्सा मुझे याद आ गया, आप भी सुनिए—

एक बार ख़लीफ़ा हारून रशीद को प्यास लगी। ख़िदमत करनेवाले ने पानी पेश किया। पास ही एक बुज़ुर्ग हज़रत सिमाक-बिन-हर्ब (रह०) बैठे हुए थे। उन्होंने ख़लीफ़ा से कहा कि पानी पीने से पहले मेरी एक बात सुन लीजिए। ख़लीफ़ा ने कहा कि कहिए। उन्होंने कहा कि "अगर सारे शहर में कहीं पानी न हो और सिर्फ़ यही एक गिलास पानी का हो तो आप कहाँ तक क़ीमत देकर इसको ख़रीद लेंगे?" ख़लीफ़ा ने कहा, "आधी सल्तनत देकर गिलास का पानी ले लूँगा।" हज़रत सिमाक (रह०) ने फिर पूछा, "अगर यह पानी पीने के बाद पेट से न निकले और तकलीफ़ देने लगे तो फ़िर कितनी क़ीमत देकर इसे निकलवाओगे?" ख़लीफ़ा ने कहा, "सारी बादशाहत दे डालूँगा क्योंकि ज़िन्दगी के लिए असली चीज़ दिल की राहत है और वही न मिल सके तो फिर यह सल्तनत और हुकूमत रखकर क्या करूँगा।"

देखिए ख़लीफ़ा का जवाब कितना इबरत से भरा हुआ है। एक गिलास पानी के सामने बड़ी-से-बड़ी सल्तनत की भी कोई क़ीमत नहीं और हमें यह नेमत मुफ़्त मिल रही है फिर हमें इन नेमतों पर ख़ुदा का कितना शुक्र अदा करना चाहिए। इसके अलावा अगर विचार करें तो बहुत-सी नेमतें हैं जो बिना ख़र्च किए और बग़ैर किसी कठिनाई के हासिल हैं। पाख़ाना-पेशाब से फ़ारिग़ होना, बाल-बच्चों का सुख-शान्ति और सेहत से होना, सिर छिपाने के लिए घर का होना, जान-माल का सुरक्षित होना, खाने-कमाने के क़ाबिल सेहत का होना, हाथ-पैरों का सही-सलामत होना, वक़्त पर हर काम पूरा हो जाना, नाते-रिश्तेदारों का मुहब्बत से पेश आना, समाज में मान-सम्मान के साथ ज़िन्दगी का गुज़ारना। ये सब अल्लाह के अनगिनत एहसान हैं जिनका शुक्र हमें हमेशा अदा करना चाहिए।

कभी-कभी अचानक बिजली चली जाती है। अन्धेरे में चलना-फिरना और काम करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में अगर एकदम से बिजली आ जाए तो हमें अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए। आग जलाने और खाना पकाने के लिए गैस (LPG) एक बड़ी नेमत है। मगर कभी-कभी ख़त्म हो जाने के बाद कई-कई दिन तक सिलेन्डर मिल नहीं पाता, जिसकी वजह से अत्यन्त परेशानी होती है। यह मुश्किल जब हल हो जाए और नया

सिलेन्डर घर में फिर आ जाए तो हमें ख़ुदा का शुक्र अदा करना चाहिए।

इसी तरह सोचिए अक्सर छोटे बच्चे घर से खेलते-खेलते दूर निकल जाते हैं तो यह मौक़ा कैसी घबराहट और परेशानी का होता है। न खाने में दिल लगता है न पीने में। बड़ी खोजबीन और तलाश के बाद जब बच्चे की सूरत दिखाई देती है तो जी कितना ख़ुश होता है। ऐसे वक़्त में अल्लाह का शुक्र अदा न किया जाए तो कितनी ग़लत बात होगी। मतलब यह है कि हर-हर मौक़े पर ख़ुदा का शुक्र अदा करना वाजिब है।

अल्लाह तमाम मुल्कों का मालिक है। कायनात का हाकिम है और कभी न ख़त्म होनेवाले ख़ज़ानों का मालिक है। इनसान की पैदाइश भी उसी की एहसानमन्दी है। इनसान हर वक़्त उसी का मुहताज है। इसी लिए उसकी बख़्शी हुई नेमतों का शुक्र अदा करना बन्दगी का ऐन तक़ाज़ा है। जिसका सबसे बड़ा नमूना हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की सीरत (जीवनी) में मिलता है। नबी (सल्ल॰) अल्लाह की नेमतों और बख़शिशों के सबसे ज़्यादा क़द्र करनेवाले थे।

नबी (सल्ल॰) के पैरों में इबादत करते-करते सूजन आ जाती थी। फिर भी हर रोज़ के काम में कोई फ़र्क़ नहीं आता था। एक दिन हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपके तो अगले-पिछले सब गुनाह माफ़ हो गए हैं, फ़िर ख़ुदा के सामने आप इतना ज़्यादा रोने-गिड़गिड़ाने की तकलीफ़ क्यों करते हैं?" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "आइशा, क्या मैं ख़ुदा का शुक्रगुज़ार बन्दा न बनूँ?"

यह तो ख़ैर बहुत बुलन्द दर्जे की बात है, लेकिन कम-से-कम ख़ुदा की दी हुई नेमतों का हम ज़बान से तो शुक्र अदा करें और दिन-रात में जो छोटी-बड़ी बेशुमार नेमतें हमें मिली हुई हैं उन पर ग़ौर करें ताकि नेमत देनेवाले की तरफ़ से ग़ाफ़िल न हों और जहाँ तक भी हो सके उसका शुक्र अदा करें। खाना खाएँ तो शुक्र अदा करें, हवा का झोंका अच्छा लगे तो शुक्र अदा करें। पानी पीने को मिले तो शुक्र अदा करें। घर में दाख़िल होने के बाद अगर घरवालों को सुख-चैन से देखें तो शुक्र अदा करें। दिनभर की नमाज़ें जमाअत के साथ अदा हो जाएँ तो शुक्र अदा करें, रात को चैन से

नींद आ जाए तो शुक्र अदा करें। औलाद को फ़रमाँबरदार देखें तो शुक्र अदा करें। मतलब यह कि हर वह बात जिससे जी ख़ुश हो और बदन को आराम मिले उसपर पालनहार ख़ुदा का शुक्र अदा करना वाजिब है।

इस आदत से अल्लाह ख़ुश होता है और कामों में बरकत होती है। ख़ुदा ने क़ुरआन मजीद में फ़रमाया है—

"अगर तुम शुक्र अदा करोगे तो मैं तुम्हें और दूँगा और अगर नाशुक्री करोगे तो याद रखो कि मेरा अज़ाब सख़्त है।"

(क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-7)

इस आयत से मालूम हुआ कि अल्लाह का शुक्र अदा करना एक पसन्दीदा अमल है और इससे नेमतों में इज़ाफ़ा (बढ़ोत्तरी) भी होता है, जो शुक्र अदा करनेवाले बन्दों के लिए ख़ास है। इसके बरख़िलाफ़ नाशुक्रा आदमी एहसान करनेवाले और नेमतें देनेवाले की तरफ़ से ग़ाफ़िल होता है, जिसकी वजह से उसकी नेमतें छीन ली जाती हैं, क्योंकि नाशुक्रा आदमी ख़ुदा को नापसन्द है।

अस्ल में इनसान पर शैतान का सबसे पहला हमला यह होता है कि वह उसे नाशुक्रा बनाकर रख दे। हज़रत आदम (अलैहि॰) के क़िस्से से यह बात साफ़ साबित है कि जब अल्लाह की तरफ़ से शैतान को क़ियामत तक जीने की मुहलत मिल गई तो उसने अल्लाह के सामने कहा था कि मैं तेरे बन्दों को बहकाऊँगा और उनमें से तू अकसर को शुक्र अदा करनेवाला नहीं पाएगा। मालूम हुआ कि शैतान की दिली तमन्ना यह है कि आदम (अलैहि॰) की औलाद को शुक्र की इबादत से महरूम (वंचित) करके नाशुक्रा बना दे।

मगर याद रखिए कि आपने तौहीद (एकेश्वरवाद) का कलिमा पढ़कर अल्लाह से एक अहद (वादा) किया है। अल्लाह ने आपको ईमान की दौलत से नवाज़ा है। इसलिए आप का फ़र्ज़ है कि उसके एहसानों की दिल से क़द्र करें और ख़ुदा के इनामों का शुक्र अदा करना न भूलें और यह भी कि ज़बान के शुक्र के साथ यह बात भी याद रखें कि शुक्र की एक सूरत यह भी है

कि ख़ुदा की दी हुई नेमत को उसकी ख़ुशी और मरज़ी के कामों में इस्तेमाल किया जाए। मिसाल के तौर पर आँख एक नेमत है। इसका शुक्र यह है कि अल्लाह की किताब (क़ुरआन मजीद) और दूसरी दीनी किताबें पढ़ी जाएँ, ख़ुदा की क़ुदरत के मंज़र (दृश्य) देखे जाएँ और ग़लत चीज़ें देखने और पराई औरतों पर नज़र डालने से इसे रोके रखें। इसी तरह कान एक नेमत है तो कान को अल्लाह का ज़िक्र सुनने में लगाएँ और गन्दी, अश्लील और बेकार की बातों को सुनने से रोकें। ज़बान से ख़ुदा को याद करें, उसकी बड़ाई व तारीफ़ करें और अल्लाह के ज़िक्र में इसको लगाएँ और गाली-गलौच और किसी की ग़ीबत, चुग़ली करने से बचे रहें। दिल का शुक्र यह है कि इसको ख़ूबियों से आरास्ता (सुसज्जित) करें और गन्दे ख़यालों को इसमें न आने दें।

शुक्र का सजदा

ज़बान से शुक्र अदा करना तो ज़रूरी है ही, मगर बन्दे के लिए लाज़िम है कि कभी-कभी शुक्र का सजदा भी अदा करे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) कहते हैं, "जब नबी (सल्ल॰) को कोई ख़ुशी मिलती या कोई ख़ुशी की घटना घटती तो नबी (सल्ल॰) अल्लाह का शुक्र अदा करने के लिए सजदे में गिर पड़ते थे।" (हदीस : तिरमिज़ी, अबू-दाऊद)

हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) से रिवायत है कि "अल्लाह के नबी (सल्ल॰) को जब अपने पालनहार की तरफ़ से ख़ुशख़बरी मिली कि जिसने नबी (सल्ल॰) पर दुरूद भेजा मैं उस पर रहम करूँगा और जिसने नबी (सल्ल॰) पर सलाम भेजा मैं उस पर सलाम भेजूँगा; तो नबी (सल्ल॰) ने शुक्र का सजदा किया।" (हदीस : ज़ादुल-मआद)

नबी (सल्ल॰) के इस तरीक़े (सुन्नत) को याद रखना चाहिए और जब कोई नई नेमत मिले या ख़ुदा माल या औलाद प्रदान करे या कोई मुसीबत दूर कर दे तो मुनासिब यह है कि अल्लाह के सामने शुक्र का सजदा अदा किया जाए।

नमाज़ की पाबन्दी

हम सब जानते हैं कि ज़िन्दगी खुदा की एक बहुत बड़ी नेमत है। फ़िर सोने पर सुहागा यह है कि ज़िन्दगी के साथ-साथ उसने हमें अक़्ल (बुद्धि), अख़लाक़ और ईमान जैसी दौलत से भी नवाज़ा है। इसके अलावा हवा, पानी, रौशनी, फल, अनाज और तरह-तरह की दूसरी चीज़ें भी दी हैं जिन से हमारी ज़रूरतें पूरी होती हैं।

इन नेमतों का शुक्र अदा करना इनसान का कर्तव्य है। अल्लाह का शुक्र यह है कि आदमी दिल से उसकी नेमतों का सम्मान करे। उस मालिक से सबसे ज़्यादा मुहब्बत रखे और उसकी दी हुई सलाहियतों (क्षमताओं और क़ुव्वतों) को उसकी मरज़ी के मुताबिक़ काम में लाए। लेकिन इनसान के साथ उसका नफ़्स लगा हुआ है जो उसे बुरे कामों पर उभारता है। उसकी ज़िन्दगी में कभी-न-कभी तरह-तरह के उतार-चढ़ाव आते हैं। क़दम-क़दम पर पैर फिसलने के अन्देशे लगे हुए हैं। कभी शैतान दुनिया का सब्ज़-बाग़ दिखाकर सीधे रास्ते से भटका देता है, कभी धोखा और फ़रेब देनेवाले डरा-धमका कर अपनी मरज़ी थोपने की कोशिश करते हैं।

इसी लिए इस बात की ज़रूरत होती है कि उसे बार-बार याद दिलाया जाए कि तू किसी का बन्दा नहीं है, सिर्फ़ एक अकेले अल्लाह का बन्दा है, जिसका कोई साझीदार नहीं, जो हर फ़ायदे व नुक़सान का मालिक है। ज़मीन-आसमान, चाँद-सूरज, पेड़-पौधे, छोटे-बड़े सारे इनसान उसी के पैदा किए हुए हैं और हर मामले में उसी के मुहताज हैं। इसलिए अल्लाह के सिवा अन्य सभी के प्रति हर तरह की अक़ीदतें छोड़कर के बिलकुल यकसू (एकाग्रचित्त) होकर पालनहार अल्लाह के सामने झुकना चाहिए और अपनी ज़िन्दगी को शैतानों की पैरवी और यहाँ तक कि दुनिया के लोगों की ग़ुलामी से अलग करके सिर्फ़ आख़िरत के दिन के मालिक यानी अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में गुज़ारनी चाहिए।

इसी याददिहानी को इस्लाम में "नमाज़" कहा जाता है। यह बन्दगी का वह तरीक़ा है, जिसको अल्लाह ने अपने आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद

(सल्ल०) के ज़रिए तमाम ईमान लानेवालों को बताया। इसके ज़रिए बन्दे के दिल में अल्लाह की अज़मत (महानता) पैदा होती है। उसके हाज़िर-नाज़िर (यानी उसका हर जगह मौजूद होना और हर चीज़ को देखना) होने का यक़ीन हर वक़्त ताज़ा रहता है। और दिल में यह अक़ीदा (विश्वास) बैठ जाता है कि वह ख़ुदा के सिवा किसी का भी बन्दा नहीं है और ख़ुदा ही उसकी जान और माल का असली मालिक है। यह बात उसके अन्दर अपने कर्तव्य (फ़र्ज़) को पहचानने की आदत पैदा करती है। इसके ज़रिए उसके अख़लाक़ सुधरने लगते हैं। वह मामले का खरा और ज़बान का पक्का होता चला जाता है। गन्दे कामों से दूर रहने की पूरी कोशिश करता है। झगड़े और फ़साद के क़रीब भी नहीं जाता है। मतलब यह कि उसकी पूरी ज़िन्दगी में भलाइयाँ बढ़ने लगती हैं और बुराइयाँ घटने लगती हैं। ख़ुदा का फ़रमान है—

> "नमाज़ क़ायम करो, बेशक नमाज़ अश्लील और बुरे कामों से रोकती है।" (क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-45)

नबी (सल्ल०) ने इस बात को एक मिसाल से भी समझाया है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

> "अगर तुममें से किसी के दरवाज़े पर नहर हो, जिसमें वह हर दिन पाँच बार नहाता हो, तो बताओ उसके जिस्म पर कुछ भी मैल-कुचैल बाक़ी रह सकता है? सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया कि नहीं, उसके बदन पर ज़रा भी मैल-कुचैल नहीं रहेगा। नबी (सल्ल०) ने कहा कि यही हाल पाँच वक़्त की नमाज़ों का है। अल्लाह इन नमाज़ों के ज़रिए से गुनाहों को मिटा देता है।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के नबी भी थे और हिकमत और सूझ-बूझवाले भी। इसलिए नबी (सल्ल०) ने इस हदीस के ज़रिए यह हक़ीक़त वाज़ेह (स्पष्ट) की है कि नमाज़ इनसान के गुनाहों को माफ़ किए जाने का ज़रिआ है। इसके ज़रिए इनसान के दिल में शुक्र की वह कैफ़ियत पैदा होती है जिसके नतीजे में वह ख़ुदा की पैरवी की राह में निरंतर आगे बढ़ता चला जाता है और नाफ़रमानियों से उसका ज़ेहन दूर होता चला जाता है। यह

कितनी बड़ी ख़ुशक़िस्मती है जो नमाज़ पढ़ने की वजह से एक मोमिन इनसान को मिलती है। इसकी ताईद इस हदीस से भी होती है—

"हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बार नबी (सल्ल॰) सर्दी के मौसम में बाहर निकले और देखा कि पेड़ से पत्ते गिर रहे थे। नबी (सल्ल॰) ने एक पेड़ की टहनी हाथ में ली, उसके पत्ते भी गिरने लगे। नबी (सल्ल॰) ने कहा, 'ऐ अबू-ज़र! मुसलमान बन्दा जब पूरे दिली ख़ुलूस के साथ अल्लाह के लिए नमाज़ पढ़ता है तो उसके गुनाह ऐसे ही झड़ते हैं जैसे पत्ते गिर रहे हैं।"

(हदीस : अहमद, तरग़ीब)

इस हदीस को पढ़ने से ख़ुलूस के साथ नमाज़ पढ़ने का नतीजा हमारे सामने आ गया। अब यह हमारा अपना क़ुसूर है कि हम बुलन्द व बरतर अल्लाह की रहमत व शफ़क़त से फ़ायदा न उठाएँ। उसकी रहमत तो अता (प्रदान) करने के लिए बहाने ढूँढ़ती है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) नमाज़ की बहुत ज़्यादा पाबन्दी किया करते थे। फ़र्ज़ व आम नफ़्ल नमाज़ों के अलावा जब भी कोई परेशानी होती तो नबी (सल्ल॰) नमाज़ पढ़ते। हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि जब आँधी चलती तो नबी (सल्ल॰) तुरन्त मस्जिद में चले जाते और जब तक आँधी बन्द न होती नबी (सल्ल॰) मस्जिद से बाहर न आते। इसी तरह जब सूरज-ग्रहण हो जाता तो नबी (सल्ल॰) तुरन्त नमाज़ की तरफ़ मुतवज्जोह हो जाते। हमारे लिए नबी (सल्ल॰) के इस नमूने में कामयाबी की ख़ुशख़बरी है।

नमाज़ आदमी अकेला भी पढ़ सकता है लेकिन इनसान अपनी जगह चाहे कितना ही नेक और मुकम्मल हो वह ख़ुदा की बन्दगी का पूरा हक़ अदा नहीं कर सकता, जब तक अल्लाह के दूसरे बन्दे भी उसके मददगार न हों। आदमी दुनिया में तो अकेला पैदा नहीं हुआ; उसके इर्द-गिर्द भाई-बन्दों, दोस्तों, पड़ोसियों का सिलसिला फैला हुआ है। ये रिश्ते किसी तरह काटे नहीं जा सकते। जीने-मरने, लेन-देन और कारोबार सब में एक-दूसरे की ज़रूरत पड़ती है। वैसे भी बहुत से लोग मिल-जुलकर किसी काम को करते हैं तो

इससे बरकत होती है। इसके अलावा शैतानी ताक़तों और फ़ितना-फ़साद फैलानेवाले लोगों को आपस में मिलकर और एकजुट होकर ही दबाया जा सकता है। इसी लिए तमाम लोगों को एक साथ मस्जिद में आने और जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने की ताकीद की जाती है। इससे एक फ़ायदा यह होता है कि सब लोग कन्धे-से-कन्धा मिलाकर एक साथ अपने एक-अकेले मालिक अल्लाह के सामने झुकते हैं और उनमें आपस के छोटा-बड़ा होने का ख़याल ख़त्म हो जाता है।

लोगों को इबादत के लिए इकट्ठा करने के लिए अलग-अलग तरीक़े इख़्तियार किए जाते हैं। इस्लाम ने लोगों को इबादत यानी नमाज़ के लिए बुलाने के लिए अज़ान देने का तरीक़ा बताया है। नमाज़ दिन में पाँच बार पढ़ी जाती है और इसके लिए पाँच बार अज़ान दी जाती है। अज़ान के बोल ये हैं—

اَللّٰهُ اَكْبَرُ، اَللّٰهُ اَكْبَرُ

'अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर'

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।

اَللّٰهُ اَكْبَرُ، اَللّٰهُ اَكْبَرُ

'अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर'

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।

اَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ

'अश्हदु अल्ला-इला-ह इल्लल्लाह'

मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं।

اَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ

'अश्हदु अल्ला-इला-ह इल्लल्लाह'

मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं।

اَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا رَّسُوْلُ اللّٰهِ

'अश्हदु अन-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह'

मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं।

اَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا رَّسُوْلُ اللّٰهِ

'अश्हदु अन-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह'

मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के रसूल हैं।

حَيَّ عَلَى الصَّلٰوةِ

'हय-य अलस्सलाह'

आओ नमाज़ की तरफ़।

حَيَّ عَلَى الصَّلٰوةِ

'हय-य अलस्सलाह'

आओ नमाज़ की तरफ़।

حَيَّ عَلَى الْفَلَاحِ

'हय-य अलल-फ़लाह'

आओ कामयाबी की तरफ़।

حَيَّ عَلَى الْفَلَاحِ

'हय-य अलल-फ़लाह'

आओ कामयाबी की तरफ़।

اَللّٰهُ اَكْبَرُ، اَللّٰهُ اَكْبَرُ

'अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर'

अल्लाह सबसे बड़ा है, अल्लाह सबसे बड़ा है।

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ

‘ला इला-ह इल्लल्लाह’

अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं।

यह कैसी ज़बरदस्त पुकार है, जो हर दिन पाँच बार याद दिलाती है कि ज़मीन में जितने भी खुदा होने के दावेदार नज़र आते हैं, वे सब-के-सब झूठे हैं। ज़मीन और आसमान में सिर्फ़ अल्लाह ही की हस्ती ऐसी है जिसके लिए बड़ाई है। वही एक अकेला बन्दगी के लायक़ है। उसको छोड़कर किसी और की गुलामी और ताबेदारी सही नहीं है। अगर उसकी बन्दगी करोगे तो उसकी बन्दगी में दुनिया और आख़िरत की सफलता है। कौन है जो इस पुकार को सुनकर हिल न जाए? कैसे मुमकिन है कि जिसके दिल में कण-भर भी ईमान मौजूद हो वह अपने मालिक के आगे सिर झुकाने को दौड़ न पड़े! फिर इतना ही नहीं मालिक के सामने हाज़िर होने से पहले वह यह देखेगा कि मैं पाक-साफ़ हूँ या नापाक? मेरे कपड़े कैसे हैं? मैंने हाथ-मुहँ धो (वुज़ू कर) लिया है या नहीं? इस तरह पाक-साफ़ होकर कायनात के बादशाह के सामने सिर झुकाकर खड़े हो गए और यह पढ़ना शुरू किया–

اِنِّىْ وَجَّهْتُ وَجْهِىَ لِلَّذِىْ فَطَرَ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ حَنِيْفًا وَّمَآ اَنَا مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ۝

इन्नी वज्जहतु वजहि-य लिल्लज़ी फ़-त-रस्समावाति वल-अर-ज़ हनीफ़ँव वमा अ-न मिनल मुशरिकीन।

“मैंने अपने आपको हर तरफ़ से काटकर अपने रुख़ को उसकी तरफ़ फेर दिया है, जिसने आसमान और ज़मीन को बनाया है और मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो अल्लाह की प्रभुता में किसी को साझीदार ठहराते हैं।” (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-79)

इसका मतलब यह है कि नमाज़ पढ़नेवाला यक़ीन रखता है कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य-प्रभु), कोई कारसाज़, कोई ज़रूरतें पूरी करनेवाला, कोई दुआएँ सुननेवाला और कोई शक्ति और सामर्थ्य रखनेवाला हाकिम नहीं है और मैंने अपना रुख़ दुनिया की तमाम चीज़ों से हटाकर उस

पालनहार की तरफ़ कर लिया है। सिर्फ़ नमाज़ ही में नहीं बल्कि अब मेरी सारी ज़िन्दगी उसी की मरज़ी के मुताबिक़ बसर होगी। उसका आदेश मेरी ज़िन्दगी का रहबर और रहनुमा होगा। उसका क़ानून मेरे रात-दिन का क़ानून और उसकी पसन्द मेरी पसन्द होगी, यहाँ तक कि उसका दोस्त मेरा दोस्त और उसका दुश्मन मेरा दुश्मन होगा।

इस एहसास और कैफ़ियत के साथ अल्लाहु-अकबर कहकर बन्दा नमाज़ में दाख़िल होता है और बड़े अदब के साथ हाथ बाँधकर खड़े होने के बाद पहले अज़मतवाले अल्लाह की पाकी और बड़ाई बयान करता है, धुतकारे हुए शैतान से अल्लाह की पनाह माँगता है। फिर अपने मालिक से सीधे रास्ते की तरफ़ रहनुमाई की दरख़ास्त (प्रार्थना) करता है और रास्ता भी उन लोगों का जिन पर उसने अपना करम किया और इनाम फ़रमाया।

फिर इसी तरह क़ुरआन मजीद की दूसरी सूरतें जिनमें दुनिया और आख़िरत की तबाही और बरबादी से बचने की शिक्षाएँ हैं, अपनी बन्दगी और विनम्रता का इक़रार है। ख़ुदा की अज़मत और बड़ाई को स्वीकार करता है, बार-बार दोहराता है और आख़िर में अल्लाह के सभी बन्दों के लिए अल्लाह से सलामती और रहमत की दुआएँ माँगने के बाद दाँए-बाँए सलाम फेरकर नमाज़ से बाहर आ जाता है।

ज़रा सोचिए! जिस आदमी का दिन ऐसी पाकी-सफ़ाई और समझ-बूझ के साथ शुरू होगा और एक बार नहीं बल्कि हर कुछ घण्टों के बाद वह एक अल्लाह की अज़मतों के एतिराफ़ और अपनी बेबसी के इक़रार के लिए बार-बार ख़ुदा के दरबार में हाज़िर होता रहेगा तो क्या वह ख़ुदा की नाफ़रमानी कर सकता है? क्या वह अपनी ज़रूरतों के लिए किसी दूसरे के सामने हाथ फैला सकता है? क्या वह बेईमानी और बददियानती से दूसरों का हक़ मार सकता है? क्या वह ख़ुदा की ज़मीन पर बिगाड़ फैला सकता है? क्या वह गन्दी और अश्लील बातों में हिस्सा ले सकता है?

पहली बात तो यह है कि ये बातें एक मुसलमान के ज़मीर (अन्तःकरण) के ख़िलाफ़ हैं। लेकिन अगर वह ऐसा करना भी चाहेगा तो नमाज़ पढ़ने की वजह से उसका दिल ही उसको मलामत करेगा। फिर उसे मस्जिद में

आनेवाले लोगों से शर्म आएगी कि लोग क्या कहेंगे कि नमाज़ी आदमी और झूठ बोले, नमाज़ी आदमी और बेईमानी करे, लोगों के हक़ मारे, रिश्वत ले, सूद खाए और अश्लील व बदकारी के काम करे।

अनुभव तो यही बताता है कि नमाज़ी आदमी गिरे हुए काम नहीं कर सकता और ज़िन्दगी की काया पलटने का यह एक ही नुस्ख़ा है। आपको भी इसे आज़माना चाहिए।

नबी (सल्ल॰) ने नमाज़ को अपनी आँखों की ठण्डक कहा है और नबी (सल्ल॰) ने दुनिया से रुख़सत होते समय भी मुसलमानों को नमाज़ पर क़ायम रहने और नमाज़ के क़ायम करने की बड़ी ताकीद के साथ वसीयत की है और इससे पहले एक बार यह भी कहा था—

"मेरा जी चाहता है कि मैं उन लोगों के घरों में आग लगा दूँ, जो अज़ान की आवाज़ सुनकर भी घरों में पड़े रहते हैं।"

और यह भी कहा—

"इस्लाम में उसका कुछ भी हिस्सा नहीं जो नमाज़ न पढ़ता हो।"

(हदीस : मुसनद बज़्ज़ार)

देखिए नमाज़ पढ़ना कितनी बड़ी ख़ुशक़िस्मती और नमाज़ छोड़ना कितनी सख़्त और शदीद हलाकत और बद्बख़्ती है। इसी लिए एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने नमाज़ की ताकीद करते हुए कहा—

"जो कोई नमाज़ को अच्छी तरह पाबन्दी से अदा करेगा तो उसके लिए वह क़ियामत में नूर होगी और उसके लिए (ईमान व इस्लाम की) दलील होगी और नजात (मुक्ति) दिलाने का ज़रिआ बनेगी और जो कोई इसको होश और पाबन्दी से अदा नहीं करेगा तो वह उसके लिए न तो नूर (रौशनी) होगी, न दलील बनेगी और न वह उसको अज़ाब से मुक्ति दिलाएगी। वह आदमी क़ियामत में क़ारून, फ़िरऔन, हामान और उबैई-बिन-ख़लफ़ (जैसे ख़ुदा के बाग़ियों) के साथ होगा।" (हदीस : मुसनद अहमद)

अब यह हमारे सोचने की बात है कि अगर हमने पाबन्दी के साथ नमाज़ पढ़ने की आदत न डाली तो हमारा अंजाम किन लोगों की तरह होगा। इसलिए हमें नमाज़ की आदत डालनी चाहिए, क्योंकि नमाज़ का पढ़ना फ़र्ज़ है। फ़र्ज़ की अदाइगी के सिलसिले में काहिली दिखाना अच्छी बात नहीं, बल्कि नबी (सल्ल॰) ने इसमें देर करने को भी मना किया है। हज़रत अली (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने मुझसे कहा–

"अली तीन काम वे हैं जिनमें देर कभी न करना (1) नमाज़, जब उसका वक़्त हो जाए (2) जनाज़ा जब तैयार होकर आ जाए (3) बेशौहरवाली औरत जब उसके लिए कोई मुनासिब रिश्ता मिल जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ने की अहमियत

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने कहा–

"जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ना अकेले नमाज़ पढ़ने के मुक़ाबले में सत्ताईस दरजा अधिक फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) रखता है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"जिस आदमी ने अच्छी तरह वुज़ू किया, फिर वह जमाअत के इरादे से मस्जिद की तरफ़ गया, वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि लोग जमाअत से नमाज़ पढ़ चुके हैं और नमाज़ हो चुकी है, तो ख़ुदा उस बन्दे को भी उन लोगों के बराबर सवाब देगा जो जमाअत में शामिल हुए और जमाअत से नमाज़ पढ़ी और यह चीज़ उन लोगों के अज्र व सवाब में कमी का सबब न होगी।'

(हदीस : अबू-दाऊद)

हज़रत अनस (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा–

"जो आदमी चालीस दिन तक हर नमाज़ जमाअत के साथ पढ़े, इस तरह कि उसकी पहली तकबीर न छूटी हो तो उसके लिए दो छुटकारे लिख दिए जाते हैं। एक दोज़ख़ की आग से छुटकारा और दूसरी मुनाफ़िक़त (कपटाचार) से मुक्ति।" (हदीस : तिरमिज़ी)

कितना अच्छा हो कि हम इन छुटकारों और मुक्तियों को पाने की कोशिश करें और अल्लाह की बख़शिशों से फ़ायदा उठाएँ। नमाज़ पढ़नी ही है तो फिर ज़रा पहले ही पहुँच जाएँ ताकि पहली तकबीर में शामिल होने का सवाब भी मिल जाए।

कुछ याद रखने की बातें

"सो जाने या भूल जाने की वजह से अगर नमाज़ कज़ा हो जाए तो जब याद आए या जब सोकर उठे उसी वक़्त अदा कर ले।"

(हदीस : बुख़ारी)

एक नमाज़ के बाद दूसरी नमाज़ का इन्तिज़ार अल्लाह को बहुत पसन्द है। एक बार 'मग़रिब' की नमाज़ के बाद कुछ लोग 'इशा' की नमाज़ का इन्तिज़ार कर रहे थे। तभी नबी (सल्ल०) तशरीफ़ लाए और आप (सल्ल०) इतने तेज़-तेज़ कदमों से चलकर आए कि आपकी साँसें फूल रही थीं। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"लोगो! ख़ुश हो जाओ तुम्हारे रब ने आसमान का एक दरवाज़ा खोलकर तुम्हें फ़रिश्तों के सामने किया और फ़ख़्र (गर्व) के तौर पर कहा देखो! ये मेरे बन्दे एक नमाज़ अदा कर चुके हैं और दूसरी नमाज़ का इन्तिज़ार कर रहे हैं।" (हदीस : इब्ने-माजा)

नमाज़ पढ़ते समय खड़े होने की हालत में निगाह सजदे की जगह हो, रुकूअ के वक़्त पैरों के बीच में, सजदे में नाक पर, क़अदा में बैठते वक़्त सीने पर और सलाम फेरते वक़्त कन्धों पर निगाह रखें। फ़र्ज़ नमाज़ के बाद सुन्नतों और नफ़्लों को घर जाकर भी पढ़ सकते हैं और मस्जिद में भी। औरतों के लिए बेहतर है कि पाँचों वक़्त की नमाज़ें घर पर ही पढ़ लें। अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि०) बयान करते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल०) ने

फ़रमाया—

"औरत का घर के किसी कमरे में नमाज़ पढ़ना सेहन में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है और कमरे की कोठरी में नमाज़ पढ़ना कमरे में नमाज़ पढ़ने से बेहतर है।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

हज़रत अम्र-बिन-शुऐब (रज़ि॰) अपने वालिद और उनके वालिद (अपने दादा) से रिवायत करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अपनी औलाद को नमाज़ की ताकीद करो जब वे सात साल की हों और जब वे दस साल की हों और नमाज़ न पढ़ें तो उनको मारकर नमाज़ पढ़ाओ।" (हदीस : अबू-दाऊद, मिशकात)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) ने एक बार नबी (सल्ल॰) से पूछा, "ऐ अल्लाह के पैग़म्बर! ख़ुदा के नज़दीक कौन-सा अमल सबसे ज़्यादा प्रिय है?" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "नमाज़ को उसके वक़्त पर अदा करना।" और नबी (सल्ल॰) ने यह भी कहा, "बदतरीन चोरी नमाज़ की चोरी है।" लोगों ने पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! नमाज़ में कोई चोरी कैसे करता है?" कहा "रुकूअ और सजदे अधूरे-अधूरे करके।"

अज़ान की आवाज़ सुनते ही नमाज़ की तैयारी शुरू कर दीजिए।

मस्जिद के आदाब

मस्जिद ख़ुदा का घर है। ख़ुदा अपने घर में किसी को आने की तौफ़ीक़ दे दे तो यह उसका सबसे बड़ा एहसान है। अब यह हमारा फ़र्ज़ है कि हम ख़ुदा के घर से प्यार करें और जमाअत की नमाज़ के अलावा भी मस्जिद में अल्लाह को याद करने के लिए बैठें। ऐसे लोग जो अल्लाह को याद करने (ज़िक्र) के लिए मस्जिद में बैठते हैं, उनको नबी (सल्ल॰) ख़ुशख़बरी सुनाते हुए कहते हैं—

"और वह आदमी अर्श के साए में होगा, जिसका दिल मस्जिद में लगा रहता हो।" (हदीस : बुख़ारी)

यानी क़ियामत के हैबतनाक और सख़्त दिन में जब कहीं भी साया न होगा तो अल्लाह तआला ऐसे आदमी को जिसका दिल मस्जिद में लगा रहता

है अपने साए में रखेगा।

यह कितनी बड़ी ख़ुशक़िस्मती की बात है कि कम-से-कम फ़र्ज़ नमाज़ें तो मस्जिद में पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "सुबह व शाम मस्जिद में नमाज़ के लिए जाना ऐसा है जैसे जिहाद के लिए जाना।" और यह भी कहा, "जमाअत से नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में जानेवाले का हर क़दम एक नेकी वाजिब करता है और एक गुनाह को मिटाता है।" (हदीस : इब्ने-हिब्बान)

मस्जिद में जाते समय दिल में सोचिए कि यह कायनात के शहंशाह का दरबार है इसलिए हँसते-बोलते और ग़फ़लत के साथ मस्जिद में दाख़िल होना सही नहीं है, बल्कि अत्यन्त विनम्रता और आदर के साथ दाख़िल हों। दाख़िल होने के बाद सबसे पहले दो रकअत नमाज़ यानी 'तहीयतुल-मस्जिद' अदा कीजिए और ख़ामोशी के साथ अपनी जगह बैठकर अल्लाह को याद कीजिए। मस्जिद में दुनिया की बातें करना, शोर मचाना, मज़ाक़ करना, बाज़ार के भाव-ताव पूछना, सियासी तबसिरे करना बुरी बात है। इनसे बचना चाहिए।

मस्जिद की सफ़ाई का ख़ास ख़याल रखिए। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

> "मस्जिद का कूड़ा-करकट साफ़ करना हसीन आँखोंवाली हूर का महर है।" (हदीस : तबरानी)

मस्जिद में भागिए-दौड़िए नहीं। जमाअत में भी अगर शामिल होना हो तो भी संजीदगी से जाकर मिलिए। दौड़-भागकर जमाअत में शामिल होना मना है। अज़ान देनेवाला (मुअज़्ज़िन) जब अज़ान दे रहा हो तो उसके शब्दों को ख़ुद भी दोहराइए। लोग नमाज़ पढ़ रहे हों और आप क़ुरआन की तिलावत या ज़िक्र कर रहे हों, तो धीमी आवाज़ में करें। उँगलियों में उँगलियाँ डालकर न चटकाएँ।

जमाअत खड़ी होने लगे तो सफ़ (पंक्ति) सीधा रखने का पूरा ख़याल रखें और बीच में ख़ाली जगह न छोड़ें। कन्धे-से-कन्धा और पैर-से-पैर मिलाकर

खड़े हों।

आँखें खोलकर नमाज़ पढ़ें, आँखें बन्द करना नबी (सल्ल॰) के तरीक़े के ख़िलाफ़ है। (मदारिजे-नुबूवत)

फ़ज्र की फ़र्ज़ नमाज़ के बाद थोड़ी देर ख़ुदा के ज़िक्र (याद) में लगे रहें। (तरग़ीब)

फ़ज्र की नमाज़ पढ़ने के बाद इशराक़ के वक़्त तक (सूरज के निकल जाने के वक़्त तक) ख़ुदा के ज़िक्र में व्यस्त रहना नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा है।

फ़ज्र की सुन्नत और फ़र्ज़ नमाज़ के बीच में अगर سُبْحَانَ اللّٰهِ وَ بِحَمْدِهٖ 'सुबहानल्लाहि व बिहमदिही' और سُبْحَانَ اللّٰهِ وَ الْحَمْدُ لِلّٰهِ وَلَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَاللّٰهُ اَكْبَرُ 'सुबहानल्लाहि वल-हमदुलिल्लाहि व ला इला-ह इल्लल्लाहु वल्लाहु-अकबर' पढ़ लें तो बहुत सवाब है।

जहाँ तक हो सके पहली सफ़ (पंक्ति) में बैठिए, मगर किसी को उठाकर नहीं। जगह हो तो बैठें वरना जहाँ जगह मिले वहीं बैठ जाएँ।

रूमाल या कोई दूसरी चीज़ रखकर अगली या किसी दूसरी सफ़ में जगह घेरना सही नहीं है।

जुमे की नमाज़

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जुमे की नमाज़ जमाअत के साथ अदा करना हर मुसलमान पर लाज़िम है। इसमें चार क़िस्म के लोगों को छूट दी गई है—

(1) ग़ुलाम : जो किसी की मिलकियत में हो

(2) औरत

(3) नाबालिग़ लड़का

(4) बीमार (हदीस : अबू-दाऊद)

एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

> "लोगों को चाहिए कि जुमे की नमाज़ कभी भी न छोड़ें वरना खुदा उनके गुनाहों की सज़ा में दिलों पर मुहर लगा देगा फिर वे ग़ाफ़िलों में से हो जाएँगे।" (हदीस : मुस्लिम)

जुमा के दिन नहाना सुन्नत है। सफ़ाई और पाकीज़गी की पाबन्दी करना नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा है।

> "जुमा की नमाज़ के लिए जो आदमी सबसे पहले मस्जिद में पहुँचता है उसकी मिसाल उस आदमी की है, जो अल्लाह के सामने ऊँट की क़ुरबानी पेश करता है।" (हदीस : बुख़ारी)

जुमा का खुतबा बड़े ध्यान से सुनना चाहिए।

जुमा के दिन ज़्यादा-से-ज़्यादा दुरूद शरीफ़ पढ़िए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

> "जुमा के दिन मुझ पर बहुत ज़्यादा दुरूद भेजा करो, इस दिन फ़रिश्ते हाज़िर होते हैं और दुरूद मेरे सामने पेश किया जाता है।" (हदीस : इब्ने-माजा)

जुमा का खुतबा

जुमा के खुतबे में से वे चीज़ें जो सुन्नत यानी नबी (सल्ल॰) के तरीक़े में से हैं—

- खुतबा देने की हालत में ख़तीब का खड़ा रहना।
- दो खुतबे देना।
- दोनों खुतबों के बीच कुछ देर बैठना।
- खुतबा देते वक़्त मुँह लोगों की तरफ़ रखना।
- खुतबा ऐसी आवाज़ से देना कि लोग सुन सकें।
- खुतबे में पहले अल्लाह की तारीफ़ बयान करना।
- नबी (सल्ल॰) पर दुरूद भेजना।
- नसीहत करना व सदुपदेश देना।

- ख़ुतबे को ज़्यादा लम्बा न करना।
- ख़ुतबा मिम्बर पर देना।
- दूसरे ख़ुतबे में नबी (सल्ल॰) के घरवालों और सहाबा व तमाम ईमानवालों के लिए दुआ करना।

सदक़ा–ख़ैरात (दान)

दुनिया में इनसान आता है तो ख़ाली हाथ लेकिन फिर ख़ुदा अपने फ़ज़लो-करम से कुशादगी पैदा कर देता है और नेमतों के ढेर लग जाते हैं। खाने-पीने और हर रोज़ के इस्तेमाल की चीज़ों में बहुतायत हो जाती है, रुपए-पैसे भी बचने लगते हैं। यह सब अल्लाह का बड़ा एहसान है। इस एहसान का सही शुक्र यह है कि जहाँ उसका हुक्म हो, वहाँ अपनी दौलत को ख़र्च किया जाए। अल्लाह ने ज़कात, ख़ैरात और सदक़ों की बहुत-सी मदों में मोमिन बन्दे को ख़र्च करने की तरग़ीब (प्रेरणा) दी है। उन मदों में ख़र्च करते हुए हमको किसी तरह तंगदस्ती और मुहताजी का अन्देशा नहीं होना चाहिए, इसलिए कि जिस ख़ुदा की राह में हम ख़र्च करेंगे वह ज़मीन और आसमान के ख़ज़ानों का मालिक है। उसके पास हमें देने के लिए बस इतना ही नहीं था जो उसने आज हमें दे रखा है बल्कि कल वह इससे भी ज़्यादा हमें दे सकता है। उसी का यह हुक्म है–

"ऐ ईमानवालो! ख़ुदा के रास्ते में पवित्र कमाई ख़र्च करो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-267)

इस दुनिया में बहुत से ज़रूरतमन्द, ग़रीब, मुफ़लिस और अपाहिज (विकलांग) लोग हैं, जो पूरी-पूरी मेहनत-मशक़्क़त करने के बावजूद अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट भर नहीं पाते, उनकी मदद करना और ज़रूरत के वक़्त उनके काम आना हमारा फ़र्ज़ है। इसी को अल्लाह ने अपनी राह बताया है। यानी अपने पालनहार की ख़ुशी के लिए अपना माल ग़रीबों पर ख़र्च करना चाहिए। वैसे भी माल कभी एक जगह नहीं ठहरता है। अगर उसको मुनासिब ढंग से ख़र्च कर दिया तो ठीक है वरना एक दिन बादशाह फ़ीरोज़ की तरह पछताना पड़ता है।

कहा जाता है कि उसके पास एक दिन फ़ीरोज़ा (एक क़ीमती पत्थर) का एक प्याला लाया गया, जिसमें जवाहरात जड़े हुए थे, बादशाह बहुत ख़ुश हुआ। अपने पास बैठे हुए एक बुद्धिमान आदमी से उसने पूछा "तुम इसे कैसा समझते हो?" बुद्धिमान आदमी ने जवाब दिया, "मैं तो इसे मुसीबत समझता हूँ, क्योंकि अगर यह टूट जाए तो खेद हो और चोरी हो जाए तो दिल को फ़िक्र (चिन्ता) हो।" संयोगवश कुछ ही दिनों बाद प्याला टूट गया तो बादशाह को बड़ा सदमा पहुँचा और कहा, "बुद्धिमान आदमी ने सच कहा था, काश! प्याला मेरे पास लाया ही न जाता।"

यही हाल दुनिया की दौलत का है। पहले तो झूठ-सच बोलकर इसको जमा करो और अगर चोरी हो जाए तो परेशानी ही परेशानी। इसी लिए अल्लाह का हुक्म है कि आदमी अपना हाथ खुला रखे और सदक़ा-ख़ैरात खुले दिल से करता रहे। क्योंकि यह इनसान के आमालनामे में नेकियों के बढ़ाने का ज़रिआ और दोज़ख़ की आग से बचाव का असरदार तरीक़ा है। याद रखो, अल्लाह के यहाँ बड़ी कुशादगी है। आख़िरत में तो अल्लाह दानशील (सख़ी) आदमी को बेहद और बेहिसाब देगा ही, दुनिया में भी वह उसकी ग़ैब (परोक्ष) से मदद करता है।

अब्दुल्लाह-बिन-जाफ़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक ग़ुलाम को मैंने देखा कि उसने अपना सारा खाना जो उसके लिए आया था एक कुत्ते को खिला दिया। अब्दुल्लाह ने उससे पूछा कि तूने अपना सारा खाना कुत्ते को क्यों खिला दिया? ग़ुलाम ने कहा कि इस ज़मीन में कुत्ते नहीं हैं। यह कहीं दूर से भटककर आया था और भूखा था। मुझे बर्दाश्त न हुआ कि खुद पेट भर लूँ और यह बेचारा भूखा रह जाए। अब्दुल्लाह ने पूछा कि फिर आज तू क्या करेगा? ग़ुलाम ने जवाब दिया कि फ़ाक़ा कर लूँगा। अब्दुल्लाह ने कहा कि लोग मुझको लोगों के काम आने और उनपर ख़र्च करने पर लानत-मलामत करते हैं, जबकि यह ग़ुलाम मुझ से ज़्यादा भलाई के कामों में ख़र्च करनेवाला है और फिर उन्होंने बाग़ और उस ग़ुलाम को ख़रीदकर आज़ाद कर दिया और बाग़ भी उसी को दे दिया। इसे आप ख़ुदा का इनाम न कहें तो और क्या कहेंगे? जो दुनिया ही में मिल गया और आगे आख़िरत का मामला है

जहाँ सात सौ गुना बदले की ख़ुशख़बरी सुनाई गई है।

यही सबब था कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का हाथ सदक़ा और ख़ैरात के लिए हमेशा खुला रहता था। कोई फ़क़ीर, मुहताज, ग़रीब दरवाज़े पर आता तो ख़ाली हाथ न जाता। घर में माल-दौलत सैंतकर रखने को आप (सल्ल॰) ने कभी पसन्द नहीं किया। इमाम बुख़ारी (रह॰) ने हज़रत उक़्बा-बिन-हारिस (रज़ि॰) से रिवायत की है, वे बयान करते हैं कि एक दिन मैंने अस्र की नमाज़ मदीना में अल्लाह के नबी (सल्ल॰) के पीछे पढ़ी। फिर जब आप (सल्ल॰) ने सलाम फेरा और जल्दी से खड़े हो गए और लोगों की गर्दनें फलाँगते हुए एक बीवी के कमरे में चले गए। लोग नबी (सल्ल॰) की इस जल्दबाज़ी से घबरा गए। कुछ देर बाद नबी (सल्ल॰) बाहर निकले, तो देखा कि सहाबा (रज़ि॰) को आप (सल्ल॰) की जल्दबाज़ी से ताज्जुब हुआ। यह देखकर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "मुझे याद आ गया कि कुछ सोना हमारे पास रखा है। मुझे पसन्द न आया कि उसको रोके रखूँ, मैंने उसे बाँट देने का हुक्म दे दिया।"

हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैं नबी (सल्ल॰) की सेवा में हाज़िर हुआ तो नबी (सल्ल॰) काबे की छाँव में बैठे हुए थे। जब आप (सल्ल॰) ने मुझे देखा तो कहा—

> "काबा के रब की क़सम वे लोग बड़े घाटे में हैं! मैंने निवेदन किया कि मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों, वे कौन लोग हैं? नबी (सल्ल॰) ने कहा, ज़्यादा मालवाले, सिवाय उसके जो अपने आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ अल्लाह के नाम पर ख़र्च करे और ऐसे लोग बहुत कम हैं।"

यह बात बड़े दिल गुर्दे की है कि आदमी अल्लाह की राह में बेहिसाब माल लुटानेवाला हो इसलिए यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि अगर हम इतना नहीं कर सकते तो कुछ भी न करें, बल्कि हर आदमी अपनी हैसियत के मुताबिक़ सदक़ा-ख़ैरात करके यह फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) हासिल कर सकता

है। ख़ुदा के यहाँ अस्ल क़द्रो-क़ीमत ख़ुलूस (निष्ठा) की है। इख़लास के साथ कम-से-कम मिक़दार का सदक़ा (दान) भी अल्लाह के यहाँ क़बूल है। एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने तो यहाँ तक फ़रमा दिया—

"जहन्नम की आग से बचो! चाहे एक खजूर के आधे हिस्से ही के ज़रिए क्यों न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

मतलब यह है कि अगर आदमी के पास सदक़ा करने के लिए रुपया-पैसा या किसी और तरह की कोई चीज़ न हो और उसके पास एक-आधी खजूर ही हो तो वह उसे किसी ज़रूरतमन्द को दे दे तो उसे भी सदक़े का सवाब हासिल हो सकता है। क्योंकि दिली ख़ुलूस के साथ दिया हुआ सदक़ा (दान) आख़िरत (परलोक) के बैंक में जमा होता है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"हर मुसलमान पर हर दिन सदक़ा करना ज़रूरी है।" लोगों ने कहा 'ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे पास इतना माल कहाँ है कि हर रोज़ सदक़ा करें।" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "सदक़ा करने और सवाब हासिल करने के बहुत से ज़रिए हैं (सिर्फ़ माल ही नहीं है)।" फिर फ़रमाया, سُبْحَانَ اللّٰہِ، اَلْحَمْدُلِلّٰہِ، لَآ اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ، اَللّٰہُ اَکْبَرُ "सुब्हानल्लाह", "अलहम्दुलिल्लाह", "ला इला-ह इल्लल्लाह" और "अल्लाहु-अकबर" पढ़ना भी सदक़ा है। दूसरों को नेकी की तलक़ीन करना, गुनाहों से रोकना, रास्तों से काँटे वग़ैरा हटाना, अन्धे आदमी को रास्ता दिखाना, ये सब सदक़ा और सवाब के काम हैं।" (तरग़ीबो-तरहीब)

किसी आदमी को उसके मक़सद के सिलसिले में मदद देना और मुसीबत में फँसे हुए की मदद के लिए दौड़-धूप करना भी सदक़ा है। और किसी कमज़ोर के बोझ को जो उससे न उठता हो उसे अपने हाथ या सिर पर उठा लेना भी सदक़ा कहलाता है।

ऊपर बयान हुए तमाम कामों को अगर किया जाए, तो माली सदक़े के बराबर सवाब मिलेगा। यही बातें एक दूसरी जगह इतने इज़ाफ़े (बढ़ावे) के

साथ हैं कि हज़रत अनस (रज़ि॰) कहते हैं कि सदक़े के इतने तरीक़े मालूम हो जाने के बाद हमें इतनी ख़ुशी हुई कि इस्लाम लाने के बाद की ज़िन्दगी में किसी चीज़ से इतनी ख़ुशी नहीं हुई थी।

आप ख़ुद सोचिए आज से चौदह सौ पचास साल पहले आम लोगों की क्या हालत थी? माली तौर पर ज़्यादातर लोग ग़रीब थे। बड़ी सख़्त मेहनत के बाद ही कुछ हाथ लगता था। वह भी इतना कि अपना पेट भर लें या बच्चों का। ज़ाहिर है कि सदक़े के इतने बहुत से काम नबी (सल्ल॰) की पाक ज़बान से सुनकर सहाबा (रज़ि॰) को बहुत ही ज़्यादा ख़ुशी हुई।

यह बात भी हमारे सामने रहे कि सदक़ा (दान) का यह बड़ा काम केवल सहाबा (रज़ि॰) के जीवन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि क़ियामत तक आनेवाले लोग अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की ख़ुशख़बरी से लाभ उठा सकते हैं। बस ज़रा इख़लास (निष्ठा), कुशादा-दिली और ख़ुदा को राज़ी करने की तमन्ना और आरज़ू दरकार है। ख़ुदा को ख़ुश करने के अलावा इन कामों में कोई और मक़सद सामने न हो। किसी पर एहसान जताने और अपनी बड़ाई चमकाने, किसी के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाने की भावना हरगिज़ न हो। मोमिन (मुसलमान) अपने अमल का बदला सिर्फ़ ख़ुदा ही से चाहता है। इसी में उसका भला भी है।

''सदक़-ए-जारिआ'' के बारे में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि—

मोमिन (ईमानवाले) के मरने के बाद भी उसको कुछ नेकियों का सवाब मिलता रहता है। जैसे किसी को उसने दीन की तालीम दी और दीन का इल्म (ज्ञान) फैलाया, तो जब तक उसके पढ़ाए हुए लोग दुनिया में नेक काम करते रहेंगे उसे भी सवाब मिलता रहेगा।

अगर उसने अपने बच्चों की तरबियत की और इसके नतीजे में वह नेक बना तो जब तक यह लड़का अच्छे काम करता रहेगा, बराबर उसके माँ-बाप को सवाब मिलता रहेगा।

इसी तरह किसी ने मस्जिद या दीनी मदरसे के लिए क़ुरआन मजीद

गिफ़्ट किया तो जब तक क़ुरआन पढ़ा जाता रहेगा सवाब मिलता रहेगा। या मस्जिद या मुसाफ़िरों के लिए कोई सराय बनवाई या पढ़नेवाले बच्चों के लिए कोई कमरा बनवाया या नहर खुदवाई या अपनी ज़िन्दगी में सेहत की हालत में कोई नेक काम किया और उसमें अपना पैसा लगाया तो जब तक उस चीज़ से लोग फ़ायदा उठाते रहेंगे, उसके आमालनामे में सवाब लिखा जाता रहेगा। (हदीस : इब्ने-माजा)

आदमी के मरने के बाद उसके अमल का खाता बन्द कर दिया जाता है लेकिन ऐसी समाजी नेकियाँ और भलाइयाँ जिन्हें हम सदक़-ए-जारिया कहते हैं, उनका सिलसिला ख़त्म नहीं होता है बल्कि जब तक उन चीज़ों से लोग फ़ायदा उठाते रहेंगे उसके आमालनामे में उसका सवाब दर्ज होता रहेगा।

हमारे लिए यह कितना अच्छा मौक़ा है कि हम सदक़-ए-जारिया के ऐसे काम ज़्यादा-से-ज़्यादा करें जिनका सवाब हमेशा-हमेशा तक मिलता रहे।

ज़कात (अनिवार्य दान)

सदक़ा (दान) के अलावा अल्लाह ने नमाज़ की तरह तुम्हारे मालों में से ग़रीबों का कुछ हिस्सा मुक़र्रर भी कर दिया है। जिसका निकालना और देना ऐसा ही फ़र्ज़ है जैसा कि फ़र्ज़ नमाज़ का पढ़ना। अगर ईमानवाला (मुसलमान) बन्दा उसकी अदाइगी नहीं करेगा तो फिर ख़ुदा की पकड़ में आ जाएगा। किसी मुसलमान के पास एक निश्चित मिक़दार में माल-दौलत चाहे नक़द रुपए की शक्ल में हो या ज़ेवर और सोना-चाँदी की शक्ल में बस वह हर साल हिसाब लगाकर अपनी इस दौलत का चालीसवाँ हिस्सा ग़रीब, मुहताज, यतीम, बेवा, बेबस इनसान को दे। अगर ज़कात जमा करने और उसे हक़दारों तक पहुँचाने के लिए बैतुल-माल मौजूद हो तो अपनी ज़कात वहाँ जमा करे। सच्चे मुसलमान की पहचान है कि—

"वे नमाज़ पढ़ते हैं और ज़कात देते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-4)

ज़कात न देने पर चेतावनी

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसको अल्लाह ने माल दिया हो फिर वह उसकी ज़कात अदा न करे तो क़ियामत के दिन उस माल को एक गंजे साँप का रूप दे दिया जाएगा, जिसकी दोनों आँखों के ऊपर दो नुक्ते होंगे। फिर वह साँप ज़कात न देनेवाले कंजूस के गले में तौक़ की तरह डाल दिया जाएगा, जो उसकी दोनों बाँछें पकड़ेगा और काटेगा और कहेगा मैं तेरा माल हूँ, मैं तेरी जमा पूँजी हूँ।" फिर नबी (सल्ल॰) ने इसकी पुष्टि में क़ुरआन की सूरा-3 आले-इमरान की आयत-180 का यह हिस्सा पढ़ा—

"जिन लोगों को अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से नवाज़ा है और फिर वे बुख़्ल (कंजूसी) से काम लेते हैं (यानी वे उसकी ज़कात नहीं निकालते हैं) वे इस ख़याल में न रहें कि यह कंजूसी उनके लिए अच्छी है। नहीं, यह उनके हक़ में निहायत बुरी है। जो कुछ वे अपनी कंजूसी से जमा कर रहे हैं, वही क़ियामत के दिन उनके गले का तौक़ बन जाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

असल बात यह है कि जिन लोगों को अल्लाह ने माल दिया है और वे माल की ज़कात न निकालें तो यह नाशुक्री और जिहालत (अज्ञानता) की बात है। फिर ज़कात और सदक़ों से तो अपने ही ग़रीब भाइयों की सेवा होती है। इस पर अल्लाह का बहुत बड़ा एहसान है कि उसने ज़कात और सदक़ा देने का बहुत बड़ा सवाब और इनाम देने का वादा किया है। क़ुरआन में आया है—

"जो लोग अल्लाह की राह में अपना माल ख़र्च करते हैं उनके ख़र्च करने की मिसाल उस दाने की तरह है जिससे पौधा उगे और उससे सात बालें निकलें और हर बाली में सौ दाने हों और इसी तरह अल्लाह जिसके लिए चाहता है बढ़ाता है। वह बड़ा कुशादा दिल और सब कुछ जाननेवाला है। जो लोग अपना माल ख़ुदा की राह में ख़र्च करते हैं, ख़र्च करके फिर न वे एहसान जताते हैं और न तकलीफ़ पहुँचाते हैं, उनका अज्र उनके रब के पास है और उन्हें

(क़ियामत में) कोई डर व ख़तरा न होगा और न वे कभी दुखी होंगे।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-261, 262)

इस आयत में अल्लाह ने ज़कात देनेवालों और ख़ुदा के रास्ते में ख़र्च करनेवालों से दो वादे किए हैं। एक यह कि जितना वे ख़र्च करेंगे, अल्लाह उसके बदले में सैकड़ों गुना ज़्यादा देगा, दूसरा यह कि क़ियामत के दिन ख़र्च करनेवाले को न कोई डर या भय होगा और न ही दुख। ज़कात की अहमियत और फ़ज़ीलत (श्रेष्ठता) के बारे में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"तीन बातें ऐसी हैं जिस आदमी ने उनको अपना लिया, उसने ईमान का मज़ा पा लिया। पहली यह कि सिर्फ़ एक अल्लाह की इबादत (उपासना) करे। दूसरी यह कि 'अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य) नहीं' पर उसका सच्चा ईमान और यक़ीन हो और तीसरी यह कि हर साल दिल की पूरी ख़ुशी के साथ अपने माल-दौलत की ज़कात अदा करे तो जिसको ये तीन बातें मिली हों तो उसको ईमान का स्वाद और मिठास हासिल हो जाएगी।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

रोज़े की फ़ज़ीलत

रोज़े से मुराद यह है कि आदमी सुबह से शाम तक खाने-पीने और संभोग करने से परहेज़ करे। नमाज़ की तरह यह इबादत भी शुरू ही से तमाम पैग़म्बरों की शरीअत में फ़र्ज़ (अनिवार्य) रही है, जैसा कि क़ुरआन मजीद में ख़ुदा का फ़रमान है—

"ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ कर दिए गए, जिस तरह तुमसे पहले लोगों पर फ़र्ज़ किए गए थे। ताकि तुम मुत्तक़ी और परहेज़गार बन जाओ।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-183)

इसका साफ़ मतलब यह है कि रोज़ों के ज़रिए अल्लाह तआला मुसलमानों को हक़ (सत्य) की राह पर जमने और अपनी ख़ाहिशों पर क़ाबू पाने की तरग़ीब देना चाहता है कि उनके दिल में ख़ुदा का डर और ख़ुदा

की मुहब्बत पैदा हो और उन्हें सब्र और शुक्र के साथ ज़िन्दगी गुज़ारने का ढंग आ जाए। फिर एक-दो दिन की बात नहीं है बल्कि महीने-भर यही तरबियत (ट्रेनिंग) चलती रहती है। जिसका नतीजा हक़ीक़त में देखने में भी आता है कि ग़लत काम करते हुए शर्म आने लगती है। दिल में खुद ही यह ख़ाहिश उभरती है कि कुछ भलाई के काम करें। किसी ग़रीब को खाना खिलाएँ, किसी नंगे को कपड़ा पहनाएँ, किसी मुसीबत के मारे हुए की मदद करें, कहीं कोई काम अच्छा होते देखें तो उसमें हिस्सा लें और अगर बुरा काम हो रहा हो तो उससे अपने-आपको अलग रखें। यही रोज़े की फ़ज़ीलत है जिसमें दुनिया व आख़िरत दोनों जहान की कामयाबी छिपी हुई है। हज़रत सलमान (रज़ि॰) से रिवायत है कि शाबान के महीने की आख़िरी तारीख़ को नबी (सल्ल॰) ने हमारे सामने खुतबा (भाषण) दिया। उसमें नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"ऐ लोगो! तुम पर एक अज़मत और बरकतवाला महीना छानेवाला है। इस महीने की एक रात (शबे-क़द्र) हज़ार महीनों से बेहतर है। इस महीने के रोज़े अल्लाह ने फ़र्ज़ किए हैं और इसकी रातों में अल्लाह के दरबार में खड़े होने (तरावीह पढ़ने) को नफ़्ल इबादत मुक़र्रर किया है। जो आदमी इस महीने में सुन्नत या नफ़्ल अदा करेगा तो उसको फ़र्ज़ के बराबर सवाब मिलेगा और इस महीने में फ़र्ज़ अदा करने का सवाब दूसरे दिनों के सत्तर फ़र्ज़ों के बराबर मिलेगा। यह सब्र का महीना है और सब्र का बदला जन्नत है। यह हमदर्दी और ग़मख़ारी का महीना है और यही वह महीना है जिसमें ईमानवाले बन्दों की रोज़ी बढ़ाई जाती है। जिसने इस महीने में किसी रोज़ेदार का रोज़ा खुलवाया (इफ़्तार कराया) तो यह उसके लिए दोज़ख़ से मुक्ति पाने का ज़रिआ होगा। नबी (सल्ल॰) से पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल! हममें से हर एक को तो रोज़ा खोलने (इफ़्तार करने) का सामान नहीं मिल पाता। नबी (सल्ल॰) ने कहा, अल्लाह यह सवाब उस आदमी को भी देगा जो पानी मिले हुए दूध पर या एक खजूर पर या पानी के एक घूँट पर किसी रोज़ेदार का

रोज़ा इफ़्तार करा दे।" इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया, "इस मुबारक महीने में शुरू का हिस्सा रहमत का है, बीच का हिस्सा मग़फ़िरत (माफ़ी) का है और आख़िरी हिस्सा दोज़ख़ की आग से नजात (मुक्ति) का है।" (हदीस : बैहक़ी)

यानी यह अच्छाई और भलाई के फलने-फूलने का मौसम है। इस महीने में जितनी ज़्यादा नेक नियती के साथ अमल किया जाएगा, उतनी ही ज़्यादा बरकतें हासिल होंगी। इसलिए इन बरकतों को यूँ ही नहीं गँवाना चाहिए। अगर जानते-बूझते समय और स्वास्थ्य के होते हुए रोज़ा छोड़ा तो यह बड़े घाटे की बात होगी। एक हदीस में आया है—

"जिस आदमी ने किसी बीमारी या शरई मजबूरी के बग़ैर रमज़ान का एक भी रोज़ा छोड़ा तो उम्र-भर के रोज़े रखने से भी एक रोज़े की भरपाई न हो सकेगी।" (हदीस : तिरमिज़ी)

रोज़ा तो रख लिया मगर दिन-भर के प्रोग्राम और ग़लत-सलत बातों में कोई अन्तर न आया तो इस तरह भूखा-प्यासा रहना किसी काम का नहीं है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"सिर्फ़ खाना-पीना छोड़ देने का नाम रोज़ा नहीं है। असली रोज़ा तो यह है कि आदमी बेहूदा, बेकार बातों और गन्दी बातों से बचे। तो ऐ रोज़ेदार! अगर तुझे कोई गाली दे या जहालत पर उतर आए तो तू कह दे कि मैं रोज़े से हूँ (यानी उत्तेजित होकर जवाबी कार्रवाई न करे और सोचे कि मैं तो रोज़ेदार हूँ भला मैं किस तरह गाली दे सकता हूँ और लड़ सकता हूँ)।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस नीयत के साथ जो आदमी रोज़ा रखता है उसके लिए नबी (सल्ल॰) ने यह ख़ुशख़बरी दी है—

"जिस आदमी ने ईमानवाली कैफ़ियत के साथ और आख़िरत के बदले की नीयत से रमज़ान के रोज़े रखे तो अल्लाह उसके गुनाहों को माफ़ कर देगा जो पहले हो चुके हैं।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यह कितनी बदनसीबी की बात होगी कि हम रमज़ान के मुबारक महीने

में अपने गुनाहों को माफ़ कराने की कोशिश न करें। बल्कि उल्टा आम दिनों की तरह लोगों के हक़ मारें, बदकारी और बुरे काम करें और हर वक़्त झूठ बोलें। रोज़े रखने का तो मक़सद ही यह है कि आदमी अल्लाह से डरकर गुनाहों से परहेज़ करे और दिलो-जान से सच्चाई व भलाई के रास्ते पर चले। संक्षेप में यह कि रोज़ेदार को रोज़ा रखकर रोज़े की अस्ल रूह से वाक़िफ़ होना चाहिए जैसे—

- नेक और अच्छी बातों पर अमल करना चाहिए।
- बुरी बातों और बुरे कामों जैसे ताश, शतरंज, जुआ वग़ैरा से दूर रहना चाहिए।
- ग़रीब, मुहताज और निर्धनों की मदद करनी चाहिए।
- क़ुरआन मजीद की तिलावत करनी चाहिए।
- अगर हो सके तो जहाँ पाँचों वक़्त की नमाज़ होती हो उस मस्जिद में एतिकाफ़ करना चाहिए।

नबी (सल्ल॰) ने कुछ चीज़ें ऐसी बताई हैं जो रोज़ेदार के लिए बरकत की हैं और उन पर अमल करने में कुशादगी और कामयाबी है जैसे—

- रात को सहरी खाना।
- तरावीह की नमाज़ पढ़ना।
- इफ़्तार में जल्दी करना।
- एतिकाफ़ करना।
- सदक़-ए-फ़ित्र अदा करना।

इसके अलावा ईमानवाले को हर काम में सन्तुलन (तवाज़ुन) और बीच का रास्ता अपनाने की तालीम दी गई है। इसे अपनाना भी सुन्नत (नबी सल्ल॰ का तरीक़ा) है, जिसका बदला अल्लाह के पास महफ़ूज़ रहता है। रमज़ान के अलावा दूसरे दिनों में भी रोज़े रखे जाते हैं, इसमें तवाज़ुन रहना चाहिए।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) को

जब मेरे बारे में पता चला कि मैं बहुत ज़्यादा नमाज़ें पढ़ता हूँ और बहुत ज़्यादा रोज़े रखता हूँ तो मुझसे कहा—

> "ऐसा न किया करो बल्कि कभी रोज़ा रखा करो और कभी रोज़ा न रखो। इसी तरह रात को नमाज़ भी पढ़ा करो और सोया भी करो। तुम्हारे बदन का भी तुम पर हक़ है और तुम्हारी आँखों का भी तुम पर हक़ है। तुम्हारी बीवी का भी तुम पर हक़ है, औलाद का भी और मिलनेवालों का भी हक़ है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज का फ़र्ज़

दीन के अरकान (सुतूनों) में से एक रुक्न हज है। यानी अल्लाह तआला के घर का हज करना, जो मक्का शहर में है। वहाँ जाना, ख़ुदा के घर का तवाफ़ करना, अरफ़ात के मैदान में हाज़िरी देना। ये सब हज के अरकान (सुतून) कहलाते हैं, जिनका हुक्म खुद अल्लाह ने अपनी किताब क़ुरआन मजीद में दिया है।

> "लोगों पर अल्लाह का यह हक़ है कि जो इस घर तक पहुँचने की ताक़त रखता हो वह उसका (काबा का) हज करे और जो कोई इस हुक्म को मानने से इनकार करे तो उसे मालूम हो जाना चाहिए कि अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयात-97)

इस आयत से मालूम हुआ कि हज करना उन लोगों पर फ़र्ज़ है जो वहाँ तक पहुँचने की हैसियत और ताक़त रखते हों और आख़िर में यह भी इशारा कर दिया गया है कि जो हैसियत रखने के बावजूद हज करने न जाएँ तो अल्लाह ऐसे लोगों से बेपरवाह है यानी वे लोग जो मालदार होकर भी हज को न जाएँ तो वे अपना ही नुक़सान करेंगे और ख़ुदा की रहमत से महरूम रहेंगे।

यह अल्लाह का बहुत ही बड़ा एहसान है कि वह अपने बन्दों को अपने घर हाज़िर होने का सौभाग्य प्रदान कर दे। जिसको यह सौभाग्य मिल जाए उसको चाहिए कि वह आजिज़ी और विनम्रता को अपनाए और इन बातों

पर अमल करे–

- हज के सफ़र का मक़सद अल्लाह की ख़ुशी का हासिल करना हो।
- रियाकारी (दिखावे) और शुहरत से बचना चाहिए।
- गुनाहों से ख़ालिस तौबा करे।
- जिन लोगों के हक़ उस पर बनते हों उनको अदा करे।
- हराम की आमदनी से तौबा करे और इस बात का पूरा यक़ीन कर ले कि सफ़र का ख़र्च हराम की कमाई से पूरी तरह पाक और साफ़ है।
- अपने सफ़र के साथियों से मिल-जुलकर रहे।
- लड़ाई-झगड़ा, ग़ुस्सा और हसद हर चीज़ से परहेज़ करे।
- अपना ज़्यादा से ज़्यादा वक़्त नमाज़, क़ुरआन की तिलावत और ख़ुदा के ज़िक्र में गुज़ारे।

नफ़्स का तज़किया (मन का शुद्धिकरण), अमल और अख़लाक़ को सुधारने का यह सबसे अच्छा मौक़ा होता है। हज और उमरा को जानेवाले अल्लाह के ख़ास मेहमान होते हैं, इसलिए उनको इस्लामी आदाब और अख़लाक़ का पूरा-पूरा ख़याल रखना चाहिए। ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचें और तक़वा (ईश-भय) को अपना ज़ादे-राह (रास्ते का सामान) बनाएँ। अल्लाह को ख़ुश करने का यह बेहतरीन ज़रिआ है। नबी (सल्ल०) का इरशाद (कथन) है–

> "जो आदमी ख़ुदा के इस घर की ज़ियारत (दर्शन) करने के लिए यहाँ आया और वह बेहयाई और शहवानी (कामुक) बातों से बचा रहा और नाफ़रमानी व बदकारी में न फँसा हो तो वह पाक-साफ़ होकर इस तरह लौटता है, जिस तरह वह माँ के पेट से पाक-साफ़ पैदा हुआ था।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

सोचिए, कितना बड़ा फ़ायदा एक हाजी को मिलनेवाला है, अगर उसके अमल में इख़लास और परहेज़गारी हो! और यह भी सोचिए कि अगर कोई माल-दौलत रखता हो, जिसे हर प्रकार ख़ुशहाली हासिल हो और फिर भी वह

ख़ुदा के इन इनामों से महरूम (वंचित) रहे तो कितने अफ़सोस की बात है! यानी हर तरह की हैसियत रखने के बावजूद हज के लिए न जाए। ऐसे ही लोगों के लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जिस किसी को ख़ुदा ने इतना माल दिया है कि वह हज कर सके लेकिन इसके बावजूद वह हज न करे तो कोई परवाह नहीं है कि चाहे वह यहूदी होकर मरे या ईसाई होकर।" (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह का ज़िक्र (गुणगान)

आदमी अपनी हस्ती और दुनिया की चीज़ों पर जितना ग़ौर करता है उतनी ही अपने पैदा करनेवाले की अज़मत (महानता) उस पर खुलती जाती है। इसी का यह तक़ाज़ा (माँग) है कि हम उस परवरदिगार और क़ियामत के दिन के मालिक से मुहब्बत करें। उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा याद करें और आजिज़ी व विनम्रता के साथ उसके सामने झुके रहें। इस तरह हम उसके क़रीब हो जाएँगे और उसकी रहमत की नज़र हमारी तरफ़ होगी, जैसा कि ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"अल्लाह जो बड़ी शानवाला है, फ़रमाता है कि मैं बन्दे के साथ वैसा ही मामला करता हूँ जैसा कि वह मेरे बारे में गुमान रखता है। जब वह मुझे याद करता है तो मैं उसके साथ होता हूँ। अतः अगर वह मुझे अपने दिल में याद करता है तो मैं भी उसे अपने दिल में याद करता हूँ और अगर वह मेरा ज़िक्र मजलिस (जनसभा) में करता है तो मैं उस मजलिस से बेहतर यानी फ़रिश्तों की मजलिस में याद करता हूँ और अगर बन्दा मेरी तरफ़ एक बालिश्त बढ़ता है तो मैं एक हाथ उसकी तरफ़ बढ़ता हूँ और अगर वह मेरी तरफ़ चलकर आता है तो मैं उसकी तरफ़ दौड़कर आता हूँ।"

इनसान के लिए इससे बड़ी और क्या इज़्ज़त हो सकती है कि बन्दे को अल्लाह का साथ, अल्लाह की मदद और अल्लाह की क़ुरबत (सामीप्य) हासिल हो जाए। जिस से इनसान अपने नफ़्स और शैतान का मुक़ाबला कर सके।

यह तो सभी जानते हैं कि दुनिया में हर वक़्त ग़फ़लत के झोंके चलते हैं, क़दम-क़दम पर शैतान के चेले दिलों पर छापे मारते हैं। वे आदमी को बेकार की बातों और खेल-तमाशों की दिलचस्पियों के ज़रिए से अपनी तरफ़ खींचते हैं, जिनका एक ही असरदार इलाज है और वह है "अल्लाह का ज़िक्र।" हज़रत अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"शैतान आदम के बेटे के दिल पर घुटने टेके बैठा रहता है। जब वह अल्लाह का ज़िक्र करता है तो शैतान पीछे हट जाता है और जब वह ग़ाफ़िल होता है तो वह उसके दिल में वसवसे (शंकाएँ) डालता है।" (हदीस : बुख़ारी)

एक दूसरी हदीस में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने कहा—

"हर चीज़ को साफ़ करने और निखारने के लिए कोई चीज़ हुआ करती है। दिलों को साफ़ करने और निखारनेवाली चीज़ अल्लाह का ज़िक्र है।" (हदीस : बैहक़ी)

इसका मतलब यह है कि ख़ुदा के ज़िक्र की बदौलत ईमानवाले का दिल पाक हो जाता है। इसी लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ कि अल्लाह को ज़्यादा से ज़्यादा याद किया करो और ज़िक्र की मिसाल ऐसी समझो जैसे किसी आदमी का दुश्मन निहायत तेज़ी के साथ उसका पीछा कर रहा हो, यहाँ तक कि उस आदमी ने भागकर एक मज़बूत क़िले में पनाह ली और दुश्मनों के हाथ पड़ने से बच गया। इसी तरह एक बन्दा शैतान से नजात नहीं पा सकता है मगर अल्लाह की याद के सहारे।"
(हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह की याद से मुराद उसकी हस्ती व सिफ़ात, उसकी अज़मत व क़ुदरत और उसके रहम और करम ग़रज़ उसके तमाम गुणों और ख़ूबियों का शऊर होना और समझना है। तभी आदमी अपने सबसे बड़े दुश्मन शैतान के हमलों से बच सकता है। इसकी अमली शक्ल यह है कि आदमी फ़र्ज़

नमाज़ अदा करे, नफ़्ल नमाज़ ख़ास तौर पर 'तहज्जुद' की नमाज़ की पाबन्दी करे और जो दुआएँ नबी (सल्ल॰) ने सिखाई हैं उनको बार-बार समझते हुए पढ़े और दिन-रात में समय-समय पर ख़ुदा के नामों का विर्द (जाप) करता रहे। यही वह क़िला है जिसमें पनाह लेकर शैतान के हमलों का मुक़ाबला करना आसान हो जाता है। फिर सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसे आदमी को ख़ुदा की निकटता हासिल हो जाती है। यही असली ज़िन्दगी की मेराज (बुलन्दी) है। आप ख़ुद ही सोचिए कि ज़िन्दगी की मेराज इसके सिवा और क्या हो सकती है कि बन्दा अपने ख़ुदा को पा ले और दिलो-जान से उससे मुहब्बत करे। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने अल्लाह के ज़िक्र को सबसे बड़ी इबादत बताया है। एक साहब ने नबी (सल्ल॰) से सवाल किया कि अल्लाह के यहाँ सबसे अच्छी और अफ़ज़ल इबादत कौन सी है? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह का ज़िक्र।"

मज़े की बात यह है कि यह सबसे अफ़ज़ल इबादत है फिर भी इस अमल के लिए ख़ुदा ने कोई भी शर्त नहीं रखी है। यानी जैसे नमाज़ के लिए वुज़ू की शर्त है कि वुज़ू किए बग़ैर नमाज़ नहीं होती मगर अल्लाह के ज़िक्र के लिए इसकी भी ज़रूरत नहीं। किसी ख़ास वक़्त का होना ज़रूरी नहीं। मुँह क़िबले की तरफ़ होना भी ज़रूरी नहीं। जब चाहो, जहाँ चाहो, जिस हाल में हो ज़बान से ज़िक्रे-इलाही किया जा सकता है। उठते-बैठते, चलते-फिरते और काम में लगे हुए ग़रज़ हर वक़्त, हर हाल में यह इबादत की जा सकती है। सफ़र में हों या घर पर हों, पैदल जा रहे हों या सवारी पर हों, सुबह-शाम और रात कोई भी वक़्त हो बग़ैर किसी ख़ास एहतिमाम के मुँह से 'अल्लाहु-अल्लाहु' कहा जा सकता है। बल्कि नापाकी की हालत और माहवारी की हालत में भी ज़िक्र करना जाइज़ है। सिर्फ़ नंगे होने की हालत में या पाख़ाने (शौचालय) में ज़बान से ज़िक्र नहीं करना चाहिए। यह बेअदबी की बात है। बाक़ी तमाम वक़्तों में ज़िक्र करना अच्छा है और ख़ुदा के ज़िक्र से ग़फ़लत बरतना बड़े अफ़सोस की बात है। नबी (सल्ल॰) ने तो यहाँ तक कहा है—

"जो लोग किसी मजलिस (सभा) से इस हालत में उठ जाएँ कि

उसमें उन्होंने अल्लाह का ज़िक्र न किया हो तो वे मरे हुए गधे पर से उठे और यह मजलिस उनके लिए (क़ियामत के दिन) अफ़सोस का सबब बनेगी।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी लिए नबी (सल्ल०) ने एक दूसरी हदीस में फ़रमाया है कि हर मजलिस के आख़िर में ये कलिमात पढ़ लेने चाहिएँ। इससे उस मजलिस की कोताहियों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) हो जाता है—

سُبْحَانَکَ اللّٰھُمَّ وَبِحَمْدِکَ لَآ اِلٰہَ اِلَّا اَنْتَ اَسْتَغْفِرُکَ وَاَتُوْبُ اِلَیْکَ

"सुबहा-न कल्लाहुम-म व बि-हमदि-क ला इला-ह इल्ला अन-त असतग़फ़िरु-क व अतूबु इलैक।" (हदीस : नसाई)

"ऐ अल्लाह तू पाक व बरतर है, सारी तारीफ़ और शुक्र तेरे ही लिए है। तेरे अलावा कोई माबूद (पूज्य) नहीं, मैं तुझी से माफ़ी चाहता हूँ और तेरी तरफ़ ही पलटता हूँ।"

अल्लाह की याद और उसका ज़िक्र हक़ीक़त में इस्लाम की अस्ल रूह और उसकी बुनियाद है। ख़ुदा से ग़ाफ़िल आदमी इस्लाम की रूह से महरूम रहता है। ज़िक्र की इसी अहमियत के पेशेनज़र क़ुरआन मजीद में ईमानवालों को हुक्म दिया गया है कि वे अल्लाह को याद करते रहें—

"अपने रब को सुबह-शाम याद करते रहो अपने जी में गिड़गिड़ाते हुए और डरते हुए और धीमी आवाज़ के साथ, और उन लोगों में से न हो जाओ जो ग़फ़लत में पड़े हुए हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-7 आराफ़, आयत-205)

हज़रत आइशा (रज़ि०) कहती हैं कि नबी (सल्ल०) ऐसे थे कि हर वक़्त उनकी ज़बान पर अल्लाह का ज़िक्र जारी रहता था। सोते-जागते, चलते-फिरते, बैठते-उठते, खाते-पीते, ख़ुदा की याद से दिल ख़ुशी और सुकून हासिल करता। फिर यही नसीहत नबी (सल्ल०) अपने पास बैठनेवालों को करते कि ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़िक्र किया करो।

ज़्यादा-से-ज़्यादा अल्लाह का ज़िक्र करने के सिलसिले में एक बुज़ुर्ग

कहते हैं कि ज़्यादा-से-ज़्यादा ज़िक्र करने का मतलब यह है कि आदमी की ज़बान पर हर वक़्त, ज़िन्दगी के हर मामले में किसी-न-किसी तरह ख़ुदा का नाम आता रहे और यह कैफ़ियत आदमी पर उस वक़्त तक तारी नहीं होती जब तक कि उसके दिल में ख़ुदा का ख़याल न रच-बस गया हो। इनसान के शुऊर (चेतन मन) से गुज़रकर तहतश् शुऊर और लाशुऊर (अचेतन मन) में जब यह ख़याल गहरा उतर जाता है तब उसका यह हाल होता है कि जो काम और जो बात भी वह करेगा उसमें ख़ुदा का नाम ज़रूर आएगा। खाएगा तो बिसमिल्लाह पढ़ेगा, खा चुका होगा तो अल-हमदुलिल्लाह कहेगा। सोएगा तो अल्लाह को याद करके, उठेगा तो ख़ुदा का नाम लेते हुए। बातचीत में बार-बार उसकी ज़बान से बिसमिल्लाह, इन-शाअल्लाह, माशाअल्लाह और इसी तरह के दूसरे कलिमात निकलते रहेंगे। अपने हर काम और मामले में अल्लाह से मदद माँगेगा, हर नेमत के मिलने पर उसका शुक्र अदा करेगा। हर आफ़त आने पर उसकी रहमत का तलबगार होगा। हर मुश्किल में उसकी तरफ़ पलटेगा। हर बुराई का मौक़ा सामने आने पर उससे डरेगा। हर ग़लती के काम हो जाने पर उससे माफ़ी चाहेगा। हर हाजत (ज़रूरत) पेश आने पर उससे दुआ माँगेगा। ग़रज़ उठते-बैठते, खाते-पीते और दूसरे काम-काज करते वक़्त उसका वज़ीफ़ा (जाप) ख़ुदा ही का ज़िक्र होगा। यही चीज़ इस्लामी ज़िन्दगी की जान है और सबसे अफ़ज़ल (उत्तम) इबादत है। ऐसी सरल, आसान इबादत हम सबको अपनानी चाहिए। कुछ ख़ैर के कलिमात नीचे लिखे जा रहे हैं, याद कर लीजिए और ज़बान पर जारी रखिए। फ़ायदे का सौदा है। अल्लाह ने इन कलिमात में बड़ी बरकत रखी है।

कलिमाते-ख़ैर

- कोई काम शुरू करो तो कहो–

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

"बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम" यानी शुरू करता हूँ अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहम करनेवाला है।

- कुछ करने का इरादा हो तो कहो—

إِنْ شَآءَ اللّٰهُ

'इन-शाअल्लाह' यानी अगर अल्लाह ने चाहा तो।

- कोई अच्छी ख़बर सुनने में आए तो कहो—

سُبْحَانَ اللّٰهِ

'सुबहानल्लाह' यानी अल्लाह पाक व बरतर है।

- किसी तकलीफ़ में हो तो कहो—

يَا اَللّٰهُ

'या अल्लाह' यानी ऐ अल्लाह।

- किसी चीज़ की तारीफ़ करनी हो तो कहो—

مَاشَآءَ اللّٰهُ

'माशाअल्लाह' यानी जो अल्लाह ने चाहा।

- किसी का शुक्रिया अदा करना हो तो कहो—

جَزَاكَ اللّٰهُ خَيْراً

'जज़ाकल्लाहु ख़ैरा' यानी अल्लाह तुम्हें अच्छा बदला दे।

- सोकर उठो तो कहो—

لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ

'ला इला-ह इल्लल्लाह' यानी अल्लाह के सिवा कोई माबूद (पूज्य-प्रभु) नहीं।

- छींक आए तो कहो—

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ

अल-हमदुलिल्लाह' यानी शुक्र अल्लाह ही के लिए है।

- किसी ग़लत काम पर अफ़सोस करना हो तो—

اَسْتَغْفِرُ اللّٰهَ

'अस-तग़फ़िरुल्लाह' मैं अल्लाह से माफ़ी चाहता हूँ।

- ख़ुदा के नाम पर कुछ दो तो कहो—

فِیْ سَبِیْلِ اللّٰہِ

'फ़ी-सबीलिल्लाह' यानी अल्लाह की राह में।

- किसी को रुख़सत (विदा) करो तो कहो—

فِیْ اَمَانِ اللّٰہِ

'फ़ी अमानिल्लाह' यानी अल्लाह की हिफ़ाज़त में।

- जब कुछ नागवारी हो तो कहो—

نَعُوْذُ بِاللّٰہِ

'नऊज़ुबिल्लाह' यानी हम अल्लाह की पनाह में आते हैं।

- किसी की मौत की ख़बर मिले तो कहो—

اِنَّا لِلّٰہِ وَاِنَّا اِلَیْہِ رَاجِعُوْنَ

'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' यानी हम अल्लाह ही के लिए हैं और हमें उसी की तरफ़ लौटकर जाना है।

तसबीहात

इन कलिमात के अलावा कुछ कलिमात और भी हैं जिनको तसबीह के तौर पर दोहराते रहना चाहिए। हज़रत समरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि तमाम कलिमात में अफ़ज़ल (श्रेष्ठ) ये चार कलिमात हैं—

(۱) سُبْحَانَ اللّٰہِ (۲) اَلْحَمْدُ لِلّٰہِ (۳) لَآ اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ (۴) اَللّٰہُ اَکْبَرُ

(1) सुबहानल्लाह (2) अल-हमदुलिल्लाह (3) ला इला-ह इल्लल्लाह (4) अल्लाहु-अकबर। (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

''दो कलिमे हैं जो ज़बान पर हल्के-फुल्के, अमल की तराज़ू में बड़े

भारी और रहम करनेवाले ख़ुदा को बहुत प्यारे हैं। वे ये हैं—

سُبْحَانَ اللّٰهِ وَبِحَمْدِهٖ سُبْحَانَ اللّٰهِ الْعَظِيْمِ

'सुबहानल्लाहि व बि-हमदिही', 'सुबहानल्लाहिल-अज़ीम।'

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

अल्लाह पाक व बरतर है और तारीफ़ सिर्फ़ उसी के लिए है। अज़मत और बरतरी बड़ाईवाले ख़ुदा ही के लायक़ है।

सबसे अफ़ज़ल (सर्वश्रेष्ठ) ज़िक्र

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"सबसे अफ़ज़ल ज़िक्र لَا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ 'ला इला-ह इल्लल्लाह है।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने मुझसे फ़रमाया—

"मैं तुमको वह कलिमा बताऊँ जो अर्श के नीचे से उतरा है और जन्नत के ख़ज़ानों में से है। वह है لَا حَوْلَ وَلَا قُوَّةَ اِلَّا بِاللّٰهِ 'ला हौ-ल वला कुव्व-त इल्ला बिल्लाह' (कोई तदबीर नहीं, कोई ताक़त नहीं मगर अल्लाह की तरफ़ से) जब बन्दा दिल से यह कलिमा पढ़ता है तो अल्लाह फ़रमाता है कि यह बन्दा (अपने घमंड और अहंकार को छोड़कर) मेरा ताबेदार और फ़रमाँबरदार हो गया।"

(हदीस : बैहक़ी)

यह कितना बड़ा इनाम है। अगर इस पर ग़ौर किया जाए तो बन्दा कभी इस कलिमे को भुला नहीं सकता।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो बन्दा हर नमाज़ के बाद 33 बार सुबहानल्लाह, 33 बार अल-हमदुलिल्लाह, और 33 बार अल्लाहु-अकबर' और आख़िर में

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ، لَهُ الْمُلْكُ وَلَهُ الْحَمْدُ وَهُوَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ

'ला इला-ह इल्लल्लाहु वह्दहू ला शरी-क लहू लहुल्मुल्कु व लहुल्हम्दु

व हु-व अला कुल्लि शैइन क़दीर' (कोई इबादत के लायक़ नहीं सिवाय अल्लाह के, वह अकेला है, उसका कोई शरीक नहीं। उसी के लिए बादशाहत है और उसी के लिए तारीफ़ व शुक्र है और वह हर चीज़ की क़ुदरत रखता है।) पढ़े तो उसके लिए बहुत बड़े बदले का वादा है।''

मुस्लिम की दूसरी हदीस में है कि जो आदमी ये तसबीहें पढ़ता है उसके गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं फिर चाहे वे इतने ज़्यादा हों जैसे समुद्र की लहरों के झाग।

हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इरशाद फ़रमाया—

''अल्लाह के पैग़म्बर मूसा (अलैहि॰) ने ख़ुदा के सामने अर्ज़ किया कि ऐ मेरे रब! मुझको किसी कलिमे की नसीहत फ़रमा दें, जिसके ज़रिए से मैं तुझे पुकारूँ (यानी याद करूँ)। तो अल्लाह ने फ़रमाया, 'ऐ मूसा لَا إِلٰهَ إِلَّا اللّٰهُ 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के अलावा कोई इबादत और बन्दगी के लायक़ नहीं) कहा करो। उन्होंने अर्ज़ किया, ''ऐ मेरे रब! ये कलिमा तो तेरे प्यारे ही बन्दे कहते हैं, मैं तो वह कलिमा चाहता हूँ जो आप ख़ास तौर पर मुझे ही बताएँ।'' अल्लाह ने फ़रमाया, ''ऐ मूसा अगर सातों आसमान और मेरे सिवा तमाम कायनात और सातों ज़मीन एक पलड़े में रखें तो لَا إِلٰهَ إِلَّا اللّٰهُ 'ला इला-ह इल्लल्लाहु' का वज़न उन सबसे ज़्यादा होगा।''

(हदीस : मआरिफ़ुल-हदीस)

हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) से सवाल किया गया कि बन्दों में सबसे अच्छा और क़ियामत के दिन अल्लाह के नज़दीक सबसे क़रीबी कौन है? नबी (सल्ल॰) ने जवाब दिया—

''जो मर्द बहुत ज़्यादा अल्लाह का ज़िक्र करनेवाले हैं और जो औरतें बहुत ज़्यादा अल्लाह का ज़िक्र करनेवाली हैं।

(हदीस : तिरमिज़ी, इब्ने-माजा)

हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) बयान करते हैं कि आख़िरी बात जिस पर मैं अल्लाह के नबी (सल्ल॰) से जुदा हुआ हूँ वह यह है कि मैंने नबी (सल्ल॰) से पूछा कि कौन-सा अमल अल्लाह को सबसे ज़्यादा पसन्द है? नबी (सल्ल॰) ने कहा—

> "(वह अमल यह है कि) तुम्हें इस हालत में मौत आए कि तुम्हारी ज़बान अल्लाह के ज़िक्र से तर हो।" (हिसने-हसीन)

हर नेक अमल अल्लाह के ज़िक्र में दाख़िल है

अगर कोई काम सच्ची नीयत से अल्लाह के लिए किया जाता है तो वह भी अल्लाह के ज़िक्र में दाख़िल है, जैसा कि हज़रत सईद-बिन-जुबैर (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि अल्लाह का ज़िक्र सिर्फ तसबीह-व-तहलील (यानी सुबहानल्लाह और ला-इला-ह इल्लल्लाह पढ़ने) और ज़बानी ज़िक्र पर निर्भर नहीं है, बल्कि हर अमल जो अल्लाह की फ़रमाँबरदारी में किया जाए वह भी ख़ुदा के ज़िक्र में दाख़िल है, शर्त यह है कि नीयत हुक्म को मानने की हो।

इसी तरह दुनिया में तमाम कारोबार अगर उनमें इस्लामी नियमों की पाबन्दी का ध्यान रहे कि जहाँ तक जाइज़ है किया जाए और जिस हद पर पहुँचकर रोक दिया गया है छोड़ दिया जाए तो ये सारे अमल और काम जो ज़ाहिर में दुनियावी काम हैं वे भी अल्लाह के ज़िक्र में शामिल होंगे।

(अफ़कारे-नौ, दिल्ली, पेज-5)

तौबा और माफ़ी चाहना

> "अल्लाह तौबा करनेवालों और पाक-साफ़ रहनेवालों को पसन्द करता।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा आयत-222)

साफ़-सुथरी चीज़ों को हर आदमी पसन्द करता है। अल्लाह भी साफ़-सुथरे लोगों को पसन्द करता है और ऐसे लोगों को भी कि अगर उनसे कोई ग़लती हो जाए तो वे फ़ौरन तौबा कर लें।

यह तो ज़ाहिर है कि आदमी के पीछे उसका नफ़्स और शैतान लगा हुआ है, जो उसको सीधे रास्ते से भटका देता है। लेकिन सही और अच्छा आदमी वह है जो क़दम डगमगाने के बाद तुरन्त तौबा कर ले। तौबा करने

से ईमान के चिराग़ में रौशनी आती है और अल्लाह की ख़ुशनूदी हासिल होती है। इसी लिए हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि—

"ख़ुदा अपने बन्दों की तौबा से इससे भी ज़्यादा ख़ुश होता है जितना वह आदमी जिसकी सवारी की ऊँटनी किसी जंगल में हो और उस पर उस आदमी का खाना-पीना लदा हुआ हो और वह खुलकर कहीं चल दे और यह उसको तलाशने में थक-हार कर ख़ामोश हो जाए और एक पेड़ के साए में मायूस होकर पड़ जाए। इसी नाउम्मीदी की हालत में क्या देखे कि ऊँटनी पास खड़ी है। बस उसकी नकेल पकड़कर और ख़ुशी के मारे बोल पड़ा "या अल्लाह तू मेरा बन्दा और मैं तेरा ख़ुदा" कि ख़ुशी की ज़्यादती के सबब उल्टी बात ज़बान से निकल गई।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

देखिए कहाँ तो अल्लाह तमाम जहानों का परवरदिगार, कायनात का मालिक और कहाँ हम हक़ीरतरीन, आजिज़, मुहताज बन्दे; लेकिन अल्लाह का अपने बन्दों को सुधारने-सँवारने और माफ़ कर देने की चाहत रखना—कैसा अजीब है! अपने ख़ुदा की इस मुहब्बत और दरिया-दिली को सुनकर तो हमारा भी यह रवैया होना चाहिए कि उस रहीम-करीम आक़ा के सामने रोएँ, गिड़गिड़ाएँ और माफ़ी माँगें ताकि वह ख़ुश हो। अगर हम तौबा न करें तो यह हमारा ही नुक़सान है, जैसे कोई आदमी अगर नाले में गिर पड़े और उसे देखकर कोई निकालने दौड़े तो वह अपना हाथ सिकोड़े रखे और उसी गन्दगी में पड़ा रहे, जबकि अल्लाह का हाल तो यह है कि—

"अल्लाह हर रात को अपना हाथ फैलाता है कि जिस शख़्स ने दिन में कोई गुनाह किया हो, वह रात को ख़ुदा की तरफ़ पलट आए और दिन में वह अपना हाथ फैलाता है ताकि रात में अगर किसी बन्दे ने गुनाह किया हो तो वह दिन में अपने रब-पालनहार की तरफ़ पलटे और अपने गुनाहों की माफ़ी माँगे। अल्लाह ऐसा ही करता रहेगा यहाँ तक कि सूरज पश्चिम से निकलने लगे (यानी क़ियामत आ जाए)।" (हदीस : मुस्लिम)

हाथ फैलाने का मतलब यह है कि वह अपने गुनाहगार बन्दों को बुलाता है कि मेरी तरफ़ आओ, मेरी रहमत तुम्हें अपने दामन में लेने के लिए तैयार है। अगर रात के किसी हिस्से में तुमसे कोई ग़लती हो गई तो दिन निकलते ही तौबा करलो। अगर तौबा करने में देर लगाओगे तो शैतान तुम्हें मुझसे और दूर कर देगा और ख़ुदा से दूर होना इनसान के लिए तबाही व बरबादी का कारण है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि–

> "ऐ लोगो! अल्लाह के सामने तौबा किया करो क्योंकि मैं भी रोज़ाना सौ मर्तबा तौबा करता हूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

सोचने की बात है कि नबी (सल्ल॰) मासूम, बेगुनाह, पाक-साफ़ होने के बावजूद सौ-सौ बार तौबा करते हैं तो हम जो गुनाहों में हर वक़्त लत-पत रहते हैं कि कभी झूठ बोल दिया, कभी किसी को गाली दे दी, किसी की ग़ीबत कर दी, किसी को बुरा-भला कह दिया। मतलब यह कि हमसे तो कोई-न-कोई गुनाह होता ही रहता है तो फिर तौबा के अमल को क्यों न अपनाएँ कि इससे दिल की गन्दगी भी दूर हो और यह उम्मीद भी बँधे कि जिस गुनाह में फँसा हुआ था वह डर और शर्मिन्दगी के पैदा होने से छूट जाएगा।

गुनाह इनसान की ज़िन्दगी के लिए तुरन्त मार देनेवाले ज़हर से कम नहीं है। चूँकि इनसान की फ़ितरत में हिर्स, वासना, गुस्सा, हसद, कीना और दुश्मनी जैसे शैतानी आदतें पाई जाती हैं, इसलिए शैतान का दाव चल जाता है और अच्छा-ख़ासा आदमी कभी-कभी ग़लत काम कर डालता है, जिसके लिए तौबा करनी चाहिए। मगर नफ़्स (मन) फिर यह शोशा छोड़ता है कि मियाँ! तौबा की ऐसी क्या जल्दी है? आज नहीं तो कल कर लेंगे। ग़रज़ इस तरह दिन-पर-दिन गुज़रते रहते हैं और तौबा की तौफ़ीक़ नहीं होती।

लेकिन सोचने का यह अन्दाज़ किसी भी तरह सही नहीं कहा जा सकता। मौत का खटका हर वक़्त पीछे लगा हुआ है। हमारे ही सामने हज़ारों लोग इस दुनिया से परलोक सिधार चुके हैं और एक-न-एक दिन हमारा भी नम्बर आ जाएगा। इसलिए तौबा को कल पर टालना कोई अच्छी बात नहीं। अक़्लमन्द वही है जो मौत के आने से पहले तौबा कर ले और किसी तरह

की भी ढील-ढाल और टाल-मटोल न करे। जैसा कि सहाबा (रज़ि॰) और उनके माननेवाले जब किसी गुनाह में पड़ जाते थे तो फ़ौरन ही तौबा से उसकी तलाफ़ी (पूर्ति) करते और गुनाह की गन्दगी से अपने आपको पाक-साफ़ कर लेते, चाहे उसमें जान ही क्यों न चली जाती।

इस सिलसिले में हज़रत माइज़-बिन-मालिक (रज़ि॰) का क़िस्सा याद रखने के क़ाबिल है। वह नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में एक दिन हाज़िर हुए और कहने लगे, "ऐ अल्लाह के नबी! मुझे पाक कर दीजिए!" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वापस जाओ और ख़ुदा के सामने तौबा करो और माफ़ी माँगो।" वे वापस हो गए। दूर तक न गए थे कि फिर आए और अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के नबी! मुझे पाक कर दीजिए!" नबी (सल्ल॰) ने फिर वही जवाब दिया। यहाँ तक कि जब वे चौथी बार आए तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "किस गुनाह से तुमको पाक कर दूँ?" उन्होंने कहा, "ज़िना (व्यभिचार) के गुनाह से।" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या इसको जुनून (पागलपन) हो गया है?" सहाबा (रज़ि॰) ने अर्ज़ किया कि ये पागल तो नहीं हैं। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या शराब पी ली थी?" फिर उनका मुँह सूँघा गया तो शराब की गन्ध न आई। तब नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "तुमने ज़िना किया है?" माइज़ (रज़ि॰) ने कहा, "जी हाँ।" तब फिर नबी (सल्ल॰) ने उनको संगसार करने का हुक्म दिया और उनको संगसार कर दिया गया। दो-तीन ही दिन गुज़रे थे कि नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ लाए और फ़रमाया, "माइज़ के लिए ख़ुदा से माफ़ी माँगो। वाक़ई उन्होंने ऐसी तौबा की है कि अगर उम्मत (समुदाय) में उसको तक़सीम किया जाए तो सब पर छा जाए।" (हदीस : मुस्लिम)

यह कहानी बड़ी इबरतअंगेज़ और सबक़-आमोज़ है जिसे सोचकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उनके लिए मर जाना आसान है मगर अपने ख़ुदा के सामने काला मुँह लिए जाना बदनसीबी और शर्मिन्दगी की बात है। इसी लिए माइज़ (रज़ि॰) ने अपने वक़्त के हाकिम से कहकर उस जुर्म की सज़ा अपने-आपको दिलाई, जिसका किसी को पता भी नहीं था। इसके पीछे ख़ुदा के डर के सिवा और कोई जज़्बा नहीं था। अल्लाह से डरना और परहेज़गारी

अपनाना ईमानवाले बन्दों की मेराज है और जब वे सच्ची नीयत से और ख़ालिस दिल से तौबा करते हैं तो वह ज़रूर क़बूल की जाती है।

इस बारे में एक बात और याद रखनी चाहिए कि जो ग़लती भूल-चूक से हो जाती है और ग़लती करनेवाला ग़लती से बाख़बर होकर तौबा कर लेता है और फिर वैसी ग़लती नहीं करता वह अल्लाह की नज़र में अच्छा इनसान गिना जाता है। लेकिन जो लोग जान-बूझकर गुनाह करते हैं, बल्कि गुनाह को अपना रोज़गार बना लेते हैं, वे अपनी तबाही को दावत देते हैं। यह तबाही चाहे देर से आए मगर आएगी ज़रूर क्योंकि अल्लाह के यहाँ देर है, अन्धेर नहीं।

आदमी शराब पी रहा है, जुआ खेल रहा है और दूसरे ग़लत काम कर रहा है और उन्हीं में मगन होकर सोचे कि कोई देख नहीं रहा है या इनकी पूछताछ नहीं होगी तो यह भूल है, क्योंकि ख़ुदा के यहाँ हर चीज़ का रिकार्ड तैयार हो रहा है। कोई इनसान ग़लत काम करके अल्लाह की मसलिहत की वजह से दुनिया में बेफ़िक्री की ज़िन्दगी गुज़ारता रहा है तो इसका मतलब यह नहीं हैं कि वह अल्लाह की नज़र से बच गया, ऐसा बिलकुल नहीं है। दुनिया की ज़िन्दगी तो आरज़ी और मिट जानेवाली है। मरने के बाद एक दिन आना ही है जब तमाम कामों की पूछगछ होगी। इसलिए उससे डरते रहना चाहिए और तौबा करते रहने की आदत डालनी चाहिए।

(3)

रहन-सहन के आदाब

बड़ों का अदब

अदब ही से इनसान इनसान है।
अदब जो न सीखे वह हैवान है।।

कहने को यह एक पद (शेर) है मगर ज़रा ग़ौर से पढ़ा जाए तो इसमें इनसानी ज़िन्दगी के अस्ल जौहर की तालीम है। इनसान और हैवान (जानवर) पास-पास रहते हैं, दोनों ही हाथ-पैर और आँखें रखते हैं। लेकिन इनसान को ख़ुदा ने अदब, सलीक़ा और अख़लाक़ की समझ-बूझ दी है, जिसकी वजह से वह बड़े-बड़े कारनामे अंजाम देता है। लेकिन जानवर इन ख़ूबियों से ख़ाली हैं, इसलिए लाखों साल बीत जाने के बाद भी वे जानवर के जानवर ही रहे।

हमारे बड़े हमसे पहले दुनिया में आए। उन्होंने हमें पाल-पोसकर बड़ा किया, हमारी तरबियत की, हमें अपने तजरिबों से परिचित किया। जिनकी वजह से हमें भी ज़िन्दगी गुज़ारने की कुछ बातें समझ में आ गईं, इसलिए हमारा फ़र्ज़ है कि हम उनका अदब और लिहाज़ रखें ताकि हमें और ज़्यादा उनसे फ़ायदा पहुँचे और हमारा नसीब चमक जाए, जैसे कि एक मशहूर मिसाल है—

'बा अदब बा नसीब बे अदब बे नसीब'

यानी जो अदब और अख़लाक़ को अपनाता है उसकी क़िस्मत सँवर जाती है लेकिन जो बे अदबी इख़्तियार करता है उसको कभी आराम नसीब नहीं होता और न समाज में उसे कभी इज़्ज़त मिलती है। इसलिए अगर हम चाहते हैं कि हमें दुनिया में आदर-सम्मान की निगाह से देखा जाए तो अपने

आस-पास के लोगों से अदब और इज़्ज़त व एहतिराम का बरताव करें।

आस-पास के लोगों में सबसे पहले माँ-बाप की बात आती है। माँ-बाप हमारे बड़े भी हैं और मुहसिन (उपकारकर्ता) भी, इसी लिए क़ुरआन और हदीस में उनके साथ अच्छे-से-अच्छे सुलूक की बहुत ताकीद की गई है। चुनाँचे अल्लाह तआला का हुक्म है–

"तेरे रब ने फ़ैसला कर दिया है कि तुम लोग किसी की इबादत न करो मगर सिर्फ़ उसकी और माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करो।"
(क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-23)

एक दूसरी जगह फ़रमाया गया–

"और हमने इनसान को माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करने का हुक्म दिया है।" (क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-8)

इनके अलावा क़ुरआन मजीद में और भी कई जगह माँ-बाप की ख़िदमत और अदब करने का हुक्म दिया गया है, जिससे ज़ाहिर होता है कि अल्लाह पाक के नज़दीक माँ-बाप की सेवा और अदब करना बहुत ज़रूरी है, जिसमें हमारा फ़ायदा भी है।

यह बात दुनिया का हर आदमी जानता है कि माँ-बाप ही हमारी पैदाइश का ज़रिआ हैं। उनकी देख-रेख और निगरानी में हम पलते-बढ़ते और होश सम्भालते हैं। वे जिस मेहनत, मशक़्क़त और इंतिहाई मुहब्बत से हमारी परवरिश करते हैं उसका तक़ाज़ा (माँग) यह है कि हम भी उनका अदब और एहतिराम दिल से करें क्योंकि वैसे भी यह अमल अल्लाह को बेहद पसन्द है।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसूद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) से पूछा कि अल्लाह को सबसे ज़्यादा कौन-सा अमल पसन्द है? नबी (सल्ल॰) ने बताया, "वक़्त पर नमाज़ पढ़ना।" मैंने पूछा इसके बाद कौन सा अमल? नबी (सल्ल॰) ने कहा, "माँ-बाप के साथ अच्छा सुलूक करना।" मैंने पूछा फिर कौन सा अमल? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया "अल्लाह की राह में जिहाद करना।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! माँ-बाप का औलाद पर क्या हक़ है?" नबी (सल्ल॰) ने बताया, "माँ-बाप ही तुम्हारी जन्नत हैं और माँ-बाप ही जहन्नम।" (हदीस : इब्ने-माजा)

यानी उनकी ख़िदमत और उनके साथ अच्छा सुलूक करके तुम जन्नत के हक़दार होगे और उनके हक़ों को रौंद करके जहन्नम का ईंधन बनोगे।

हज़रत अबू-तुफ़ैल (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने जिअराना के मक़ाम पर नबी (सल्ल॰) को देखा कि आप गोश्त बाँट रहे हैं। इतने में एक औरत आई और नबी (सल्ल॰) के बिलकुल निकट पहुँच गई। नबी (सल्ल॰) ने उनके लिए अपनी चादर बिछा दी। वह उस पर बैठ गईं। मैंने लोगों से पूछा, यह कौन औरत है? लोगों ने बताया कि ये नबी (सल्ल॰) की वह माँ हैं जिन्होंने नबी (सल्ल॰) को बचपन में दूध पिलाया था। (हदीस : अबू-दाऊद)

यानी नबी (सल्ल॰) ने अपनी रिज़ाई (दूध पिलानेवाली) माँ के साथ यह सुलूक किया ताकि दूसरे लोग भी माँ-बाप का मर्तबा समझें और उनका मान-सम्मान दिल से करें।

एक और मौक़े पर नबी (सल्ल॰) के पास एक आदमी आया। उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने अपनी माँ को यमन से अपनी पीठ पर लादकर हज कराया है और उनको अपनी पीठ पर लिए हुए अल्लाह के घर का तवाफ़ किया, सफ़ा-मरवा के बीच सई (दौड़ना) की, उसे लेकर अरफ़ात गया और फिर इसी हालत में लिए हुए मुज़्दलफ़ा आया और मिना में कंकड़ी मारी। वे बहुत बूढ़ी हैं कुछ भी हरकत नहीं कर सकतीं। मैंने ये सारे काम माँ को अपनी पीठ पर लिए हुए पूरे किए हैं तो क्या मैंने माँ का हक़ अदा कर दिया?" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं, उसका हक़ अदा नहीं हुआ।" उस आदमी ने पूछा, "क्यों?" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "यह इसलिए कि उसने तुम्हारे बचपन में तुम्हारे लिए सारी मुसीबतें झेलीं इस तमन्ना और चाहत के साथ कि तुम ज़िन्दा रहो और तुमने जो कुछ उसके साथ किया इस हाल में किया कि तुम उसके मरने की तमन्ना रखते हो।"

यह तो सब जानते हैं कि जितनी मुहब्बत अपने बच्चों से माँ-बाप को होती है उतनी किसी और को नहीं होती। जितना भला माँ-बाप अपने बच्चों का चाहते हैं कोई और नहीं चाहता। बच्चों की ज़रा-सी तकलीफ़ से वे रात-दिन बेचैन रहते हैं। तो जब यह मामला इस तरह है तो शराफ़त की माँग यह है कि हम भी दिली ख़ुलूस के साथ उनसे मुहब्बत करें और हर समय उनकी ख़िदमत के लिए तैयार रहें। उनका अदब न करना और उनकी ख़िदमत न करना तो कमीनों और नालायक़ों का तरीक़ा होगा। अल्लाह ने तो माँ-बाप के साथ ऊँची आवाज़ में बोलने तक को मना किया है और हुक्म दिया है कि उनके सामने आजिज़ (विनम्र) और सेवक बनकर रहो और उनको कभी उफ़ तक न कहो।

एक बार नबी (सल्ल०) अपने सहाबा (रज़ि०) के साथ बैठे हुए थे, अचानक नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"उसकी नाक धूल-मिट्टी में सने (यानी उसका बुरा हो)।" सहाबा (रज़ि०) ने पूछा, "किस की ऐ अल्लाह के नबी?" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "जिसने अपने माँ-बाप दोनों या दोनों में से किसी एक का बुढ़ापा पाया और फिर उनकी सेवा करके जन्नत में दाख़िल न हुआ।"

मतलब यह है कि जिसने अपने माँ-बाप की ख़िदमत न की जबकि बुढ़ापे में ख़िदमत की ज़रूरत भी होती है, तो ऐसा आदमी जन्नत में नहीं जाएगा।

एक और दूसरी हदीस में हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने एक मर्तबा अपने ख़ुतबे में यह भी कहा—

"अल्लाह से डरो, रिश्तेदारों के हक़ों को अदा करो इसलिए कि सिला-रहमी (रिश्तेदारों से अच्छा सुलूक) का सवाब और इनाम बहुत जल्दी हासिल होता है और ज़ुल्म और सरकशी से बचो कि इसकी सज़ा बहुत जल्द मिलती है और ख़बरदार! माँ-बाप की नाफ़रमानी न करना। जन्नत की ख़ुशबू, इसके बावजूद कि एक

हज़ार साल की मसाफ़त (दूरी) तक जाती है, लेकिन ख़ुदा की क़सम इतनी तेज़ ख़ुशबू से भी वह आदमी महरूम (वंचित) रहेगा, जो माँ-बाप का नाफ़रमान हो।" (हदीस : तरग़ीब-तरहीब)

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) कहते हैं— "जो नेक औलाद भी माँ-बाप पर मुहब्बत भरी एक निगाह डालती है, उसके बदले ख़ुदा उसको क़बूल किए हुए हज़ का सवाब अता (प्रदान) करता है।"

लोगों ने पूछा, "ऐ ख़ुदा के रसूल! अगर कोई दिन में सौ बार इसी तरह रहमत व मुहब्बत की नज़र डाले (तब भी)?" नबी (सल्ल॰) ने कहा, "जी हाँ, अगर कोई सौ बार ऐसा करे तब भी ख़ुदा (तुम्हारे ख़यालों से) बहुत बड़ा है और तंगदिली जैसे (ऐबों) से बिलकुल पाक है।" (हदीस : मुस्लिम)

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "बेशक तुम्हारी औलाद तुम्हारी पाक कमाई है, इसलिए तुम अपनी औलाद की कमाई से बिना झिझक खाओ।" (हदीस : अबू-दाऊद)

मरने के बाद माँ-बाप के लिए अल्लाह से दुआ और माफ़ी चाहना भी ज़रूरी है।"

एक शख़्स ने नबी (सल्ल॰) से पूछा कि क्या माँ-बाप के मरने के बाद उनके साथ अच्छे बरताव की कोई सूरत हो सकती है? आप (सल्ल॰) ने जवाब दिया, "उनके लिए दुआ करना और उनके लिए माफ़ी चाहना। उनके मरने के बाद उनकी वसीयत को पूरी करना, शर्त यह है कि शरीअत के ख़िलाफ़ न हो।" (हदीस : मिशकात)

माँ-बाप अगर ग़ैर-मुस्लिम हों तब भी उनके साथ अच्छा सुलूक कीजिए और उनकी ख़िदमत बराबर करते रहिए। अलबत्ता अगर वे शिर्क और गुनाह करने का हुक्म दें तो उनका कहना न मानें। क़ुरआन मजीद में अल्लाह ने यह बात बड़े वाज़ेह अन्दाज़ में बताई है—

"और अगर माँ-बाप दबाव डालें कि मेरे साथ किसी को साझीदार

बनाओ (शिर्क करो) जिसका तुम्हें कोई इल्म (ज्ञान) नहीं है तो हरगिज़ उनका कहना न मानो।"

(क़ुरआन, सूरा-29 अनकबूत, आयत-8)

हज़रत असमा (रज़ि॰) कहती हैं कि नबी (सल्ल॰) के मुबारक ज़माने में मेरे पास मेरी माँ आईं और उस वक़्त तक वह मुशरिका (शिर्क करनेवाली) थीं। मैंने नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया कि मेरे पास मेरी माँ आई हैं और वे इस्लाम से नफ़रत करती हैं, मैं उनके साथ क्या सुलूक करूँ? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया; "हाँ तुम अपनी माँ के साथ रिश्ते का हक़ अदा करती रहो।" (हदीस : बुख़ारी)

माँ-बाप के अलावा हमें दूसरे रिश्तेदारों और सम्बन्धियों का आदर-सम्मान भी करते रहना चाहिए। यह तहज़ीब और अख़लाक़ की माँग भी है और इस्लाम भी इस पर बहुत ज़ोर देता है। इससे समाज में मुहब्बत का माहौल पैदा होता है, अपने और पराए सबको फ़ायदा पहुँचता है। नबी (सल्ल॰) ने इसकी बहुत ताकीद की है और यहाँ तक कह दिया है—

"वह शख़्स हममें से नहीं है जो हमारे छोटों पर रहम (दया) न करे और हमारे बड़ों का अदब (आदर) न करे।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इसी तरह उस्तादों का भी आदर करना ज़रूरी है। वे हमें पढ़ाते-लिखाते हैं और हमारी तरबियत करके इनसान बनाते हैं; इसी लिए हमारा भी कर्तव्य है कि हम सच्चे दिल से उनका एहतिराम करें और इस कोशिश में लगे रहें कि उनकी कोई ख़िदमत कर सकें। उस्तादों के एहतिराम के क़िस्सों से वैसे तो इस्लाम का इतिहास भरा पड़ा है मगर मैं इस मौक़े पर आपको इसी दौर का एक क़िस्सा सुनाता हूँ ताकि आपको उस्तादों के अदब व एहतिराम का अन्दाज़ा हो सके।

एक बार की बात है, अल्लामा शिब्ली (रह॰) नदवतुल-उलमा का मुआइना (निरीक्षण) करने लखनऊ तशरीफ़ लाए। उस ज़माने में उनके पुराने उस्ताद मौलाना फ़ारूक़ी चिरैयाकोटी उस मदरसे में पढ़ाते थे। मौलाना शिब्ली (रह॰) मुआइना करते हुए जब मौलाना फ़ारूक़ी की क्लास (कक्षा)

में पहुँचे तो हज़रत मौलाना तलबा (विद्यार्थियों) को पढ़ाने में मसरूफ़ थे। मौलाना पढ़ाने में लगे रहे और मौलाना शिबूली खड़े देखते रहे। इसी बीच मौलाना चिरैयाकोटी ने बैठ-बैठे अपना पैर सामने फैला दिया। मौलाना शिबूली जो मुआइना करने के लिए आए थे उस्ताद का पैर फैला हुआ देखकर बिना यह ख़याल किए कि मैं मुआइना कर रहा हूँ कोई क्या कहेगा, झट पैर दबाने बैठ गए। इससे मालूम होता है कि मौलाना के दिल में अपने मन्सब (पद) से ज़्यादा अपने उस्ताद की इज़्ज़त और ख़िदमत का ख़याल बसा हुआ था।

तमाम मुसलमान आपस में भाई-भाई हैं

कुरआन मजीद की ज़बान में "सब मुसलमान भाई-भाई हैं।" यानी चाहे कोई आदमी अमेरिका का रहनेवाला हो या इंडिया (भारत) का, चीन का वासी हो या जापान का जो भी इस्लाम के उसूलों और नियमों को मानकर अल्लाह पर ईमान ले आया और उसके पैग़म्बर की बताई हुई हिदायतों पर अमल करने लगा वह मुसलमान है और तमाम मुसलमानों का भाई है। काले रंग के मुसलमानों का भी, गोरे रंग के मुसलमानों का भी। चीन में रहनेवाले मुसलमानों का भी और अफ़्रीक़ा में रहनेवाले मुसलमानों का भी। यानी कि इस्लाम ने अलग-अलग देशों में बसनेवालों और अलग-अलग क़ौमों में पैदा होनेवाले लोगों को भाई-भाई बना दिया है और यह रिश्ता ऐसा पक्का और सच्चा है कि अगर मुक़ाबला आ पड़े तो ख़ून का रिश्ता टूट जाता है मगर यह रिश्ता बाक़ी रहता है और भाई के दूसरे भाई पर जितने हक़ हो सकते हैं जैसे हमदर्दी, ख़ैरख़ाही, ख़बरगीरी, सहयोग, मदद और हिमायत इन तमाम हक़ों को इस्लाम के ताल्लुक़ से अदा करना फ़र्ज़ हो जाता है क्योंकि हमारे प्यारे नबी (सल्ल॰) ने एक मुसलमान को दूसरे मुसलमान से आपसी ताल्लुक़ को अच्छा रखने पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया है। नबी (सल्ल॰) ने कहा है—

"मुसलमान दूसरे मुसलमान के लिए एक इमारत की तरह है कि एक दूसरे को ताक़त पहुँचाता है और सहारा देता है।" इसके बाद

आप (सल्ल॰) ने एक हाथ की उँगलियाँ दूसरे हाथ की उँगलियों में डाल दीं (कि इस तरह)। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मतलब यह है कि जिस तरह इमारत की ईंटें आपस में मिलकर मज़बूत क़िला बन जाती है उसी तरह मुस्लिम उम्मत एक क़िला है और हर मुसलमान उसकी एक ईंट है। इनमें आपस में वही सम्बन्ध होना चाहिए जो इमारत की एक ईंट का दूसरी ईंट से होता है। हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने यह भी कहा है कि–

"क़सम है उसकी जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, कोई बन्दा सच्चा-पक्का ईमानवाला नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने मुसलमान भाई के लिए वही न चाहे जो अपने लिए चाहता है।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मतलब यह कि हर मुसलमान भाई के लिए वही भलाई पसन्द करे जो अपने लिए पसन्द करता है। और उस पर अपनी हर चीज़ क़ुरबान करने को तैयार रहे। यहाँ इस्लामी इतिहास का यह सच्चा क़िस्सा याद करना चाहिए कि जब प्यारे नबी (सल्ल॰) और आपके साथी (रज़ि॰) अल्लाह के हुक्म से मक्का से मदीना हिजरत करके गए तो मदीना के मुसलमानों ने नबी (सल्ल॰) को हाथों-हाथ लिया और हिजरत करके आनेवाले अपने मुस्लिम भाइयों की हर तरह ख़ातिरदारी और मेहमान-नवाज़ी की। हालाँकि वे लोग अभी-अभी मुसलमान हुए थे और बहुत से मुसलमानों से पूरी तरह जान पहचान भी न थी। मगर यह इस्लाम का रिश्ता ऐसा रिश्ता था, जिसने ग़ैरों को भी अपना बना दिया था। मदीनावाले मुसलमान हो जाने की वजह से मुहाजिरों के दीनी भाई बन गए थे और 'अनसार' (मदद करनेवाले) कहलाए। उन्होंने अपने मुहाजिर भाइयों के लिए घर की एक-एक चीज़ नबी (सल्ल॰) के सामने लाकर ढेर कर दी और कहा कि इसमें से आधा हमारे मुहाजिर भाइयों को दे दें यहाँ तक कि जिसकी दो बीवियाँ थीं उसने एक बीवी को तलाक़ देकर अपने मुहाजिर भाई को पेश कर दी कि वह उससे निकाह कर ले।

ऐसा भाईचारा तो आसमान की आँखों ने भी कभी नहीं देखा था और यह उसी भाईचारे का चमत्कार था कि मुसलमानों ने थोड़े ही अर्से (समय

काल) में आधी दुनिया को फ़तह करके इस्लाम का परचम हर जगह लहरा दिया।

हम अगर ग़ौर करें तो मालूम होगा कि अल्लाह ने इस्लाम में ऐसे मामले रखे हैं और उनकी रग़बत भी दिलाई है कि जिन पर अमल करने से आपसी प्यार-मुहब्बत और लगाव को बढ़ावा मिलता है, जैसे पहला अमल जमाअत से नमाज़ पढ़ना है, इसकी वजह यही है कि मुहल्ले के मुसलमान जब एक जगह जमा होंगे और एक-दूसरे से मुलाक़ात करेंगे तो उनके दिलों में प्यार-मुहब्बत घर करेगी; दूसरा अमल है हर हफ़्ते जुमा की नमाज़, जिसमें सारी बस्ती के मुसलमान एक मस्जिद में जमा होकर एक इमाम की पैरवी (इमामत) में सहमत होकर नमाज़ पढ़ेंगे तो उनमें लगाव और मुहब्बत का जज़्बा पैदा होगा; और तीसरा अमल हज है जिसमें दुनिया-भर के मुसलमान एक सेन्टर पर खिंचे चले आते हैं। जहाँ सब का एक ही लिबास होता है, एक ही क़िबला, एक ही इमाम और एक ही मालिक जिसके सामने बिना किसी भेद-भाव के सिर-झुकाते हैं ताकि दिल में मुहब्बत और लगाव क़ायम हो। इसी तरह दोनों ईदों की नमाज़ों में भी ऐसा होता है। इसके अलावा नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया है—

> "आपस में एक-दूसरे को हदिया (उपहार) दिया करो। इससे आपस में मुहब्बत पैदा होगी और दिलों की कदूरत (मलिनता) दूर होगी।"
>
> (हदीस : मिशकात)

हज़रत जरीर-बिन-अब्दुल्लाह बजली (रज़ि॰) बयान करते हैं—

> "मैंने नबी (सल्ल॰) से बैअत की थी नमाज़ क़ायम करने, ज़कात अदा करने और हर मुसलमान के साथ दिली ख़ैरख़ाही पर।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यानी वे कहते हैं कि जब मैंने ईमान क़बूल किया तो नबी (सल्ल॰) ने ख़ास तौर पर मुझ से तीन बातों का अहद (वचन) लिया, जिनमें एक बात यह थी कि मैं मुसलमानों के साथ ख़ैरख़ाही का बरताव करूँ।

हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰)

ने फ़रमाया—

"मुसलमानों के लिए जाइज़ नहीं कि तीन दिन से ज़्यादा अपने मुसलमान भाई को छोड़े रखे कि दोनों की मुलाक़ात हो और वह इधर मुँह फेरे और वह उधर मुँह फेरे और दोनों में ज़्यादा बेहतर वह है जो पहले सलाम करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

अस्ल में नबी (सल्ल॰) मुसलमानों का एक ऐसा समाज बनाना चाहते थे, जिसमें लोग मिलकर रहें और एक दूसरे के दुख-सुख में शामिल रहनेवाले ग़मख़ार बनें। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मुसलमान के मुसलमान पर पाँच हक़ हैं—

(1) सलाम का जवाब देना, (2) मरीज़ की इयादत (बीमारपुर्सी) करना, (3) जनाज़े के साथ जाना, (4) दावत क़बूल करना और (5) छींक का जवाब देना।"

तहज़ीबी (सभ्य) ज़िन्दगी के ये वे बेहतरीन उसूल हैं कि जिनको कोई क़ौम अपना लेती है तो तरक़्क़ी की ऊँचाइयों पर चढ़ती चली जाती है लेकिन बड़े दुख की बात है कि आज मुसलमानों ने इन उसूलों को भुला दिया और नतीजा हमारे सामने है। वे अपनी सल्तनत, अपना वक़ार (सम्मान), इज़्ज़त, अपना हौसला, अपनी आन-बान और अपनी इमामत (नेतृत्व) का मंसब सब कुछ गँवा बैठे। छोटी-छोटी बातों पर आपस में हाथा-पाई कर बैठते हैं, घर-बाहर, मस्जिद, मदरसा यानी हर जगह खींच-तान है, हर तरफ़ जिहालत का बाज़ार गर्म है। मेरा घर, मेरा ख़ानदान, मेरी बिरादरी, मेरा मंसब, मेरी जमाअत हर तरफ़ अपनी-अपनी ख़ुदग़र्ज़ी (स्वार्थ) और नफ़रत का दौर-दौरा है, जिससे हमारे दुश्मन बेहद ख़ुश हैं और शैतान बिगुलें बजा रहा है कि एक ख़ुदा, एक नबी, एक किताब और एक क़िबला को माननेवाली उम्मत (क़ौम) आज फ़िरक़ों, टोलियों और गुटों में बँटी हुई है जबकि यह अक़्लमन्दी की बात नहीं है बल्कि अक़्लमन्दी और होशमन्दी की बात यह है कि आपस में मिल-जुलकर रहें।

इस मौक़े पर एक किसान के लड़कों की कहानी याद आ गई, जो आपस

में लड़ते-झगड़ते रहते थे। किसान को लड़कों की यह हालत देखकर बहुत दुख होता था। एक दिन वह एक रस्सी लाया और अपने लड़कों से तोड़ने के लिए कहा। सब ने बारी-बारी खूब ज़ोर लगाया मगर कोई उसे तोड़ न सका। आख़िर में किसान ने रस्सी के बल खोलकर उसके रेशे (तार) अलग-अलग कर दिए और कहा अब इनको तोड़ो। हर एक लड़के ने निहायत आसानी से उनको तोड़ दिया और हँसने लगे। किसान बाप ने कहा, "यह हँसने की बात नहीं है बल्कि सोचने और सबक़ लेने की बात है। देखो जब तक ये रेशे (तार) आपस में जुड़े हुए थे तो तुम पूरी ताक़त लगाकर भी उसे न तोड़ सके लेकिन जब ये अलग-अलग हो गए तो निहायत आसानी से तुमसे टूटते चले गए। ऐसे ही ख़ानदानों, क़ौमों का भी मामला है अगर उनके लोग मिल-जुलकर रहते हैं तो सीसा पिलाई हुई दीवार बन जाते हैं लेकिन अगर वे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं तो फूट का शिकार होकर कमज़ोर हो जाते हैं और सख़्त नुक़सान उठाते हैं।"

कहने को तो यह एक बहुत छोटी और मामूली-सी कहानी है, लेकिन है बहुत शिक्षाप्रद और इबरत व सबक़ देनेवाली। आज के दौर में हमें इससे सबक़ लेना चाहिए और आपसी मतभेदों को ख़त्म करके आपस में भाई-भाई बनकर रहना चाहिए। फ़ितरी तौर पर कुछ मतभेद हो सकते हैं मगर यह बात सही नहीं है कि हम उन मतभेदों को जाहिलों की तरह बढ़ाते ही चले जाएँ। शराफ़त और अक़्लमन्दी की बात यह है कि जिस बात पर झगड़ा हो उसे एक बड़े मक़सद यानी क़ौमी एकता की ख़ातिर पीठ-पीछे डाल दें और सब मिलकर अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से थाम लें और फूट डालनेवालों में न उलझें। क्योंकि आपस में लड़ना-झगड़ना और मतभेदों को हवा देना ऐसा है मानो कोई आग से भरे हुए गढ़े के किनारे खड़ा हो और उसमें गिरकर जल जानेवाला हो। आपसी फूट ऐसी बीमारी है जो क़ौमों को तबाही के गढ़े में धकेल देती है। अब अगर हम दुनिया में फिर सरबुलन्द होना चाहते हैं तो अल्लामा इक़बाल का यह शेर ज़बान से गुनगुनाते हुए इस पर अमल करना होगा—

मुहब्बत ही से पाई है शिफ़ा बीमार क़ौमों ने।
किया है अपने बख़्ते-खुफ़्ता को बेदार क़ौमों ने।।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ख़ुदा मुहब्बत करनेवाले लोगों ही से मुहब्बत करता है और क़ियामत के दिन, जिस दिन अल्लाह की छाया के सिवा और कोई छाया न होगी, सात आदमी होंगे जिनको ख़ुदा अपनी छाया में रखेगा उनमें से दो आदमी वे भी होंगे जिन्होंने अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत की उसी पर जुड़े रहे और उसी पर अलग हुए।

इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जो लोग अल्लाह के लिए आपस में मुहब्बत करते हैं, अल्लाह उनका ज़िम्मेदार बन जाता है। एक और हदीस में हज़रत मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते हुए सुना है कि—

"अल्लाह फ़रमाता है कि मेरी मुहब्बत वाजिब है उन लोगों के लिए जो आपस में मेरी वजह से मुहब्बत करते हैं और मेरी वजह से कहीं आपस में जुड़कर बैठते हैं और मेरी वजह से बाहम मुलाक़ात करते हैं और मेरी वजह से एक दूसरे पर ख़र्च करते हैं।"

(हदीस : मुवत्ता इमाम मालिक)

एक दूसरी हदीस में हज़रत उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह के बन्दों में कुछ ऐसे ख़ुशनसीब भी हैं जो नबी या शहीद तो नहीं हैं लेकिन क़ियामत के दिन बहुत से नबी और शहीद उनके क़रीबी मक़ाम की वजह से उन पर रश्क करेंगे।" सहाबा (रज़ि॰) ने कहा, ऐ ख़ुदा के नबी! हमें बता दीजिए कि वे कौन बन्दे हैं? आपने फ़रमाया, "वे ऐसे लोग हैं जिन्होंने बग़ैर किसी रिश्ते और सम्बन्ध के और बग़ैर किसी माली लेन-देन के सिर्फ़ ख़ुदा को राज़ी करने की वजह से आपस में मुहब्बत की। क़सम है ख़ुदा की, उनके चेहरे क़ियामत के दिन नूरानी (चमकदार) होंगे बल्कि सरासर नूर होंगे और वे नूर के सिंहासनों पर होंगे और आम इनसानों को जिस वक़्त डर और मायूसी होगी, उस वक़्त वे बेख़ौफ़ और मुत्मइन होंगे और जिस वक़्त आम लोग दुख और ग़म में पड़े होंगे, वे उस वक़्त बग़ैर ग़म और दुख के होंगे" उस मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने

क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस की आयत-60 पढ़ी, "मालूम होना चाहिए कि जो अल्लाह के दोस्त और उससे ख़ास ताल्लुक़ रखनेवाले हैं उनको ख़ौफ़ (भय) और ग़म न होगा।" (हदीस : अबू-दाऊद)

नेक लोगों के पास बैठना

दीन की हक़ीक़त, दीन की शान, दीन की समझ नेक लोगों की संगति और साथ से आती है। हज़रत अबू-रुज़ैन (रज़ि०) से रिवायत है कि उनसे नबी (सल्ल०) ने कहा—

> "क्या मैं तुमको ऐसी बात न बताऊँ जिस पर इस दीन का बड़ा दारोमदार है, जिससे तुम दुनिया और आख़िरत की भलाई हासिल कर सकते हो। वह यह है कि (अल्लाह का) ज़िक्र करनेवालों की मजलिसों को मज़बूती से पकड़ लो। जब अकेले रहा करो तो जहाँ तक मुमकिन हो अल्लाह के ज़िक्र के साथ ज़बान को हरकत में रखो और किसी से तुम्हारी मुहब्बत अल्लाह ही के लिए हो और दुश्मनी भी अल्लाह के लिए।"

ऊपर दर्ज नबी (सल्ल०) की बातों पर हर आदमी को ग़ौर करना चाहिए और उन पर अमल करना चाहिए। इस तरह आदमी या तो नेक लोगों में बैठकर खुद अच्छी बातें सीखेगा या फिर अपनी अच्छी बातों से दूसरों को फ़ायदा पहुँचाएगा, मतलब यह कि हर तरह फ़ायदा ही फ़ायदा है।

लोगों की मदद करना

किसी शख़्स की उसके काम में मदद कर देना या उसकी कोई परेशानी दूर कर देना भी बहुत सवाब का काम है। हदीस में है—

> "लोगों में सबसे अच्छा आदमी वह है जो लोगों को फ़ायदा पहुँचाए।"

रुपए-पैसे से भी फ़ायदा पहुँचाया जा सकता है। अपना एक भाई है ज़रूरतमन्द, आप उसकी मदद करते हैं तो अल्लाह इससे खुश होता है, आपका कोई भाई मुहताज है, चल-फिर नहीं सकता आप उसके काम आते हैं, इससे आपकी नेकियों में बढ़ोत्तरी होगी। कहीं किसी मुसलमान पर

अत्याचार हो रहा है, आप उसको अत्याचार से बचाने की कोशिश करते हैं तो अल्लाह मददगार होगा। चुनाँचे एक हदीस में आया है—

"जिस जगह किसी मुसलमान की बेइज़्ज़ती की जा रही हो और उसकी इज़्ज़त पर दस्तदराज़ी और ज़्यादती हो रही हो, वहाँ जो मुसलमान उसको बेसहारा छोड़ जाए। अल्लाह उसको ऐसे मौक़ों पर बेसहारा और असहाय छोड़ देगा जहाँ वह मदद का ख़्वाहिशमन्द होगा और जिस जगह किसी मुसलमान की बेइज़्ज़ती या बेहुरमती हो रही हो और कोई उसकी मदद करे तो ख़ुदा ऐसी जगह उस मदद करनेवाले की मदद करेगा जहाँ वह मदद का मुहताज होगा।"

मतलब यह कि ज़ुल्म और अत्याचार से बचाना, अपने भाई की बेइज़्ज़ती के वक़्त उसका बचाव करना वग़ैरा-वग़ैरा ये सब बातें अज्र और सवाब के काम हैं क्योंकि बन्दों से मुहब्बत करना अस्ल में अल्लाह ही की मुहब्बत की वजह से होता है। इसलिए इन बातों पर बहुत ज़्यादा सवाब के वादे किए गए हैं।

सुलह (मेल-जोल) करा देना

अगर दो मुसलमानों के बीच कोई झगड़ा हो जाए तो उनमें सुलह करा देना भी बड़े सवाब का काम है। क़ुरआन मजीद में कहा गया है—

"बेशक तमाम मुसलमान आपस में भाई हैं। इसलिए अपने दो भाइयों के बीच सुलह करा दिया करो। और अल्लाह से डरो ताकि तुम पर रहम किया जाए।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-10)

झगड़ा-फ़साद कोई अच्छी आदत नहीं है अगर इत्तिफ़ाक़ से आपस में लड़ाई-झगड़ा हो जाए तो सुलह करा देने और ताल्लुक़ात सुधारने की कोशिश करने की अल्लाह ने इन आयतों में तरग़ीब दिलाई है। कीना-दुश्मनी एक शैतानी अमल है, अल्लाह इससे अपने बन्दों को बचाना चाहता है। शैतान को दुनिया में किसी अमल से इतनी ख़ुशी नहीं होती है जितनी दिलों में फूट डालने से ख़ुशी होती है। ख़ास तौर पर मियाँ-बीवी में फूट डालना तो उसका सबसे ज़्यादा पसन्दीदा काम है। उस मौक़े पर अगर उनके ताल्लुक़ात को

अच्छा बना दिया जाए और उनकी आपसी ग़लतफ़हमियों को दूर करके मुहब्बत की फ़ज़ा पैदा कर दी जाए तो ये इन्तिहाई सवाब के काम हैं।

सिला-रहमी

रिश्ते-नातेदारों से अच्छे बरताव को 'सिला-रहमी' कहते हैं। यानी अपने रिश्तेदारों और दोस्तों के साथ बेहतर सुलूक से पेश आना, उनके सुख-दुख में शामिल रहना और वक़्ते-ज़रूरत उनकी मदद करना सिला-रहमी है और यह अमल ख़ुदा को बहुत पसन्द है। इसी लिए अल्लाह ने क़ुरआन मजीद में फ़रमाया—

"माँ-बाप और रिश्तेदारों के साथ हुस्ने-सुलूक करो।"

(क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-36)

एक पाकीज़ा और पवित्र समाज बनाने के लिए इसकी सख़्त ज़रूरत है। अगर आप ख़ानदानी निज़ाम मज़बूत और कामयाब देखना चाहते हैं तो बहुत ही ख़ुलूस, मुहब्बत और दिली लगाव से आपस के हक़ों और फ़र्ज़ों को अदा करें। अपनी ख़ुश-अख़लाक़ी और नर्म-मिज़ाजी से अपने रिश्तेदारों का दिल जीतने की कोशिश करें। उनकी ख़िदमत करके ख़ुशी महसूस करें। वह आदमी निहायत ख़ुशनसीब है जिसको उसके रिश्तेदार अपना सच्चा ख़ैरख़ाह (भला चाहनेवाला) समझते हैं और वह आदमी सबसे बड़ा मुफ़लिस (मुहताज व दरिद्र) है जिसके रिश्तेदार उससे कटे रहते हों।

हमारे रिश्तेदार हमारे भाई हैं। उनसे मुहब्बत करना, उन्हें अपने साथ जोड़े रखना हमारा सबसे पहला काम है। इससे ख़ानदान और परिवार में एकता पैदा होती है और मुश्किल से मुश्किल काम आसानी से किए जा सकते हैं। नबी (सल्ल॰) सिला-रहमी का ख़ास ख़याल रखते थे। कोई तोहफ़ा लाता तो नबी (सल्ल॰) उसमें अपने रिश्तादारों को ज़रूर शामिल करते थे और उनके हक़ का ख़ास लिहाज़ रखते थे और फ़रमाया करते थे—

"जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने रिश्तेदारों के साथ सिला-रहमी (अच्छा बरताव) करे।" (हदीस : बुख़ारी)

दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया–

"जो आदमी यह चाहे कि उसकी रोज़ी में कुशादगी हो और लम्बी उम्र हो, उसे चाहिए कि अपने रिश्तेदारों से सिला-रहमी (अच्छा सुलूक) करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक बार की बात है कि नबी (सल्ल॰) की दूध शरीक बहन, दाई हलीमा की बेटी बनू-हवाज़िन के क़ैदियों में गिरफ़्तार होकर आईं। उन्होंने नबी (सल्ल॰) को याद दिलाया कि मैं फुलाँ की बेटी हूँ यानी मेरे साथ नर्मी का बरताव किया जाए। नबी (सल्ल॰) ने पहचानकर अपनी चादर उनके लिए बिछा दी और कहा, "अगर तुम मेरे पास रहोगी तो मैं ख़िदमत करूँगा और अपने घर जाना चाहो तो तुम्हारी मरज़ी।" उन्होंने घर जाना चाहा तो उनको इतना माल दिया कि वे ख़ुश हो गईं।

इस सच्ची घटना से हमारे सामने ऐसा चमकता हुआ किरदार (चरित्र) आता है कि हम चिराग़ लेकर भी ढूँढना चाहें तो दुनिया में कहीं नहीं मिलेगा। बनू-हवाज़िन क़बीला के लोगों ने अचानक इस्लामी लश्कर पर हमला किया। वे मुसलमानों का नामो-निशान मिटा देना चाहते थे। ख़ुदा की क़ुदरत कि वे हार गए। अब वे गिरफ़्तार करके लाए गए। नबी (सल्ल॰) चाहते तो उनकी औरतों और बच्चों तक को इबरतनाक सज़ाएँ देते। मगर नहीं, अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने लोगों को बताया कि चाहे कितना ही वक़्त गुज़र जाए मगर तुम ताल्लुक़ात (सम्बन्ध) मत भूलो और ज़िन्दगी के किसी हिस्से में वक़्त आने पर रिश्ते-नाते का हक़ अदा करो और यह भी कि रिश्तेदारों के साथ प्यार का बरताव करो। इसी वजह से बनू-हवाज़िन को भी बड़ी राहत मिली।

एक आदमी ने एक बार आकर कहा कि ऐ अल्लाह के नबी! मेरे कुछ रिश्तेदार हैं जिनके हक़ मैं अदा करता हूँ और वे लोग मेरे हक़ अदा नहीं करते। मैं उनके साथ अच्छा सुलूक करता हूँ, वे मेरे साथ बदसुलूकी करते हैं। मैं उनके साथ नर्मी, बुर्दबारी और कुशादादिली के साथ पेश आता हूँ और वे मेरे साथ जिहालत और अक्खड़पन से पेश आते हैं। नबी (सल्ल॰)

ने फ़रमाया—

"अगर तू ऐसा ही है जैसा कि तू कहता है तो मानो तू उनके चेहरों पर स्याही (कालिख) फेर रहा है और अल्लाह उनके मुक़ाबले में हमेशा तेरा मददगार रहेगा जब तक तू इसी हालत पर क़ायम रहेगा।" (हदीस : मुस्लिम)

यानी अगर दूसरी तरफ़ से आपके बरताव का अच्छा जवाब न मिले तब भी आपको अपने अच्छे बरताव को नहीं छोड़ना चाहिए। मानो जब रिश्तेदारों की तरफ़ से अच्छा मामला न हो रहा हो उस वक़्त भी उनके साथ अच्छे सुलूक से पेश आना सोने पर सुहागा वाली बात होगी।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं—

नबी (सल्ल॰) के पास एक आदमी आया। उसने कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल! मुझसे एक बड़ा गुनाह हो गया है, तो क्या इससे तौबा की कोई शक्ल है? नबी (सल्ल॰) ने उससे पूछा, "क्या तेरी माँ ज़िन्दा है?" उसने कहा कि नहीं। नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "क्या तुम्हारी ख़ाला (मौसी) ज़िन्दा है?" उसने कहा कि हाँ। तब नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तो जाओ खाला की ख़िदमत करो।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

देखिए कोई भी आदमी गुनाह के मसले का यह हल सोच भी नहीं सकता था, क्योंकि तौबा की आम शक्ल यह है कि आदमी अपने किए पर पछताए और ख़ुदा से माफ़ी माँगे लेकिन नबी (सल्ल॰) ने ख़ुदा के इल्म की वजह से यह जाना कि अगर माँ या ख़ाला के साथ नेक बरताव किया जाए तो यह गुनाह धुल सकता है। यह बात पैग़म्बर के सिवा कोई नहीं जान सकता। मगर इसी के साथ यह बात याद रखिए कि इस मामले में दिली ख़ुलूस की ज़रूरत है। यह काम उसी वक़्त सवाब पाने की वजह बनेगा जब उसका मक़सद ख़ुदा को राज़ी करना हो। अगर सिर्फ़ बदले, दिखावे या रस्मों की पाबन्दी की वजह से यह काम किया गया तो वह सही नहीं है।

यतीमों और बेवाओं की मदद

यतीम और बेवा दोनों ही समाज के कमज़ोर हिस्से हैं और इन दोनों की हालत बहुत ही रहम और दया के क़ाबिल होती है और वे बहुत बेचारगी की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। ऐसे वक़्त इन लोगों की सरपरस्ती करना, उनके साथ अच्छा सुलूक करना बड़ी फ़ज़ीलत और नेकी का काम है। क़ुरआन मजीद में अल्लाह ने फ़रमाया है–

"लोग आप से यतीमों के बारे में पूछते हैं। उनसे कह दो कि उनकी हालत को अच्छा करने का जो तरीक़ा अपनाया जाए अच्छा है।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-220)

यानी यतीम जो लावारिस और बेसहारा हैं उनके साथ हमदर्दी और मुहब्बत का बरताव करना और उनकी ज़िन्दगी को सँवारने और बनाने में हिस्सा लेना भलाई का काम है। जिसका बदला अल्लाह के पास है। इसी लिए यतीमों और बेवाओं की मदद को उभारते हुए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"मैं और यतीम का सरपरस्त (संरक्षक) जन्नत में इस तरह होंगे।" यह कहकर नबी (सल्ल॰) ने बीच की उंगली और शहादतवाली उंगली से इशारा किया और उन दोनों उँगलियों के बीच थोड़ा-सा फ़ासला रखा। (हदीस : बुख़ारी)

यतीम (अनाथ) का पालन-पोषण करनेवाले आदमी के लिए इतनी बड़ी फ़ज़ीलत है कि उस अज़मत (महानता) की कल्पना भी मुश्किल है। यानी ऐसा आदमी जन्नत में नबी (सल्ल॰) के इतना क़रीब होगा जितना शहादत की उँगली और बीच की उँगली का फ़ासला है। देखिए तो यह अल्लाह का कितना बड़ा इनाम है! एक दूसरी हदीस में फ़रमाया–

"मुसलमानों के घरों में सबसे बेहतर घर वह है जिसमें कोई यतीम पल रहा हो और उसके साथ अच्छा सुलूक किया जाता हो। और मुसलमानों का सबसे बदतर घर वह है जिसमें कोई यतीम हो और उसके साथ बुरा सुलूक किया जाता हो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

एक और हदीस में आया है कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से अपने दिल की सख़्ती और कठोरता का ज़िक्र किया, तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"यतीम के सिर पर प्यार-मुहब्बत का हाथ फेरो और मिसकीन (ग़रीब) को खाना खिलाओ।" (हदीस : मिशकात)

हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने किसी यतीम के सिर पर हाथ फेरा और सिर्फ़ अल्लाह की ख़ातिर फेरा उस बच्चे के हर बाल के बदले में जिस पर उस आदमी का हाथ गुज़रा उसके लिए नेकियाँ लिखी जाएँगी और जिसने किसी यतीम लड़के या लड़की के साथ नेक सुलूक किया वह और मैं जन्नत में इस तरह होंगे और यह कहकर नबी (सल्ल॰) ने अपनी दो उंगलियाँ मिलाकर बताईं।" (हदीस : मुसनद अहमद)

इसी तरह बेवा के बारे में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो भी आदमी किसी बेवा या किसी मिसकीन (ग़रीब) के लिए कोशिश करे वह अल्लाह के रास्ते में जिहाद करनवाले की तरह है।" (हदीस : बुख़ारी)

क़ुरआन मजीद और हदीस के इन कुछ इशारों से अच्छी तरह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि यह अमल अल्लाह को कितना महबूब है। इसलिए जब भी किसी यतीम या बेवा के साथ भलाई करने का मौक़ा मिले तो उसमें कंजूसी नहीं करनी चाहिए, जिस तरह की भी भलाई या मदद की तौफ़ीक़ हो जाए उसे ग़नीमत समझना चाहिए। मगर यह मदद पूरे ख़ुलूस के साथ हो, दिखावे या यतीम का माल हड़पने के ख़याल से न हो; बल्कि अल्लाह को ख़ुश और राज़ी करने के लिए हो और उससे अच्छा बदला मिलने की उम्मीद हो।

पड़ोसियों से अच्छा सुलूक

हमारे आस-पास रहनेवाले पड़ोसियों का भी हमारे ऊपर बड़ा हक़ है। ज़रूरत के मौक़े पर उनकी मदद करना, उनके दुख-सुख में शरीक रहना,

अगर वे ज़रूरतमन्द हों तो उनकी माल से मदद करना इनसानियत के नाते हमारा फ़र्ज़ है। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने भी इस काम की बड़ी ताकीद की है। चुनाँचे हज़रत अबू-शुरैह (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो उसे चाहिए कि अपने पड़ोसी के साथ नेक सुलूक करे।"

(हदीस : मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जिस आदमी को यह पसन्द हो कि अल्लाह और उसका रसूल उससे मुहब्बत करे तो उसको चाहिए कि जब बात करे तो सच बोले और जब अमानत रखवाई जाए तो अमानत को मालिक के पास हिफ़ाज़त के साथ लौटाए और अपने पड़ोसियों के साथ अच्छा सुलूक करे।" (हदीस : मिशकात)

यानी पड़ोसी से मिलते-जुलते रहना, ज़रूरत पड़ने पर हर तरह की ख़िदमत के लिए तैयार रहना, कभी-कभी उसको कुछ तोहफ़ा भेजना, अगर कोई पड़ोसी भूखा हो तो उसको खाना खिलाना ये सब बातें अच्छे बरताव में आती हैं। हज़रत अबू-ज़र (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ऐ अबू-ज़र! जब तू शोरबा पकाए तो कुछ पानी ज़्यादा कर दे और अपने पड़ोसियों की ख़बरगीरी कर।"

यानी शोरबे में पानी मिलाकर उसकी मिक़दार (मात्रा) को बढ़ा लें ताकि पड़ोस में रहनेवाले का भी काम चल जाए।

हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने नबी (सल्ल॰) को कहते सुना है—

"ईमानवाला ऐसा नहीं होता कि ख़ुद पेट भरकर खाए और उसका पड़ोसी (जो उसके बग़ल में रहता है) भूखा रहे।"

(हदीस : मिशकात)

एक और हदीस में नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

"जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो, उसे चाहिए कि अपने पड़ोसी को तकलीफ़ न पहुँचाए।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मतलब यह कि पड़ोसी से दिन-रात का वास्ता है। हर वक़्त कोई-न-कोई काम पड़ता रहता है, इसलिए इस बात का पूरा ख़याल रखा जाए कि अपनी तरफ़ से उसको कोई तकलीफ़ न पहुँचे, नहीं तो अल्लाह के यहाँ पकड़े जाने का अन्देशा है।

नबी (सल्ल॰) की सीरत में आया है कि एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) से कहा कि फ़ुलाँ औरत के बारे में मशहूर है कि वह बहुत ज़्यादा नफ़्ल नमाज़ें पढ़ती है, नफ़्ल रोज़े रखती है और सदक़ा (दान) करती है। लेकिन अपनी ज़बान से अपने पड़ोसियों को दुख, तकलीफ़ पहुँचाती है। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वह जहन्नम में जाएगी।" उस आदमी ने फिर कहा कि ऐ अल्लाह के नबी! फ़ुलाँ औरत के बारे में बयान किया जाता है कि वह कम नफ़्ल रोज़े रखती है और बहुत कम नफ़्ल नमाज़ें पढ़ती है और पनीर के कुछ टुकड़े ख़ैरात करती है लेकिन अपनी ज़बान से पड़ोसियों को दुख नहीं पहुँचाती। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "वह जन्नत में जाएगी।"

(हदीस : मिशकात)

सोच-विचार करने से पता चलता है कि पहली औरत जहन्नम में इसलिए जाएगी कि उसने पड़ोसी का हक़ मारा। पड़ोसी का हक़ यह है कि उसे कोई तकलीफ़ न पहुँचाई जाए और उसने यह हक़ अदा नहीं किया और अपने पड़ोसी से माफ़ी भी नहीं माँगी, फिर अगर नमाज़, रोज़ा और सदक़ा दिया भी तो क्या हासिल!

पड़ोसी अगर ग़ैर-मुस्लिम हो तब भी उसके साथ अच्छा बरताव करना चाहिए और उसकी मुश्किलों और परेशानियों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। पड़ोसी के साथ नेक सुलूक के सिलसिले में एक क़िस्सा बहुत मशहूर है जो सुनने के ही नहीं बल्कि अमल करने के लायक़ है।

इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) के पड़ोस में एक मोची रहा करता था, जो फ़ितरी तौर पर रंगीन-मिज़ाज था। वह दिनभर तो मज़दूरी करता और रात को उसके यहाँ शराब-कबाब की महफ़िल गर्म होती। इमाम साहब अल्लाह के ज़िक्र की वजह से रातभर जागते थे। उनको मोची के घर से नाच-गाने की आवाज़ें रोज़ सुनाई देती मगर कुछ न कहते। इत्तिफ़ाक़ से किसी वजह से वह एक रोज़ पकड़ा गया और क़ैदख़ाने में डाल दिया गया। उसके मुहल्लेवाले बड़े ख़ुश थे, इमाम साहब को यह बात मालूम न थी। मगर जब रात को उसके घर से रोज़ की तरह शोर की आवाज़ सुनाई नहीं दी तो उन्होंने सुबह लोगों से पूछा कि मोची को क्या हुआ? लोगों ने उसकी गिरफ़्तारी का हाल बयान किया तो इमाम साहब को बहुत अफ़सोस हुआ। फ़ौरन हाकिम के दरबार की तरफ़ रवाना हो गए और उसको रिहा कराकर लाए। मोची उनके प्यार- मुहब्बत भरे बरताव को देखकर रो पड़ा और उसने उनका यह नेक सुलूक देखकर ऐशपरस्ती और मौज-मस्ती से तौबा की और फिर वह इमाम साहब की मजलिस में बैठने लगा जिसमें वे लोगों को इस्लाम की तालीम देते थे।

देखिए एक ज़रा से अमल से कितना बड़ा फ़ायदा हुआ कि मोची की आत्मा जाग उठी और वह अंधेरे से उजाले में आ गया और हर तरह के खेल तमाशों से तौबा करके अल्लाह का नेक बन्दा बन गया। अगर आज हम भी बिना किसी भेद-भाव और पक्षपात के अपने पड़ोसियों को इतने क़रीब ले आएँ जैसे कि वे हमारे अपने रिश्तेदार हों तो इस देश से फ़साद का सिलसिला बहुत जल्द ख़त्म हो जाए। किसी के कहने के मुताबिक़ "फ़साद के दौरान ऐसे ही पड़ोसी नुक़सान पहुँचाते हैं, जो किसी न किसी तौर पर ज़ाती (व्यक्तिगत) बदसुलूकी और बुरे बरताव के शिकार हुए होते हैं। वरना इनसान फ़ितरी तौर पर एहसान को भुला देनेवाला हरगिज़ नहीं होता।"

हमें याद रखना चाहिए कि ग़ैर-मुस्लिम भी इनसान हैं और इस हैसियत से वे हमारे भाई हैं। इसलिए एक इनसान होने की हैसियत से उनके साथ हमदर्दी, उनकी ख़िदमत, उनके दुख-दर्द में शिरकत, लेन-देन, उठना-बैठना होना चाहिए। अलबत्ता अगर कोई बात ग़लत हो रही हो तो एक हक़ की

दावत देनेवाला बनकर समझाना चाहिए न कि नफ़रत करनी चाहिए। आपस में भेद-भाव, नफ़रत वग़ैरा बुरी बातें हैं। इनसे हर मुसलमान को हमेशा बचना चाहिए और अपना अख़लाक़ और किरदार इस्लाम की तालीम के मुताबिक़ बनाना चाहिए ताकि मुसलमान की ज़िन्दगी ख़ुदा के दीन की गवाह बन सके और क़रीबी और पड़ोस के लोगों की ग़लतफ़हमियाँ जो उनके दिल में इस्लाम के बारे में बैठ गई हैं दूर हो सकें और वे अपने पालनहार के धर्म-इस्लाम से परिचित हो सकें।

इस्लामी शरीअ़त भी मुसलमानों को इस बात का पाबन्द बनाती है कि वे ग़ैर-मुस्लिम पड़ोसियों के साथ सब्र, इनसाफ़, रहम और उपकार से पेश आएँ। अल्लाह ख़ुद क़ुरआन मजीद मे फ़रमाता है—

> "अल्लाह तुम्हें इस बात से नहीं रोकता कि तुम उन लोगों के साथ नेकी और इनसाफ़ का बरताव करो जिन्होंने दीन के मामले में तुम से जंग नहीं की है और तुम्हें तुम्हारे घरों से नहीं निकाला है। अल्लाह इनसाफ़ करनेवालों को पसन्द करता है।"
>
> (क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-8)

इसका मतलब यह है कि मुसलमानों को तमाम लोगों के साथ इनसाफ़ और मुहब्बत के ताल्लुक़ात रखने को कहा गया है। इस्लाम इस बात की भी अनुमति नहीं देता है कि ख़ामख़ाह की मज़हबी बहसें और वाद-विवाद किए जाएँ क्योंकि इससे फ़ायदा कुछ नहीं होता, बल्कि भेद-भाव और नफ़रत को बढ़ावा मिलता है।

इयादत और ताज़ियत

सामाजिक ज़िन्दगी में आपसी सहयोग और आपसी ग़मख़ारी की बड़ी अहमियत है। जिस तरह जिस्म के किसी हिस्से में सुई चुभने पर सारे जिस्म को तकलीफ़ होती है, ऐसे ही अगर किसी मुसलमान को दुनिया के किसी भी हिस्से में तकलीफ़ पहुँचती है तो उसे हर मुसलमान को महसूस करना चाहिए। यही मतलब है "सब मुसलमान भाई-भाई हैं" का। वे भाइयों की तरह एक-दूसरे के दुख-दर्द में शरीक होते हैं।

ख़ास तौर पर अपने आस-पास कोई आदमी भूखा है, कोई आदमी बीमार है तो उसकी ख़बर लेना और ग़मख़ारी करना हर मुसलमान का दीनी फ़र्ज़ है। हज़रत सौबान (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जब कोई मुसलमान अपने किसी मुसलमान भाई की इयादत (बीमारपुर्सी) को जाता है तो वह मुसलमान जन्नत के बाग़ में रहता है जब तक वह वापस न आ जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इयादत के लिए उभारते और आपसी ग़मख़ारी की तरफ़ ध्यान दिलाते हुए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन ख़ुदा फ़रमाएगा, ऐ आदम के बेटे! मैं बीमार पड़ा; तूने मेरी इयादत नहीं की? बन्दा कहेगा, परवरदिगार! आप सारी कायनात के पालनहार हैं, भला मैं आपकी इयादत कैसे करता? ख़ुदा कहेगा, मेरा फ़ुलाँ बन्दा बीमार था, तूने उसकी बीमारपुर्सी नहीं की! अगर तू उसकी इयादत को जाता तो मुझे वहाँ पाता।" (हदीस : मुस्लिम)

मतलब यह कि अगर तू मेरे उस बन्दे की बीमारपुर्सी करता तो मेरी ख़ुशनूदी और रहमत का हक़दार बन जाता। यह कितनी बड़ी बात और हमारे लिए ख़ुदा की ख़ुशनूदी की ज़मानत है कि सारी कायनात का पलनहार ख़ुद कह रहा है तो हमारे दिल में ऐसे कामों के लिए कितना जज़्बा उभरना चाहिए, यह बात सोचने से ताल्लुक़ रखती है। इयादत का मतलब सिर्फ़ मरीज़ की मिज़ाजपुर्सी करना ही नहीं है बल्कि हो सके तो मौक़े के लिहाज़ से डॉक्टर को दिखाना, दवा लाना-पिलाना और ज़रूरत हो तो पैर वग़ैरा दाबना सभी कुछ शामिल है, जिसमें अल्लाह की तरफ़ से बहुत ज़्यादा सवाब की उम्मीद है। मरीज़ के पास जाकर उसकी तबीयत का हाल पूछिए और उसकी सेहत के लिए दुआ कीजिए फिर उसको तसल्ली दीजिए। नबी (सल्ल॰) जिस बीमार की इयादत को जाते थे, ऐसा ही करते थे।

हज़रत आइशा-बिन्ते-साद (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मेरे बाप ने अपना क़िस्सा सुनाया कि मैं एक बार सख़्त बीमार पड़ा। नबी (सल्ल॰) मेरी

बीमारपुर्सी के लिए तशरीफ़ लाए, तो मैंने पूछा ऐ अल्लाह के नबी मैं काफ़ी माल छोड़ रहा हूँ और मेरी सिर्फ़ एक ही बेटी है, क्या मैं अपने माल में से दो-तिहाई की वसीयत कर जाऊँ और एक तिहाई बच्ची के लिए छोड़ दूँ? नबी (सल्ल॰) ने कहा, "नहीं"। मैंने कहा, आधे माल की वसीयत कर जाऊँ और आधा माल बेटी के लिए छोड़ जाऊँ? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं"। तो मैंने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के नबी! फिर एक तिहाई की वसीयत कर जाऊँ? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "हाँ, एक तिहाई की वसीयत कर जाओ, एक तिहाई बहुत है।" इसके बाद नबी (सल्ल॰) ने अपना हाथ मेरे माथे पर रखा और मेरे मुँह पर और पेट पर फेरा फिर दुआ की "ऐ ख़ुदा! साद को शिफ़ा (तन्दुरुस्ती) अता कर और उसकी हिजरत को पूरा कर।" उसके बाद से आज तक जब कभी ख़याल आता है तो नबी (सल्ल॰) के मुबारक हाथ की ठण्डक अपने जिगर पर महसूस करता हूँ।

(अल-अदबुल-मुफ़रद)

इस हदीस से मालूम हुआ कि मरीज़ के सिरहाने बैठकर उसके सिर पर या बदन पर हाथ फेरना चाहिए और तसल्ली व तनदुरुस्ती की बातें कहनी चाहिएँ ताकि उसको तसल्ली मिले और वह अल्लाह की तरफ़ ध्यान लगाए।

ग़ैर-मुस्लिम बीमार की इयादत को भी जाइए और मुनासिब मौक़ा पाकर हिकमत के साथ उसको सच्चे-दीन की तरफ़ ध्यान दिलाइए। बीमारी में आदमी ख़ुदा की तरफ़ ज़्यादा ध्यान देता है। हज़रत अनस (रज़ि॰) का बयान है कि एक यहूदी लड़का नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत किया करता था। एक बार वह बीमार पड़ा तो नबी (सल्ल॰) उसकी बीमारपुर्सी के लिए उसके घर गए। नबी (सल्ल॰) उसके सिरहाने बैठे और उसको इस्लाम की दावत दी। लड़का अपने बाप की तरफ़ देखने लगा जो पास ही मौजूद था कि बाप का क्या ख़याल है? बाप ने बेटे से कहा, "बेटे अबुल-क़ासिम (यानी मुहम्मद सल्ल॰) की बात मान ले।" चुनाँचे लड़का मुसलमान हो गया। अब नबी (सल्ल॰) उसके यहाँ से यह कहते हुए बाहर आए "शुक्र है उस ख़ुदा का जिसने इस लड़के को जहन्नम से बचा लिया।" (हदीस : बुख़ारी)

नबी (सल्ल॰) का यह हमेशा का मामूल था कि अगर किसी की बीमारी

की ख़बर मिलती तो उसकी बीमारपुर्सी को ज़रूर जाया करते और मरीज़ की पेशानी पर हाथ रखकर यह दुआ सात बार पढ़ते—

أَسْأَلُ اللّٰهَ الْعَظِيْمَ رَبَّ الْعَرْشِ الْعَظِيْمِ اَنْ يَّشْفِيَكَ

अस-अलुल्लाहल अज़ी-म रब्बल अरशिल अज़ीमि अय्यशफ़ि-य-क।

"मैं अज़ीम (महान) खुदा से जो आसमान के अज़ीम सिंहासन का मालिक है, दुआ करता हूँ कि वह तुझे शिफ़ा और तन्दुरुस्ती अता करे।"

और जब कभी किसी ऐसे मरीज़ के पास जाते जो मौत के क़रीब होता, तो बुलन्द आवाज़ से खुद कलिमा पढ़ते, मरीज़ से ऐसी जांकनी (जान निकलने) की हालत में कलिमा पढ़ने के लिए न कहते।

इयादत के सिलसिले में ये बातें भी याद रखनी चाहिए—

- आपके किसी अमल से मरीज़ को तकलीफ़ न पहुँचे। जिस बीमारपुर्सी से मरीज़ या तीमारदारों को परेशानी उठानी पड़े उसमें सवाब के बजाए गुनाह का ख़तरा बढ़ जाता है।
- अगर मरीज़ को मुलाक़ात से परेशानी होती हो तो सिर्फ़ उसके घरवालों से ही मिज़ाजपुर्सी कर लेनी काफ़ी है।
- बीमार के पास ज़्यादा देर बैठना भी ठीक नहीं होता; हाँ, अगर मरीज़ खुद ही तसल्ली के लिए बिठाना चाहे तो बात दूसरी है।
- इयादत के लिए मुनासिब वक़्त का चुनाव भी निहायत ज़रूरी है ताकि मरीज़ के आराम और दूसरे कामों में ख़लल न पड़े।
- मरीज़ की जो ख़िदमत और मदद कर सकते हों, उसमें संकोच न करें।
- मरीज़ के घर अगर इयादत को जाएँ तो इधर-उधर ताकने-झाँकने से परहेज़ कीजिए। सावधानी के साथ इस अंदाज़ से बैठिए कि घर की औरतों पर नज़र न पड़े।
- बीमार के लिए खुद भी दुआ कीजिए और उसकी हालत कुछ ठीक हो तो उससे अपने लिए दुआ कराइए। हदीस की किताब इब्ने-माजा में है

कि 'मरीज़ की दुआ ऐसी है जैसे फ़रिश्तों की।' हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) रिवायत करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"पाँच दुआएँ ऐसी हैं कि वे (ज़रूर ही) क़बूल की जाती हैं–

मज़लूम की दुआ, जब तक वह ज़ालिम से अपना हक़ न ले ले। हज करनेवाले की दुआ, जब तक वह घर वापस न आ जाए। मुजाहिद की दुआ, जब तक जिहाद से फ़ारिग़ न हो जाए। बीमार की दुआ, जब तक वह अच्छा न हो जाए या वफ़ात न पा जाए और भाई की अपने भाई के हक़ में उसकी ग़ैर मौजूदगी में दुआ। फिर कहा, इन दुआओं में सबसे जल्द क़बूल होनेवाली दुआ वह है जो भाई की ग़ैर-मौजूदगी में की जाए।" (हदीस : बैहक़ी)

नबी (सल्ल॰) मौत की घड़ी आने से पहले मरीज़ को आख़िरत की याद भी दिलाया करते थे, तौबा के लिए नसीहत करते, रिश्तेदारों को रोने-चिल्लाने और कपड़े फाड़ने से मना करते और सब्र करने को कहते। अपने आप आँसू निकलने को मना न करते। अपने बेटे इबराहीम के इन्तिक़ाल पर नबी (सल्ल॰) बहुत ज़्यादा दुखी थे यहाँ तक कि आँसू निकल आए थे। पूछा गया, "ऐ अल्लाह के रसूल! यह क्या?" आप (सल्ल॰) ने कहा, "यह रहमत है जो ख़ुदा ने अपने बन्दों के दिल में रख दी है और ख़ुदा अपने बन्दों में से उन्हीं को रहम अता करता है जो रहम करनेवाले हैं।"

कफ़न-दफ़न में शिरकत

मौत एक ऐसी हक़ीक़त है, जिससे कोई भी इनकार नहीं कर सकता। लेकिन ईमानवाले अल्लाह की रिज़ा (ख़ुशी) पर सब्र करते हैं। नबी (सल्ल॰) का कहना है कि मौत की ख़बर सुनकर 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' "यानी हम सब ख़ुदा ही के हैं और उसी की तरफ़ पलटनेवाले हैं" पढ़ना चाहिए। ईमानवाला बन्दा जब ये अलफ़ाज़ (शब्द) मुँह से अदा करता है तो उसको तीन अज्र (सवाब) मिलते हैं–

"पहला यह कि उस पर ख़ुदा की तरफ़ से रहमत और सलामती उतरती है। दूसरा यह कि उसको हक़ (सच्चाई) की तलाश और

खोजबीन का अज्र मिलता है और तीसरा यह कि उसके नुक़सान की भरपाई की जाती है और उसको फ़ौत (नष्ट) होनेवाली चीज़ का उससे अच्छा बदला दिया जाता है।" (हदीस : तबरानी)

यह कलिमा "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" ज़्यादा मुश्किल नहीं है। हमें इसको याद कर लेना चाहिए और हर मुसीबत के वक़्त इसको पढ़ना चाहिए ताकि अल्लाह की तरफ़ से अज्र के हक़दार हो सकें।

किसी मुसलमान के मरने पर उसकी नमाज़े-जनाज़ा पढ़ने और उसके साथ क़ब्रिस्तान जाकर दफ़न करने में शामिल होने की भी हदीसों में बड़ी फ़ज़ीलत आई है। नबी (सल्ल॰) का कहना है—

"जो आदमी किसी मुसलमान के जनाज़े में शामिल हुआ और जनाज़े की नमाज़ पढ़ी तो उसको एक क़िरात के बराबर सवाब मिलता है। नमाज़ के बाद जो दफ़न में भी शरीक हुआ उसको दो क़िरात के बराबर सवाब दिया जाता है।" किसी ने पूछा कि दो 'क़िरात' कितने बड़े होंगे, आप (सल्ल॰) ने बताया, "दो पहाड़ों के बराबर।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

जनाज़े के साथ पैदल जाइए। नबी (सल्ल॰) एक जनाज़े के साथ चले। आप (सल्ल॰) ने देखा कि कुछ आदमी सवार हैं, उनसे कहा, "तुम लोगों को शर्म नहीं आती कि ख़ुदा के फ़रिश्ते पैदल चल रहे हैं और तुम जानवरों की पीठ पर सवार हो! अगर चाहो तो वापसी पर सवारी पर आ सकते हो।" नबी (सल्ल॰) अबू-वाहिदी के जनाज़े में पैदल गए और वापसी में घोड़े पर सवार होकर आए। मैइत के साथ पैदल जाने में एक बड़ा फ़ायदा यह है कि मैइत को कान्धा दिया जा सकता है, जिसका बहुत बड़ा सवाब है।

जनाज़े की नमाज़ में शामिल होने और जनाज़े के साथ-साथ क़ब्रिस्तान तक जाना फ़र्ज़े-किफ़ाया है। यानी अगर कुछ लोग ऐसा कर लें तो बाक़ी मुसलमानों पर यह फ़र्ज़ साक़ित हो जाता है और वे जनाज़े में शामिल न होने की वजह से गुनाहगार नहीं होते, लेकिन अगर कोई शिरकत करे तो उसे सवाब की ख़ुशख़बरी है। जनाज़े की नमाज़ मुर्दे के लिए और ख़ुद अपने

लिए मग़फ़िरत (क्षमा याचना) की दुआ है और यह मैइत (मरनेवाले) का एक बहुत बड़ा हक़ है। अगर अन्देशा हो कि वुज़ू करते-करते जनाज़े की नमाज़ ख़त्म हो जाएगी तो आप तयम्मुम करके नमाज़ में खड़े हो सकते हैं ताकि सवाब में शामिल हो सकें।

- नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि "जनाज़ा जाता हो तो उसके साथ जाओ, वरना कम-से-कम खड़े हो जाओ और उस वक़्त तक खड़े रहो जब तक जनाज़ा सामने से निकल न जाए।"
- जनाज़े के साथ चलते हुए मैइत की ख़ूबियाँ बयान कीजिए और बुराइयों का ज़िक्र न कीजिए। नबी (सल्ल०) का कहना है, "अपने मुर्दों की ख़ूबियाँ बयान करो और उनकी बुराइयों से ज़बान बन्द रखा करो।" (हदीस : अबू-दाऊद)
- नबी (सल्ल०) ने यह भी फ़रमाया कि जब कोई आदमी मरता है और उसके चार पड़ोसी उसके भला होने की गवाही देते हैं तो ख़ुदा कहता है, "मैंने तुम्हारी गवाही क़बूल कर ली और जिन बातों का तुम्हें इल्म नहीं था वे मैंने माफ़ कर दीं।" (हदीस : इब्ने-माजा)
- एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल०) ने यह भी कहा कि "जब तुम किसी मरीज़ को देखने के लिए जाओ या किसी जनाज़े में शिरकत करो तो हमेशा ज़बान से भलाई की बातें कहो, क्योंकि फ़रिश्ते तुम्हारी बातों पर आमीन (ऐसा ही हो) कहते जाते हैं।" (हदीस : मुस्लिम)
- क़ब्र पर मिट्टी डाली जाए तो दोनों हाथों में मिट्टी भरकर पहली बार मिट्टी डालते हुए पढ़िए مِنْهَا خَلَقْنٰكُمْ 'मिन्हा ख़लक़-नाकुम' इससे हमने तुमको पैदा किया, दूसरी बार में पढ़ें وَفِيْهَا نُعِيْدُكُمْ 'वफ़ीहा नुईदुकुम' और इसी में हम तुमको लौटाएँगे और तीसरी बार मिट्टी डालते वक़्त पढ़ना चाहिए وَمِنْهَا نُخْرِجُكُمْ تَارَةً اُخْرٰى 'व मिन्हा नुख़रिजुकुम ता-रतन उख़रा' और दूसरी बार भी हम तुमको उससे निकालेंगे, यही नबी (सल्ल०) का तरीक़ा है।
- मैइत को दफ़न करने के बाद नबी (सल्ल०) कुछ देर क़ब्र के पास ठहरते

और मग़फ़िरत की दुआ पढ़ते और लोगों से भी कहते, "यह वक़्त हिसाब का है। अपने भाई के लिए साबित क़दम रहने और मग़फ़िरत की दुआ माँगो।" (हदीस : अबू-दाऊद)

अपने अंजाम को सोचने का भी यह अच्छा वक़्त है कि एक दिन हमें भी यहीं आना है। यहाँ रुपया-पैसा, रिश्ते-नाते और दोस्त कोई काम नहीं आएगा बस अपने अच्छे अमल ही काम आएँगे, इसलिए अच्छे अमल करने की फ़िक्र होनी चाहिए।

इसी के साथ मरने के बाद की रस्मों से बचने की कोशिश कीजिए। आजकल मुसलमानों में तीजा, चालीसवाँ वग़ैरा नाम से बहुत-सी रस्में अपना ली गई हैं, ये सब बे-मतलब और बेकार की हैं। इस्लाम से इनका कोई ताल्लुक़ नहीं है। अलबत्ता बस इतने की इजाज़त दी गई है कि रिश्ते-नातेदारों या पास-पड़ोस में किसी के यहाँ मौत हो जाए तो उसके यहाँ दो-एक वक़्त का खाना भिजवाइए, इसलिए कि वह ग़म और सदमे में परेशान होंगे। हदीस की किताब जामेअ-तिरमिज़ी में है कि जब हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) के शहीद होने की ख़बर आई तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "जाफ़र के घरवालों के लिए खाना तैयार कर दो क्योंकि वे ऐसी हालत से दोचार हैं कि वे खाना नहीं पका सकते।"

- तीन दिन से ज़्यादा मरनेवाले का शोक न मनाइए, अलबत्ता किसी औरत का शौहर मर जाए तो उसके शोक की मुद्दत चार महीने दस दिन है। (हदीस : अबू-दाऊद)
- मैइत को सवाब पहुँचाने का काम करें। वह भी इस तरह कि किसी क़िस्म की क़ैद या पाबन्दी और किसी दिन को ख़ास न किया जाए। अपनी हिम्मत के मुताबिक़ हलाल माल से ग़रीबों, मुहताजों की छिपे तौर पर मदद करें या फिर ख़ुद क़ुरआन मजीद पढ़कर उसको सवाब पहुँचा दें।

(4)

अच्छे काम

हर काम को बिसमिल्लाह पढ़कर शुरू करना

अल्लाह पालनहार ने इनसान को इस दुनिया में पैदा किया है और उसको अनगिनत नेमतों से नवाज़ा है। जैसे कि हम जानते हैं कि देखने के लिए आँखें, सुनने के लिए कान, चलने के लिए टाँगें और काम करने के लिए हाथ दिए हैं। अगर अल्लाह ये चीज़ें अता न करता तो बेचारा इनसान पत्थर की तरह संवेदनहीन (बेहिस) और बे-हरकत पड़ा रहता और दुनिया में इसका पैदा होना न होना बराबर होता। इसी लिए इनसान का फ़र्ज़ है कि वह किसी भी वक़्त ख़ुदा को न भूले और हर वक़्त उसको याद रखे। याद रखने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि वह अपने हर काम को 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' पढ़कर शुरू करे। इसका मतलब होता है, शुरू अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है। इसको पढ़ने से काम में बरकत भी होगी और दिल को भी सुकून मिलेगा।

काम तो दुनिया के सभी आदमी करते हैं, हक़ के इनकारी भी और माननेवाले भी। लेकिन दोनों के काम में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। ख़ुदा का इनकारी ग़फ़लत की हालत में काम करता है लेकिन ईमानवाला अपने पालनहार का नाम लेकर अपना हर काम शुरू करता है। मानो वह इस बात को स्वीकार करता है कि अल्लाह की तौफ़ीक़ और मदद के बग़ैर किसी काम का पूरा होना मुमकिन नहीं। जैसा कि नबी (सल्ल॰) का फ़रमान भी है—

> "हर वह अहम काम जिसे बिसमिल्लाह से न शुरू किया गया हो वह नामुकम्मल और अधूरा है।"

नबी (सल्ल॰) ने जितनी बातें कही हैं वे हमारे ही फ़ायदे के लिए कहीं हैं। चुनाँचे काम शुरू करने से पहले 'बिसमिल्लाह' पढ़ने से हमारा ही फ़ायदा

है। जो इस तालीम पर अमल न करेगा वह घाटे में रहेगा। तो हम घाटेवाला रास्ता क्यों अपनाएँ, अपने फ़ायदे की क्यों न सोचें जिससे ख़ुदा भी ख़ुश हो और उसके नबी (सल्ल॰) भी ख़ुश हों!

यह बात हममें से हर आदमी जानता है कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) हमारी आख़िरत का अंजाम सुधारना चाहते हैं, इसलिए वह हमें वे बातें बताना चाहते हैं जिससे ख़ुदा की प्रसन्नता हासिल हो। और जब यह मामला इस तरह है तो सच्चा मुसलमान होने का सुबूत यह होगा कि हम नबी (सल्ल॰) की बात मानकर बिसमिल्लाह से हर काम शुरू करने की आदत डालें।

खाना खाने, पानी पीने और पढ़ने-लिखने से पहले तो बिसमिल्लाह पढ़ें ही मगर हमें इनके अलावा दूसरे काम भी बिसमिल्लाह पढ़कर शुरू करने चाहिएँ। मिसाल के तौर पर कपड़े पहनते वक़्त, घर में दाख़िल होते वक़्त और निकलते वक़्त, सवारी पर सवार होते और उतरते वक़्त, दुकान खोलते वक़्त और किसी से मामला करते वक़्त, किसी मजलिस में बैठते वक़्त, कोई किताब पढ़ते या ख़त लिखते वक़्त ग़रज़ हर नया काम शुरू करते वक़्त बिसमिल्लाह ज़रूर पढ़ना चाहिए।

यह एक तरह से अपने पालनहार अल्लाह को अपना सरपरस्त और कारसाज़ बनाना है। जिस आदमी ने अल्लाह को अपना सरपरस्त और कारसाज़ बना लिया वही कामयाबी के साथ सीधे-सच्चे रास्ते पर चल सकता है। और यह बात सिर्फ़ मर्दों ही के लिए नहीं है, बल्कि औरतों के लिए भी बहुत ज़रूरी है। वे भी काम शुरू करते वक़्त बिसमिल्लाह कहना हमेशा याद रखें। मिसाल के तौर पर खाना पकाना शुरू करें तो उस वक़्त बिसमिल्लाह पढ़ें। आटा गूँधें, तरकारी काटें, आग जलाएँ, रोटी पकाएँ, खाना तैयार करें, दस्तरख़ान बिछाएँ तो बिसमिल्लाह पढ़ें या घर का कोई दूसरा काम करें जैसे, बच्चों को नहलाएँ-धुलाएँ, कपड़े पहनाएँ तो बिसमिल्लाह पढ़ना याद रखें। घर की सफ़ाई-सुथराई करते वक़्त और सीने-पिरोने के वक़्त बिसमिल्लाह पढ़ना अपनी आदत में शामिल कर लें। इससे एक बड़ा फ़ायदा तो यह होगा कि बच्चों को भी बिसमिल्लाह पढ़ने की आदत पड़ जाएगी, दूसरा आमाल-नामे

में नेकियाँ बढ़ती रहेंगी।

तालीम हासिल करनेवाले बच्चों के लिए बिसमिल्लाह पढ़कर अपना काम शुरू करना बहुत फ़ायदेमन्द साबित हो सकता है। अगर सबक़ पढ़ना हो, कोई बात ज़बानी याद करनी हो, किसी विषय पर लेख लिखना हो, इम्तिहान के कमरे में दाख़िल होना और परचे हल करने हों। ये सब मौक़े ऐसे हैं कि हर काम की शुरुआत बिसमिल्लाह पढ़कर की जाए तो अल्लाह ने चाहा नतीजा उम्मीद से बढ़कर होगा।

सलाम करना

दुनिया में हर इनसान को इनसान से काम पड़ता है, वे एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, आपस में ताल्लुक़ात रखते हैं, आपसी ताल्लुक़ात की वजह से उन पर कुछ हुक़ूक़ और फ़र्ज़ बनते हैं; जिनकी सूची बहुत लम्बी है। मगर उनमें सबसे पहली और अच्छी बात यह है कि जब एक आदमी दूसरे से मिले तो सलाम करे। यह बात इस्लामी अख़लाक़ और आदाब का एक ज़रूरी हिस्सा है कि जब दो मुसलमान आपस में मिलें तो एक दूसरे को सलाम करें। इसकी तालीम खुद अल्लाह ने अपने प्यारे नबी (सल्ल॰) को देते हुए क़ुरआन मजीद में फ़रमाया है कि–

"ऐ नबी! आपके पास वे लोग आएँ जो हमारी आयतों पर ईमान लाए हैं तो उनसे कहो, اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ अस्सलामु-अलैकुम।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-54)

अस्सलामु-अलैकुम के मानी हैं, तुम पर सलामती हो। मतलब यह है कि ऐसे लोग जिन्होंने ईमान और इस्लाम को अपने जीवन का मक़सद बना लिया है, उनके लिए ज़रूरी है कि जब वे आपस में मिलें तो एक-दूसरे के लिए सलामती और सुख-शान्ति की दुआ करें। अस्ल में इस्लाम आपसी मुहब्बत बढ़ाने और सम्बन्धों को दुरुस्त करने का बेहतरीन ज़रिआ है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने भी लोगों को सलाम करने की हर मौक़े पर तलक़ीन की है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं–

"खुदा ने जब आदम (अलैहि॰) को पैदा किया तो उनको फ़रिश्तों

की एक जमाअत के पास भेजते हुए हुक्म दिया कि जाओ और उन बैठे हुए फ़रिश्तों को सलाम करो और वे सलाम के जवाब में जो दुआ दें उसको ख़ूब ग़ौर से सुनना और याद रखना कि यही तुम्हारी और तुम्हारी औलाद की दुआ होगी। चुनाँचे हज़रत आदम (अलैहि॰) फ़रिश्तों के पास पहुँचे और कहा, اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ 'अस्सलामु-अलैकुम' (तुम लोगों पर सलामती हो), फ़रिश्तों ने जवाब में कहा, اَلسَّلَامُ عَلَيْكَ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ 'अस्सलामु-अलै-क व रहमतुल्लाह।' (तुम पर सलामती और अल्लाह की रहमत हो) उन्होंने जवाब में 'व रहमतुल्लाह' को बढ़ा करके जवाब दिया। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"लोगों में अल्लाह से बहुत ज़्यादा क़रीब वह शख़्स है, जो लोगों को सलाम करने में पहल करता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

यह ज़रूरी नहीं कि सिर्फ़ उन्हीं लोगों को सलाम किया जाए जिन से हमारी जान-पहचान या रिश्तेदारी हो, बल्कि जिनको हम जानते भी न हों उनको भी सलाम करना चाहिए। ताल्लुक़ और पहचान के लिए इतनी बात काफ़ी है कि वह तुम्हारा मुसलमान भाई है और एक मुसलमान भाई का यह हक़ है कि आप उसको सलाम करें जैसा कि नबी (सल्ल॰) ने एक आदमी के यह पूछने पर कि इस्लाम का बेहतरीन अमल कौन-सा है, बताया—

"ग़रीबों को खाना खिलाना और हर मुसलमान को सलाम करना; चाहे तुम्हारी उससे जान-पहचान हो या न हो।" (हदीस : बुख़ारी)

एक-दूसरे मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

"तुम जन्नत में नहीं जा सकते जब तक कि मोमिन न हो और तुम मोमिन नहीं बन सकते जब तक एक-दूसरे से मुहब्बत न करो। मैं तुम्हें वह तदबीर (उपाय) क्यों न बता दूँ जिसको अपना करके तुम आपस में मुहब्बत करने लगो। आपस में सलाम को फैलाओ।"

(हदीस : मिशकात)

जन्नत में जाने का यह अजीबो-ग़रीब नुस्ख़ा है, जो सिवाय अल्लाह के

पैग़म्बर के कोई नहीं बता सकता। इस अमल से आपस में प्यार भी बढ़ेगा और जन्नत में जाने का रास्ता भी हमवार होगा। क्या ही अच्छा हो कि हम इस नुस्ख़े को सच्चे दिल और लगन के साथ अपनाकर देखें। ख़ुद नबी (सल्ल॰) ने इस पर अमल करके दिखाया है। नबी (सल्ल॰) की आदत थी कि बहुत सलाम करते थे। नबी (सल्ल॰) कहीं तशरीफ़ ले जाते या रास्ते में कोई मुसलमान मिल जाता तो आप (सल्ल॰) उसको सलाम करते यहाँ तक कि बच्चों और औरतों तक को सलाम कर लेते थे।

हज़रत असमा अनसारी (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मैं अपनी सहेलियों के साथ बैठी हुई थी कि नबी (सल्ल॰) का हमारे पास से गुज़र हुआ तो आप (सल्ल॰) ने हम लोगों को सलाम किया।

(हदीस : अल-अदबुल-मुफ़रद)

इससे यह भी मालूम हुआ कि मर्द औरतों को सलाम कर सकते हैं और औरतें मर्दों को सलाम कर सकती हैं अगर फ़ितने का अन्देशा न हो तो।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) का बयान है कि नबी (सल्ल॰) ने कहा— "सबसे बड़ा कंजूस वह है जो सलाम करने में कंजूसी करे।"

(हदीस : अल-अदबुल-मुफ़रद)

नबी (सल्ल॰) की तालीम को सहाबा (रज़ि॰) दिलो-जान से क़बूल करते थे। हज़रत अनस (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) बहुत ज़्यादा सलाम किया करते थे। सलाम की कसरत (अधिकता) का हाल यह था कि अगर किसी वक़्त आपके साथी किसी पेड़ की ओट में हो जाते और फिर सामने आते तो फ़ौरन सलाम करते। नबी (सल्ल॰) का कहना है कि—

"जो आदमी अपने मुसलमान भाई से मिले तो उसको सलाम करे और अगर पेड़ या दीवार या पत्थर बीच में ओट बन जाए और फिर वह उसके सामने आए तो उसको फिर सलाम करे।"

(हदीस : रियाज़ुस्सालिहीन)

सलाम के बारे में ज़रूरी बातें

(1) छोटी उम्रवाले सलाम करने में पहल करें। यानी अगर ऐसे दो

आदमी आपस में मिलें जिनमें एक की उम्र दूसरे से कम हो तो कम उम्रवाला बड़ी उम्रवाले को सलाम करे।

(2) सवार पैदल चलनेवाले को सलाम करे। यानी अगर एक आदमी साइकिल पर आ रहा हो और दूसरा पैदल चल रहा हो तो साइकिल पर आनेवाला सलाम में पहल करे।

(3) आनेवाला बैठे हुए लोगों को सलाम करे, यानी अगर कुछ आदमी किसी जगह बैठे हों और एक आदमी बाहर से वहाँ आए तो आनेवाले के लिए ज़रूरी है कि सलाम करे।

(4) अगर किसी जगह बहुत से आदमी बैठे हों और कोई उन्हें सलाम करे तो उनमें से किसी एक का जवाब सबकी तरफ़ से काफ़ी समझा जाएगा। यह ज़रूरी नहीं है कि हर शख़्स उसका जवाब दे। हाँ, यह बात ज़रूरी है कि जवाब देनेवाला सलाम करनेवाले के अलफ़ाज़ से बेहतर अलफ़ाज़ में जवाब दे और जवाब देने में तंगदिली न दिखाए जैसा कि नबी (सल्ल॰) के अमल से ज़ाहिर होता है।

हज़रत इमरान-बिन-हुसैन (रज़ि॰) का बयान है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) बैठे हुए थे कि एक आदमी आया और उसने आकर اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ "अस्सलामु-अलैकुम" कहा। नबी (सल्ल॰) ने सलाम का जवाब दिया और कहा "दस" (यानी दस नेकियाँ मिलीं) फिर एक दूसरा आदमी आया और उसने اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ "अस्सलामु-अलैकुम व रहमतुल्लाह" कहा। नबी (सल्ल॰) ने सलाम का जवाब दिया और कहा "बीस" (यानी बीस नेकियाँ मिलीं)। इसके बाद एक तीसरा आदमी आया, उसने आकर कहा اَلسَّلَامُ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَةُ اللّٰهِ وَبَرَكَاتُهٗ "अस्सलामु-अलैकुम व रहमतुल्लाहि व ब-रकातुह।" नबी (सल्ल॰) ने सलाम का जवाब दिया और फ़रमाया, "तीस" (यानी इसको तीस नेकियाँ मिलीं)। (हदीस : तिरमिज़ी)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने हर छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, मर्द-औरत को ऐसा अच्छा तरीक़ा बताया है कि जिससे बिना किसी मेहनत के आदमी ढेर सारी नेकियाँ कमा सकता है। इसी लिए सहाबा (रज़ि॰) सलाम की तरफ़ ख़ास

ध्यान देते थे।

हज़रत तुफ़ैल-बिन-उबैइ-बिन-काब (रह॰) कहते हैं कि मैं अकसर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) की ख़िदमत में हाज़िर होता और उनके साथ बाज़ार जाया करता था। जब भी हम दोनों बाज़ार जाते तो हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) जिसके पास से भी गुज़रते, उसको सलाम करते, चाहे वह कोई कबाड़िया होता या कोई दुकानदार होता या कोई ग़रीब होता या मिसकीन-मुहताज यानी कोई भी होता वे उसको सलाम ज़रूर करते।

तुफ़ैल-बिन-उबैइ-बिन-काब (रह॰) बयान करते हैं कि एक दिन मैं अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) की ख़िदमत में आया तो उन्होंने कहा, "चलो बाज़ार चलें"। मैंने कहा "हज़रत बाज़ार जाकर क्या करेंगे? आप न किसी सौदे की ख़रीदारी के लिए खड़े होते हैं, न किसी माल के बारे में जानकारी लेते हैं, न ही मोल-भाव करते हैं और न बाज़ार की महफ़िलों में बैठते हैं। आइए यहीं बैठकर कुछ बातचीत करें।" अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) ने फ़रमाया, "ऐ अबू-बतन!* हम तो सिर्फ़ सलाम करने की ग़रज़ से बाज़ार में जाते हैं कि जो मिले उसे सलाम करें।"

(हदीस : मुवत्ता-इमाम मालिक)

लेकिन बदक़िस्मती से आज के दौर में कुछ लोग सलाम करने और जवाब देने के सिलसिले में बेपरवाही करते हैं। बाहर से आएँगे तो सलाम किए बग़ैर मज़लिस में बैठ जाएँगे और हँसी-मज़ाक़ की बातें शुरू कर देंगे या कोई उन्हें सलाम करे तो ठीक तरह जवाब नहीं देंगे, बल्कि गुरूर भरे अंदाज़ में सिर को हिला देंगे। यह बात इस्लामी तरीक़े के ख़िलाफ़ है।

कुछ लोगों की यह भी आदत है कि वे 'अस्सलामु-अलैकुम' कहने के बजाए "आदाब अर्ज़ है" कहते हैं। शायद वे सोचते हैं कि वे बहुत ज़्यादा पढ़े-लिखे और अधिक तहज़ीबवाले हैं, जबकि यह बात खुली हुई जिहालत

---

* तुफ़ैल-बिन-उबैई-बिन-काब (रह॰) का पेट थोड़ा बड़ा हुआ था इसलिए लोग उनको अबू-बतन यानी पेटवाला कहते थे।

है। ऐसे लोग सलाम के सवाब से महरूम (वंचित) रह जाते हैं, बल्कि नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा छोड़कर गुनाहगार भी होते हैं। नबी (सल्ल॰) का इरशाद है कि "अस्सलाम" ख़ुदा के नामों में से एक नाम है, जिसको ख़ुदा ने ज़मीन में (ज़मीनवालों के लिए) रख दिया है लिहाज़ा 'अस्सलाम' को आपस में ख़ूब-ख़ूब फैलाओ। (हदीस : अल-अदबुल-मुफ़रद)

इस वाज़ेह फ़रमान के बाद मोमिन के लिए किसी तरह जाइज़ नहीं है कि वह ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल॰) के बताए हुए तरीक़े को छोड़कर मुहब्बत को ज़ाहिर करने के लिए कोई दूसरा तरीक़ा अपनाए।

इसी तरह यह भी देखा गया है कि जब कुछ लोग घर में आते हैं तो घरवालों को सलाम करने में शर्म महसूस करते हैं जबकि यह बात भी एक मुसलमान को शोभा नहीं देती, क्योंकि नबी (सल्ल॰) ने इसकी तरग़ीब लोगों को दी है। हज़रत अनस (रज़ि॰) का बयान है कि मुझे प्यारे नबी (सल्ल॰) ने ताकीद की कि–

> "प्यारे बेटे! जब तुम अपने घर में दाख़िल हुआ करो तो पहले घरवालों को सलाम किया करो। यह तुम्हारे लिए और तुम्हारे घरवालों के लिए ख़ैर और बरकत की बात है।"
>
> (हदीस : तिरमिज़ी)

लेकिन यह बात याद रखने की है कि अगर ऐसे वक़्त घर में पहुँचें जब कुछ लोग सो चुके हों तो ऐसी आवाज़ में सलाम कीजिए कि जागनेवाले सुन लें और सोनेवालों की नींद में ख़लल न हो। नबी (सल्ल॰) का यही तरीक़ा था। हज़रत मिक़दाद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हम नबी (सल्ल॰) के लिए कुछ दूध रख लिया करते थे। जब नबी (सल्ल॰) कुछ रात बीत जाने के बाद तशरीफ़ लाते तो आप (सल्ल॰) इस तरह सलाम करते कि सोनेवाला जागे नहीं और जागनेवाला सुन ले। अतः नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ लाए और मामूल के मुताबिक़ सलाम किया। (हदीस : मुस्लिम)

छोटे बच्चों को भी सलाम कीजिए। यह बच्चों को सलाम सिखाने का सबसे अच्छा तरीक़ा है और नबी (सल्ल॰) की सुन्नत भी है। एक बार हज़रत

अनस (रज़ि॰) जब बच्चों के पास से गुज़रे तो उनको सलाम किया और बताया कि नबी (सल्ल॰) ऐसा ही करते थे। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

सलाम के बारे में यह भी याद रखना चाहिए कि सलाम करना उस वक़्त सुन्नत है जब कोई आदमी अपने काम में व्यस्त न हो और यह अन्दाज़ा हो कि सलाम करने से उसके काम में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। मिसाल के तौर पर कोई आदमी क़ुरआन की तिलावत या ख़ुदा का ज़िक्र कर रहा हो या ख़तीब ख़ुतबा पढ़ रहा हो या मुअज़्ज़िन अज़ान दे रहा हो, या डॉक्टर किसी का आपरेशन कर रहा हो, या कोई पाख़ाना-पेशाब के लिए बैठा हो या किसी और काम में लगा हो, जिससे ध्यान हटने से काम में नुक़सान होने का अन्देशा हो तो जब तक वह काम पूरा न कर चुके सलाम करना सही नहीं।

सलाम का जवाब देने का नबी (सल्ल॰) ने हुक्म दिया है। जिस काम का नबी (सल्ल॰) हुक्म दें उसको सुन्नते-मुअक्किदा कहते हैं। सलाम नबी (सल्ल॰) की ऐसी ही सुन्नत है। फ़र्ज़ उसको कहते हैं जिसका करना लाज़िम है और अगर न किया जाए तो इनसान गुनाहगार बन जाता है। सलाम का जवाब देना ऐसा ही ज़रूरी काम है यानी अगर कोई सलाम करे तो जवाब ज़रूर दिया जाए, नहीं तो गुनाह होगा।

खाने-पीने के आदाब

खाना-पीना इनसान की बुनियादी ज़रूरतों में से है, इसके बग़ैर इनसान ज़िन्दा नहीं रह सकता। खाने-पीने के भी कुछ आदाब हैं, जिनका पता नबी (सल्ल॰) की सीरत (जीवनी) से चलता है। नबी (सल्ल॰) ने जहाँ लोगों को इबादत का तरीक़ा सिखाया, रहने-सहने का ढंग बताया वहीं खाने-पीने के आदाब भी सिखाए ताकि आदमी तहज़ीबवाली और सलीक़े की ज़िन्दगी गुज़ार सके।

नबी (सल्ल॰) की यह आदत थी कि घर में जो खाना वक़्त पर मौजूद होता वही खा लेते, इसके अलावा और चीज़ लाने की तकलीफ़ न दिया करते। जो खाना सामने लाकर रखा जाता सब्र और शुक्र के साथ खा लेते थे। कभी किसी खाने में ऐब न निकालते और बड़े अदब से बैठकर खाते।

कहते कि मैं इस तरह खाता हूँ जैसे एक ग़ुलाम (दास) खाता है। तकिया लगाकर या लेटकर नबी (सल्ल॰) ने कभी खाना नहीं खाया। ज़्यादातर उकड़ूँ बैठकर खाना खाते। कभी-कभी दोज़ानू बैठकर भी खाना खाते। दूसरे लोगों को भी वक़्त-वक़्त पर खाने के सिलसिले में आदाब बताते। उनमें से कुछ आदाब जो नबी (सल्ल॰) ने बताए, ये हैं–

● खाना बैठकर खाओ ● खाने से पहले हाथ धो लो ● खाते वक़्त सिर ढक लो ● खाना शुरू करने से पहले 'बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम' पढ़ लो ● अपने आगे से खाओ ● ज़्यादा गर्म खाना न खाओ ● हमेशा सीधे हाथ से खाना खाओ ● बरतन को साफ़ कर दो ● खाना इत्मीनान के साथ खाओ ● खाना खाने के बाद यह दुआ पढ़ो–

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْٓ اَطْعَمَنَا وَسَقَانَا وَجَعَلَنَا مِنَ الْمُسْلِمِیْنَ.

अल-हम्दुलिल्लाहिल्लज़ी अत-अ-म-ना व सक़ाना व ज-अ-ल-ना मिनल-मुस्लिमीन

"तमाम तारीफ़ और शुक्र उस ख़ुदा के लिए है जिसने हमें खिलाया और पिलाया और जिसने हमें मुसलमान बनाया।"

नबी (सल्ल॰) ने यह भी कहा कि अगर शुरू में 'बिसमिल्लाह' पढ़ना भूल जाओ तो बीच में यह कहो–

بِسْمِ اللّٰهِ اَوَّلَهٗ وَآخِرَهٗ

"बिसमिल्लाहि अव-व-लहू व आख़ि-रहू।"

"अल्लाह के नाम से शुरू करता हूँ उसके (खाने के) पहले भी और उसके (खाने के) आख़िर में भी।"

हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि॰) कहते हैं कि जब तक नबी (सल्ल॰) खाना शुरू न करते, हम भी खाना शुरू न करते थे। एक बार की बात है कि हम खाना खाने बैठे ही थे कि एक लड़की दौड़ती हुई इस तरह से आई जैसे कोई खींचता हुआ उसे ला रहा हो और बिना 'बिसमिल्लाह' पढ़े उसने खाने में हाथ डाल दिया। नबी (सल्ल॰) ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा,

"शैतान उस खाने को हलाल समझता है जिस पर ख़ुदा का नाम न लिया गया हो। शैतान इस लड़की के साथ खाना हलाल करने के लिए आया है। इसलिए मैंने इसका हाथ पकड़ लिया।" फिर फ़रमाया, "क़सम है! उस पाक ख़ुदा की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है, शैतान का हाथ इस लड़की के साथ मेरे हाथ में है।" (हदीस : रियाज़ुस्सालिहीन)

- सीरत में आया है कि जब नबी (सल्ल॰) खाना ख़त्म करते तो ज़बान से उँगलियों को चाट लेते। रोटी से उँगलियों को कभी साफ़ नहीं करते। यह आदत घिनौनी भी है और इससे अल्लाह के रिज़्क़ की बेहुरमती भी होती है। इसी लिए इससे आदमी को बचना चाहिए।
- खाने-पीने की चीज़ों पर फूँक नहीं मारनी चाहिए क्योंकि अन्दर से आनेवाली साँस अपने साथ गन्दी हवा लाती है, जिसमें ज़हरीले असरात होते हैं।
- अगर कोई लुक़मा ज़मीन पर गिर जाए तो उसको उठाकर साफ़ कर लीजिए और खा लीजिए। यह नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा है। नबी (सल्ल॰) ने कहा उसे शैतान के लिए मत छोड़ो।
- खाने का नबी (सल्ल॰) बहुत अदब करते थे। हज़रत आइशा (रज़ि॰) का बयान है कि एक बार नबी (सल्ल॰) ने रोटी का टुकड़ा ताक़ में देखा। नबी (सल्ल॰) ने उसको उठाकर साफ़ किया और खा लिया, फिर कहा, "ऐ आइशा! अल्लाह की नेमत की क़द्र करो। जिस नेमत की बेक़द्री की जाती है, वह फिर उस घर में नहीं आती।"
- खाना ठण्डा होने का इन्तिज़ार करो। गर्म खाना सेहत, ख़ास तौर पर दाँतों के लिए हानिकारक है।
- दोपहर का खाना खाने के बाद थोड़ी देर क़ैलूला (आराम) करना अच्छा है और रात के खाने के बाद थोड़ी देर टहलना चाहिए।

नबी (सल्ल॰) ने पानी पीने के भी कुछ आदाब बताए हैं, उन्हें ध्यान में रखना चाहिए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

- पानी बैठकर पीना चाहिए। पानी पीने से पहले बिसमिल्लाह पढ़ लेना

चाहिए। पानी तीन साँस में पीना चाहिए। पानी सुराही या लोटे की टोंटी से न पिएँ बल्कि ऐसे बरतन में पानी पीना चाहिए जिससे कि मुँह में जानेवाला पानी नज़र आए ताकि कोई गन्दी चीज़ पेट में न जा सके। हज़रत अनस (रज़ि॰) तीन साँस में पानी पीते थे और कहते थे कि नबी (सल्ल॰) भी ऐसा करते थे। और फ़रमाते थे कि इस तरीक़े से पानी पीना ज़्यादा ख़ुशगवार है।

- हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने ज़मज़म का पानी खड़े-खड़े पिया। (हदीस : तिरमिज़ी)

खाने-पीने का सही तरीक़ा क्या है, यह ऊपर की बातों से साफ़ हो गया है। इसी के साथ खाने से पहले हर आदमी को यह जान लेना चाहिए कि जो खाने की चीज़ उसके सामने आई है वह हलाल है या हराम। अगर हराम है तो बिलकुल नहीं खानी चाहिए, इसलिए कि हराम चीज़ें खानेवाले आदमी की नमाज़ क़बूल नहीं होती। यह बात इसलिए भी ध्यान में रखनी ज़रूरी है कि आज-कल पश्चिमी देशों की नक़ल में खाने के साथ तरह-तरह की पीने की चीज़ें भी शामिल हो गई हैं। किसी महफ़िल में बग़ैर ज़िब्ह किया हुआ गोश्त भी होता है। इसी तरह पीने की चीज़ों में अलकोहल मिला होता है, इसी लिए खाने-पीने में सावधानी बरतने की ज़रूरत है।

नए दौर का 'बफ़ेट' (Buffet) खाना खाने का तरीक़ा जिसमें मेहमान अपनी-अपनी प्लेटें भरकर खड़े-खड़े खाते फिरते हैं, यह भी इस्लामी आदाब के ख़िलाफ़ है। इस्लाम तो कहता है कि खाने का अदब बहुत ज़रूरी है। बैठकर खाओ, खाने को बरबाद न करो, बरतन को साफ़ कर दो। यह सुन्नत का तरीक़ा भी है। इसी तरीक़े में सवाब मिलना वाजिब होता है। हम मुसलमानों को इसी तरीक़े पर अमल करना चाहिए।

वक़्त की पाबन्दी

वक़्त बहुत क़ीमती चीज़ है, जिसका कोई मोल नहीं। न यह कोई दिखावेवाली चीज़ है, मगर फिर भी हर इनसान से इसका वास्ता हर क्षण हर जगह और हर दिन है। दुनिया में हर चीज़ की कुछ-न-कुछ तलाफ़ी (भरपाई)

मौजूद है मगर नहीं है तो वक़्त (समय) की। दौलत, सेहत और इज़्ज़त को कोशिश और मेहनत से दोबारा हासिल किया जा सकता है मगर वक़्त का मामला नदी के पानी की तरह है। इन दोनों में से जो भी एक बार गुज़र गया वह फिर हाथ आता नहीं, चाहे लाख सिर पटको, पछताओ, अफ़सोस करो यहाँ तक कि अगर गुज़रे हुए वक़्त को वापस लाने के लिए तमाम दुनिया की दौलत भी ख़र्च कर दी जाए, फिर भी वह वापस नहीं आ सकता।

जो लोग इसकी क़द्र करते हैं और पाबन्दी के साथ इसको काम में लाते हैं वे हमेशा कामयाब, ख़ुश और प्रसन्न-चित्त रहते हैं। इसके बरख़िलाफ़ जो लोग वक़्त की तरफ़ से लापरवाही बरतते हैं ऐसे लोग कभी कोई काम नहीं कर पाते और हमेशा मुहताजी और गुमनामी की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। जो आदमी अपने घर के काम के लिए एक वक़्त और हर वक़्त के लिए एक काम पहले ही से मुक़र्रर (निश्चित) कर लेते हैं, उनसे बड़े-बड़े काम भी थोड़े वक़्त में पूरे हो जाते हैं। वे अपने इरादों में कामयाबी और सफलता पा लेते हैं। कुछ लोग इस सिलसिले में वक़्त की तंगी और फ़ुरसत न होने की शिकायत करते हैं। ये वे लोग हैं जो वक़्त की क़द्र करना नहीं जानते। उन्हें न दुनिया का पता न दीन का, वक़्त के गुज़र जाने पर अफ़सोस से तो हाथ मलते हैं मगर—

"अब पछताए होत क्या; जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत।"

ऐसे आदमी के सामने हमेशा कामों का ढेर लगा रहता है। रुसवाई और पस्ती उनके सिर पर सवार रहती है। उन्हें न दुनिया मुँह लगाती है न दुनियावाले; क्योंकि सब जानते हैं कि ये निखट्टू और कामचोर लोग हैं। ये लोग न सिर्फ़ अपने लिए बल्कि देश और क़ौम के लिए भी बड़े बोझ होते हैं। उन्होंने न कभी क़ुदरती निज़ाम से वक़्त की पाबन्दी का सबक़ लिया और न दीन और मज़हब की इबादतों के मुक़र्ररा (निश्चित) वक़्तों से कुछ सीखा।

हम ज़रा भी ग़ौर करें तो मालूम होगा कि हर सुबह सूरज ठीक वक़्त पर पूरब से निकलता है और वक़्त की पाबन्दी के साथ ज़मीन का चक्कर

लगाता है। इसी तरह नमाज़, रोज़ा वग़ैरा दीनी कामों पर सोच-विचार करें तो पता चलता है कि ख़ुदा ने इबादतों में वक़्त की पाबन्दी की ख़ास हिदायत दी है जो वक़्त इन इबादतों के लिए मुक़र्रर है अगर उन्हें टालकर अदा किया जाए तो वह सवाब हासिल नहीं होता जो तय वक़्त में अदा करने से होता है। रोज़े के इफ़्तार का जो वक़्त मुक़र्रर है अगर उसका लिहाज़ न किया जाए तो दिन-भर की मेहनत बेकार हो जाएगी।

सबसे बड़ी ख़राबी वक़्त की क़द्र न करने से यह होती है कि बेकारी में आदमी को बुराइयाँ सूझती हैं। गन्दे, नापाक और बिखरे हुए ख़याल आते रहते हैं क्योंकि ख़ाली दिमाग़ पर शैतान क़ब्ज़ा कर लेता है। इससे बचने की यही तरकीब है कि आदमी काम में लगा रहे। मुसलमान को तो और भी ज़्यादा अपने वक़्त को काम में लाना चाहिए क्योंकि उसे तो मालूम है कि क़ियामत के दिन अल्लाह हर बन्दे से सवाल करेगा कि जो मुहलते-उम्र दी गई थी उसे कहाँ खपाया। मानो यह उम्र जो हर क्षण बर्फ़ की सिल्ली की तरह पिघलती जा रही है, इसके बारे में पूछा जाएगा कि इसे कैसे बिताई, क्या-क्या अच्छे काम किए या सिर्फ़ इसे पतंग उड़ाने, ताश खेलने, सिनेमा देखने और आवारागर्दी में बरबाद किया। इम्तिहान की अहमियत और नज़ाकत को देखते हुए बड़ा हस्सास (संवेदनशील) होने की ज़रूरत है। यानी आज का काम कल पर न उठा रखें। नमाज़ को टालकर न पढ़ें। किसी से वादा करें तो ठीक वक़्त पर उसे पूरा करें। जिस काम में हाथ डालें उसको निहायत दिल लगाकर और वक़्त की पाबन्दी के साथ पूरा करें ताकि दीन-दुनिया की कामयाबियाँ हासिल हो सकें।

इसके साथ यह बात भी याद रखने की है कि अल्लाह ने जो वक़्त इनसान को दिया है वह बुरे कामों में भी ख़र्च किया जा सकता है और अच्छे कामों में भी। नमाज़, रोज़ा, ज़िक्र, इनसानों की ख़िदमत, इल्म का हासिल करना ये और इस तरह के दूसरे काम अच्छे माने जाते हैं। जुआ, सट्टा, ताश खेलना, बेकार में इधर-उधर घूमना-फिरना वग़ैरा बुरे काम माने जाते हैं। हमारा दस्तूर यह होना चाहिए कि हम जहाँ तक मुमकिन हो अच्छे क़ामों से लगाव रखें और वक़्त आने पर उन्हें अंजाम दें। बुरे कामों से ख़ुद भी बचें

और दूसरों को भी बचाएँ ताकि क़ियामत में जहाँ ज़र्रा बराबर नेकी और ज़र्रा बराबर बदी का हिसाब देना होगा, हमें परेशानी न उठानी पड़े और पछतावा न हो। ख़ुदा ने तो दो टूक तरीक़े से बता दिया है कि इनसान की भलाई का रास्ता कौन-सा है और तबाही-बरबादी का रास्ता कौन-सा। यहाँ हमारी अक़्ल का इम्तिहान है कि कौन-सा रास्ता पसन्द करके अपने वक़्त को कारामद बनाते हैं। इसके लिए ज़रूरी यह है कि वक़्त को कम-से-कम तीन हिस्सों में बाँट लिया जाए।

(1) एक हिस्सा अल्लाह की इबादत के लिए।

(2) एक हिस्सा अपने घरवालों के सामाजिक हक़ों को अदा करने के लिए और नाते-रिश्तेदारों, दोस्तों और मिलने-जुलनेवालों के लिए।

(3) एक हिस्सा अपने नफ़्स की राहत यानी आराम करने के लिए।

नबी (सल्ल॰) ने अपने वक़्तों की यही तक़सीम की थी। दोस्त अहबाब के लिए जो वक़्त तय था उसमें नबी (सल्ल॰) दीन के हुक्म (आदेश) बताते ताकि उम्मत का सुधार हो। हमें भी अपने वक़्तों में इस बात का लिहाज़ रखना चाहिए कि दावत और तबलीग़ के लिए कुछ वक़्त रखें और ज़्यादा से ज़्यादा लोगों तक हक़ की आवाज़ पहुँचाने की कोशिश करें और बेकार बातों से बचें। मुसलमान की ख़ुबियों में एक यह बात भी शामिल है कि वह अपना वक़्त बेकार नहीं करता।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"आदमी के इस्लाम की ख़ूबी और उसके कमाल में यह भी दाख़िल है कि वह बेकार और बेफ़ायदा कामों और बातों का छोड़ देनेवाला हो।" (हदीस : इब्ने-माजा, तिरमिज़ी)

यानी दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह है कि आदमी दुनिया में ज़्यादा दिल न लगाए और आख़िरत की फ़िक्र करे।

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) का एक कान कटे मरे हुए बकरी के बच्चे के पास से गुज़र हुआ। नबी (सल्ल॰) ने

कहा, "तुममें से कौन पसन्द करता है कि यह (मुर्दा बच्चा) उसको एक दिरहम के बदले मिल जाए।" लोगों ने अर्ज़ किया दिरहम तो बड़ी चीज़ है हम तो इसको भी पसन्द नहीं करते कि यह हमको किसी गिरी-पड़ी चीज़ के बदले में मिले। नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया—

"क़सम अल्लाह की! दुनिया अल्लाह के नज़दीक इससे भी ज़्यादा कमतर (तुच्छ) है, जितना कि यह तुम्हारे नज़दीक।"

(हदीस : मुस्लिम)

इस मौक़े पर हम भी सोच सकते हैं कि हमें अपना वक़्त कैसे कामों में लगाना चाहिए। क्योंकि दुनिया में तो वक़्त को अच्छे कामों में लगाने से दिल को सुकून मिलता है, इसी के साथ-साथ आख़िरत भी सुधर सकती है क्योंकि वहाँ ख़ास तौर से वक़्त का हिसाब-किताब होगा कि जवानी कहाँ और कैसे गुज़ारी और अपने वक़्त को किस काम में ख़र्च किया।

दिन और रात के काम

दिन और रात अल्लाह की बड़ी नेमतों में से हैं। अल्लाह ने दिन और रात का बँटवारा करके ज़िन्दगी में संतुलन पैदा कर दिया है जैसा कि खुद अल्लाह कहता है—

"क्या इन लोगों ने यह नहीं देखा कि हमने रात बनाई कि ये आराम और सुकून हासिल करें और दिन को रौशन किया (कि दौड़-धूप करें)। बेशक इसमें ईमानवालों के लिए निशानियाँ हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-27 नम्ल, आयत-86)

यानी यह अल्लाह की कितनी बड़ी हिकमत है, इस पर सोच-विचार करना चाहिए। ऐशो-आराम और पेट भरने के लिए आदमी को पैसों की ज़रूरत होती है, वह दिन-भर मेहनत करता है और सख़्त मेहनत के बाद वह थकान महसूस करता है तो रात आराम के लिए होती है और इसी तरह ज़िन्दगी की गाड़ी चलती रहती है। हमें खुदा के इस इनाम की क़द्र करनी चाहिए। इस सिलसिले की कुछ बातें याद रखिए—

- जब शाम हो जाए तो ऐसे वक़्त छोटे बच्चों को घर से बाहर न निकलने

दें क्योंकि प्यारे नबी (सल्ल॰) का कथन है कि "इस वक़्त शैतान ज़मीन पर फैल जाते हैं।" (हदीस : सिहाए-सित्ता)

- इशा की नमाज़ पढ़ने से पहले सोने से परहेज़ कीजिए।
- रात होते ही घर में रौशनी करवा दीजिए। नबी (सल्ल॰) ऐसे घर में सोने से परहेज़ करते थे, जिसमें रौशनी न की गई हो।
- रात गए तक जागने से परहेज़ कीजिए, क्योंकि इससे सुबह (फ़ज्र) की नमाज़ छूटने का ख़तरा पैदा हो जाता है। वैसे भी ज़्यादा देर तक जागने से जिस्म और जान को वह आराम नहीं मिलता जो उनका हक़ है। इसी लिए नबी (सल्ल॰) ने इसको भी पसन्द नहीं किया कि आदमी रात-रात भर जागकर ख़ुदा की इबादत करे और अपने-आपको ऐसी मशक़्क़त में डाले जो बरदाश्त से बाहर हो।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र (रज़ि॰) से एक बार नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "क्या यह बात जो मुझे बताई गई है सही है कि तुम हमेशा रोज़े रखते हो और रात-रात भर नमाजें पढ़ते हो?" हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) ने कहा कि जी हाँ बात तो सही है। नबी (सल्ल॰) ने कहा,

> "नहीं, ऐसा न करो। कभी रोज़ा भी रखो और कभी खाओ-पिओ, इसी तरह सोओ भी और उठकर नमाज़ भी पढ़ो क्योंकि तुम्हारे शरीर का भी तुम पर हक़ है और तुम्हारी आँखों का भी तुम पर हक़ है।" (हदीस : बुख़ारी)

- सोने से पहले वुज़ु कर लें तो अच्छा है। इससे हाथ-पैरों में लगा हुआ मैल-कुचैल साफ़ हो जाएगा, यह नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा (सुन्नत) भी है।
- घर में कहीं आग जल रही हो तो उसे बुझा देना चाहिए। एक बार मदीना में रात के वक़्त किसी के घर में आग लग गई थी तो नबी (सल्ल॰) ने कहा, "आग तुम्हारी दुश्मन है। जब सोने के लिए जाओ तो उसे बुझा दिया करो।"
- सोने से पहले बिस्तर को अच्छी तरह झाड़ लेना चाहिए।

- बिस्तर पर पहुँचकर सोने से पहले क़ुरआन मजीद का कुछ हिस्सा ज़रूर पढ़ना चाहिए।

हज़रत आइशा (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) सोने से पहले 'चारों क़ुलवाली सूरतें' पढ़कर हाथों पर दम करते और उन्हें अपने बदन पर फेरते थे। (हदीस : तिरमिज़ी)

- पट (पेट के बल) लेटने और बाएँ करवट पर सोने से परहेज़ कीजिए। हज़रत यईश (रज़ि०) के वालिद (पिता) कहते हैं कि मैं मस्जिद में पेट के बल लेटा हुआ था कि किसी साहब ने मुझे अपने पाँव से हिलाया और कहा कि इस तरह लेटने को ख़ुदा नापसन्द करता है। अब जब मैंने देखा तो वे प्यारे नबी (सल्ल०) थे। (हदीस : तिरमिज़ी)
- प्यारे नबी (सल्ल०) हमेशा दाएँ करवट लेटते थे।
- सोने के वक़्त की यह छोटी सी दुआ याद रखिए।

اَللّٰهُمَّ بِاسْمِكَ اَمُوْتُ وَاَحْيٰى.

"अल्ला-हुम-म बिसमि-क अमूतु व अह्या"

यानी 'ऐ अल्लाह, मैं तेरे ही नाम से मौत की गोद में जाता हूँ और तेरे ही नाम से ज़िन्दा उठूँगा।' (हदीस : बुख़ारी)

- रात के आख़िरी हिस्से में उठने की आदत डालिए ताकि ख़ुदा से अपने गुनाहों की माफ़ी और उसकी रहमत माँगी जा सके।
- नींद से बेदार होने (जाग उठने) पर यह दुआ पढ़ें—

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِىْ اَحْيَانَا بَعْدَ مَا اَمَاتَنَا وَاِلَيْهِ النُّشُوْرُ

"अल-हमदु लिल्लाहिल्लज़ी अह्याना बअ्-द मा अमा-तना व इलैहिन्नुशूर"

यानी "शुक्र और तारीफ़ ख़ुदा ही के लिए है, जिसने हमें मुर्दा कर देने के बाद ज़िन्दगी दी और उसी के सामने उठकर हाज़िर होना है।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हलाल रोज़ी की तलाश

अल्लाह ने क़ुरआन मजीद में ख़बरदार करते हुए फ़रमाया है—

"तबाही है डंडी मारनेवालों (कम तौलनेवालों) के लिए जिनका हाल यह है कि जब लोगों से लेते हैं तो पूरा-पूरा लेते हैं और जब उनको नापकर या तौलकर देते हैं तो उन्हें घटाकर देते हैं। क्या ये लोग नहीं समझते हैं कि एक बड़े दिन ये उठाकर लाए जानेवाले हैं, उस दिन जबकि सब लोग तमाम जहानों के रब के सामने खड़े होंगे।"

(क़ुरआन, सूरा-83 मुतफ़्फ़िफ़ीन, आयत-1-6)

तिजारत (व्यापार) दौलत कमाने का एक अच्छा पेशा माना गया है, लेकिन अगर नाप-तौल में किसी ने ग़लत तरीक़े अपनाए, यानी लेने के पैमाने और रखे और देने के और, तो यह चीज़ तबाही का कारण होगी, जैसा कि क़ुरआन मजीद की आयत से ज़ाहिर है। दुनियादारी के लिहाज़ से क़ुरआन मजीद में ही हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की क़ौम की तबाही का क़िस्सा आया है। उस पर जिस जुर्म की वजह से अज़ाब आया वह यही था कि उसके अन्दर नाप-तौल की कमी का मर्ज़ आमतौर से फैला हुआ था और हज़रत शुऐब (अलैहि॰) की बार-बार नसीहतों के बावजूद यह क़ौम इस जुर्म से बाज़ न आई, जिसके नतीजे में पूरी क़ौम तबाह कर दी गई।

अस्ल में आदमी खाने-कमाने को दुनियादारी का काम समझता है और नाप-तौल में कमी करके और अमानत में ख़ियानत करके ख़ुश होता है कि मैंने ख़ूब हाथ की सफ़ाई दिखाई और नफ़ा भी कमाया। मगर अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) के नज़दीक ये अच्छे काम नहीं हैं। इसी लिए तिजारत या सौदागरी में धोखा-फ़रेब करनेवालों के बारे में नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो तिजारत में धोखेबाज़ी करे वह हम में से नहीं है और धोखेबाज़ी दोज़ख़ (नरक) में ले जानेवाली चीज़ है।"

नबी (सल्ल॰) ने यह बात उस वक़्त कही जब नबी (सल्ल॰) एक बार मदीना के बाज़ार से गुज़र रहे थे। आप (सल्ल॰) ने देखा कि एक आदमी

ने बेचने के लिए ग़ल्ले का ढेर लगा रखा है, लेकिन ऊपर सूखा ग़ल्ला डाल रखा है और अन्दर कुछ नमी है। इस पर नबी (सल्ल॰) ने उपरोक्त बात कही थी।

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जन्नत में वह गोश्त (आदमी) नहीं जाएगा जो हराम से पैदा हुआ और हराम से बढ़ा; उसके लिए तो आग ही मुनासिब है।"

(हदीस : अहमद)

यानी कम तौलकर, कम नापकर, दूध में पानी मिलाकर जो रोज़ी कमाई जाती है उसे खा-पीकर पलनेवाला शरीर जन्नत में नहीं जा सकेगा, आग ही उसके लिए मुनासिब है ताकि गन्दगी से उसको पाक कर दे। इसी तरह हराम पैसे से बननेवाला कपड़ा भी नापाक है और जब तक वह बदन पर रहेगा अल्लाह उसकी नमाज़ क़बूल न करेगा।

हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिसने कोई कपड़ा दस दिरहम का ख़रीदा और उसमें एक दिरहम हराम का था तो जब तक यह कपड़ा उसके बदन पर रहेगा अल्लाह उसकी नमाज़ क़बूल न फ़रमाएगा।" इसके बाद हज़रत इब्ने-उमर (रज़ि॰) ने अपनी उंगलियाँ दोनों कानों में दाख़िल कीं और कहा कि "ये बहरे हो जाएँ अगर मैंने नबी (सल्ल॰) से यह फ़रमाते हुए न सुना हो।" (हदीस : बैहक़ी)

यह कितना बड़ा नुक़सान है अगर सोचा जाए, बिलकुल वैसे ही जैसे कोई आदमी पँखे के नीचे से निकलकर तन्दूर में चला जाए। इसी लिए ईमानवाले बन्दे इससे बचते हैं और पूरी कोशिश करते हैं कि हराम रोज़ी के निकट भी न जाएँ।

हसन-बिन-ज़ियाद कहते हैं कि इमाम अबू-हनीफ़ा (रह॰) ने एक बार अपने तिजारत के साझीदार के पास कुछ सामान भेजा, जिसमें एक कपड़ा ऐबवाला था और कह दिया कि इसको बेचना तो इसका ऐब बयान करके बेचना। साझीदार ने उसको बेच दिया और ऐब बयान करना भूल गया और

यह भी न मालूम हुआ कि ख़रीदार कौन आदमी था। जब इमाम साहब को इसकी ख़बर मिली तो आपने अपने सारे सामान की क़ीमत ख़ैरात (दान) कर दी, और साझीदार से साझेदारी ख़त्म कर दी।

यह कोई मामूली रक़म न थी। इमाम साहब इसको रख सकते थे लेकिन मशकूक (संदिग्ध) माल लेकर अल्लाह को नाराज़ नहीं करना चाहते थे। इसलिए इतनी बड़ी रक़म पर लात मार दी कि ऐसी रक़म में से अगर सदक़ा दिया जाए तो वह भी क़बूल नहीं होता। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) फ़रमाते हैं—

> "अल्लाह पाक है और सिर्फ़ पाक माल ही को क़बूल करता है और ख़ुदा ने ईमानवालों को उसी बात का हुक्म दिया, जिसका उसने पैग़म्बरों को हुक्म दिया है। अल्लाह ने फ़रमाया, ऐ पैग़म्बरो! खाओ पाकीज़ा रोज़ी और नेक अमल करो। और ऐ ईमानवालो! जो पाक और हलाल चीज़ें हमने तुम को दी हैं उनको खाओ। फिर नबी (सल्ल०) ने एक ऐसे आदमी का ज़िक्र किया जो लम्बी दूरी तय करके पाकीज़ा मक़ाम पर आता है। गर्द-गुबार से अटा हुआ है। गर्द से सना हुआ है और अपने दोनों हाथ आसमान की तरफ़ फैलाकर कहता है कि ऐ मेरे पालनहार! और दुआएँ माँगता है जबकि उसका खाना हराम, उसका पानी हराम, उसका लिबास हराम है, हराम ही से वह पला-बढ़ा है तो ऐसे आदमी की दुआ कैसे क़बूल हो सकती है।"
>
> (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस से मालूम होता है कि ख़ुदा वही सदक़ा क़बूल करता है जो पाक और जाइज़ कमाई का हो। हराम माल अगर उसकी राह में ख़र्च किया जाए तो वह उसे क़बूल नहीं करता। दूसरी बात यह है कि ऐसे लोगों की दुआ पाक जगह पर पहुँचकर भी क़बूल नहीं होती, जो ग़लत रास्ते से दौलत कमाते हैं।

कौन नहीं जानता कि रुपये-पैसे में ऐसी कशिश है कि बच्चे-बूढ़े, औरत-मर्द सब उसकी तरफ़ खिंचते हैं और एक हक़ीक़त यह भी है कि उसके बग़ैर दुनिया का कोई काम भी नहीं चल सकता। खाना-पीना, लेन-देन और

रोज़मर्रा (दिन-प्रतिदिन) के काम उसके मुहताज हैं। किसी ने कहा भी है—

"पैसा नहीं है पास, मेला लगे उदास।।"

लेकिन ज़रूरत और काम चलने की हद तक पैसा कमाना ठीक है। इसकी इजाज़त अल्लाह भी देता है लेकिन देखने में आया है कि जब पैसा कमाने का लोभ आदमी में लग जाता है तो वह हराम-हलाल कुछ नहीं देखता, बस उसे एक ही धुन रह जाती है पैसा आए किसी भी सूरत से आए। सूद, सट्टा, स्मगलिंग, जालसाज़ी, धोखेबाज़ी ये सब लानतवाले काम हैं। लेकिन आदमी लालच का शिकार होकर सब कुछ कर गुज़रता है।

हो सकता है कि बहुत से लोग यह बात न जानते हों, मगर हम ख़ुदा के फ़ज़्ल से मुसलमान हैं, हराम-हलाल रोज़ी के फ़र्क़ को जानते हैं। मिसाल के तौर पर सूद (ब्याज) को ही देखिए, हमने अल्लाह के इस फ़रमान को पढ़ा है—

"जो लोग सूद खाते हैं उनका हाल उस आदमी जैसा होता है जिसे शैतान ने छूकर बावला कर दिया हो।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-275)

अस्ल में सूदख़ोर दौलत के पीछे दीवाना हो जाता है। उसे इसकी परवाह नहीं होती कि सूदख़ोरी से किस-किस तरह इनसानी रिश्तों, मुहब्बत, भाईचारे और हमदर्दी की जड़ें कट रही हैं और यह भी कि सामाजिक ज़िन्दगी पर कैसा तबाहकारी असर पड़ रहा है। बस उसे तो दीवानों की तरह अपनी ही धुन लगी होती है। इसी लिए अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने भी ऐसे लोगों पर लानत भेजी है, जो इस तरह के कारोबार में हिस्सा लेते हैं, अतः नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह की लानत हो सूद लेनेवाले पर और देनेवाले पर और सूदी दस्तावेज़ (खाते) लिखनेवालों पर और उसके गवाहों पर।"

अगर आदमी के दिल में ज़रा भी ख़ुदा का डर हो तो ये आयतें और हदीसें पढ़कर ही दिल दहल जाता है।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिस रात मुझे मेराज पर ले जाया गया और मैं सातवें आसमान पर पहुँचा तो मैंने ऊपर की तरफ़ देखा। वहाँ गरज, चमक और कड़क हो रही थी। मैं कुछ ऐसे लोगों के पास से गुज़रा जिनके पेट इस तरह फूले हुए थे कि जैसे घर मालूम होता था। उनमें साँप-ही-साँप थे, जो बाहर नज़र आते थे। मैंने पूछा, ऐ जिबरील! ये कौन लोग हैं? उन्होंने बताया, ये सूदख़ोर लोग हैं।" (हदीस : इब्ने-माजा)

समरा-बिन-जुन्दुब (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"रात मैंने देखा कि दो आदमी मेरे पास आए और मुझे बैतुल-मक़दिस ले गए। वहाँ से ऊपर को चले, यहाँ तक कि हम सब ख़ून की एक नदी के पास पहुँचे, जिसमें एक आदमी खड़ा था और नदी के किनारे पर एक और आदमी था जिसके हाथ में पत्थर थे। वह आदमी जो नदी में खड़ा था जब निकलने के लिए आगे बढ़ता तो किनारे खड़ा आदमी उसके चेहरे पर पत्थर मार-मारकर वहीं पहुँचा देता जहाँ से वह चला था। इस तरह लगातार हो रहा था। वह निकलने की कोशिश कर रहा था और यह निकलने नहीं देता था। जब भी किनारे पर आया इसने चेहरे पर पत्थर मारकर लौटा दिया तो मैंने जिबरील (अलैहि॰) से पूछा कि जिसे मैं दरिया (नदी) में देख रहा हूँ वह कौन है? उन्होंने बताया, यह वह आदमी है जो दुनिया में सूद खाता था।" (हदीस : तरग़ीब-बुख़ारी से)

ऊपर की दोनों हदीसों को पढ़ने से सबक़ मिलता है कि हलाल रोज़ी चाहे थोड़ी ही हो, वह उस हराम के सोने-चाँदी से अच्छी है, जिसके बोझ से कान भी फट जाएँ और आख़िरत भी ख़राब हो। इसके मुक़ाबले में मेहनत से हाथ की कमाई हुई रोज़ी से बेहतर कोई रोज़ी नहीं है। जैसा कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अपने हाथ की कमाई से बेहतर खाना किसी आदमी ने कभी नहीं खाया और अल्लाह के नबी हज़रत दाऊद (अलैहि॰) अपने हाथों की कमाई खाते थे।" (हदीस : बुख़ारी)

ख़ुद मेहनत करके जो रोज़ी कमाई जाती है, वह सबसे अच्छी होती है।

एक दूसरी हदीस में ताजिरों को हलाल रोज़ी की तरफ़ ध्यान दिलाते हुए आप (सल्ल॰) ने कहा—

"सच्चाई के साथ मामला करनेवाला और अमानतदार ताजिर क़ियामत के दिन नबियों, सिद्‌दीक़ों (सच्चों) और शहीदों के साथ होगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

तिजारत (व्यापार) ज़ाहिर में तो एक दुनियादारीवाला काम लगता है लेकिन अगर उसमें सच्चाई और ईमानदारी अपनाई जाए तो वह इबादत बन जाती है और ऐसे व्यापारी को ख़ुदा के प्रिय बन्दों, यानी नबियों, सिद्‌दीक़ों (सच्चों) और ख़ुदा के रास्ते में शहीद होनेवालों का साथ नसीब होगा।

इन सारी बातों का खुलासा यह है कि हमारी सबसे बड़ी कामयाबी अल्लाह के हुक्मों पर चलने में है। उसके हुक्मों पर चलनेवाले ख़ुशनसीब हैं और उसकी रहमत के हक़दार बनते हैं, तो हम फिर हलाल रोज़ी की तलाश क्यों न करें?

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह उस मुसलमान से मुहब्बत करता है, जो मेहनत करके रोज़ी कमाता है।" (तरग़ीब, तबरानी के हवाले से)

एक और हदीस में काब-बिन-अज़रा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) के पास से एक आदमी का गुज़र हुआ। सहाबा (रज़ि॰) ने देखा कि वह रोज़ी हासिल करने में बहुत लगन से मेहनत कर रहा है और पूरी दिलचस्पी ले रहा है तो उन्होंने नबी (सल्ल॰) से अर्ज़ किया, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर इसकी दौड़-धूप और दिलचस्पी अल्लाह की राह में होती तो कितना अच्छा होता!" इस पर आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अगर वह अपने छोटे बच्चों की परवरिश के लिए दौड़-धूप कर रहा है तो यह भी अल्लाह के रास्ते में ही शुमार होगी। और अगर बूढ़े माँ-बाप की परवरिश के लिए कोशिश कर रहा है तो यह भी ख़ुदा की राह में गिनी जाएगी। और अगर अपने ख़ुद के लिए

कोशिश कर रहा है और मक़सद यह है कि लोगों के सामने हाथ फैलाने से बचा रहे तो उसकी यह कोशिश भी ख़ुदा की राह में शुमार होगी। अलबत्ता अगर उसकी यह मेहनत ज़्यादा माल हासिल करके लोगों पर बरतरी जताने और लोगों को दिखाने के लिए है तो यह सारी मेहनत और दौड़-धूप शैतान की राह में गिनी जाएगी।"

(तरग़ीब-व-तरहीब)

आमतौर से लोगों में दीन अपनाने का मतलब यह समझा जाता है कि आदमी दुनिया से कटकर रहे, मगर अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने बताया कि मोमिन की पूरी ज़िन्दगी इबादत है और उसका हर काम अज्र व सवाबवाला है। कमाना-खाना ज़िन्दगी की ज़रूरतों में से है, ये तो करने ही पड़ेंगे मगर आदमी अपनी नीयत ठीक रखे और हलाल रोज़ी कमाए फिर उसकी तमाम दौड़-धूप इबादत बन जाएगी।

नेकी और भलाई की बातों को फैलाना

कहीं रात के वक़्त अंधेरा हो रहा हो तो आप-से-आप दिल तक़ाज़ा करता है कि यहाँ चिराग़ जला दिया जाए ताकि आने-जानेवाले अचानक आनेवाले हादसे से बच जाएँ। फ़ितरी तौर पर भी दिल अंधेरे को पसन्द नहीं करता है, ठीक इसी तरह अगर बस्ती में बद-अख़लाक़ियाँ फैल जाएँ, लोग झूठ बोलने लगें, शराब पीने लगें, जुआ खेलने लगें, चोरी करने लगें, तो सामाजिक तौर पर इसका बहुत ख़राब असर पड़ेगा। ये अख़लाक़ी ख़राबियाँ क़ौमों की ताक़त को अन्दर-ही-अन्दर खोखला कर देती हैं, इसलिए हर अच्छा आदमी यह सोचता है कि ये ख़राबियाँ दूर हों और दुनिया से बुराई किसी-न-किसी तरह ख़त्म हो, ताकि इनसान शान्ति और सुकून से ज़िन्दगी गुज़ार सकें।

फिर हम तो मुसलमान भी हैं और हमको तो अल्लाह ने उठाया ही इसी काम के लिए है कि बुराई को मिटाएँ और अच्छाई को फैलाएँ। देखिए ख़ुदा बिलकुल साफ़-साफ़ बयान करता है—

"तुम बेहतरीन उम्मत हो, जो सारे इनसानों के लिए वुजूद में लाई

गई है। तुम भलाई का हुक्म देते हो और बुराई से रोकते हो और अल्लाह पर पूरा ईमान रखते हो।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-110)

यानी तुम दुनिया में सबसे अच्छे इनसानी गरोह (समुदाय) हो, जिसकी शान यह है कि बुराई होते देखकर चुप नहीं रह सकता। अस्ल में सच्चा मुसलमान होता ही वह है, जो बुराई को मिटाने और बुराई करनेवालों की ताक़त को ख़त्म करने की कोशिश में लगा रहता है। क्योंकि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) का इरशाद है—

"तुम में से जो आदमी किसी मुनकर (बुराई) को देखे तो उसे अपने हाथ से रोके, अगर वह इसकी ताक़त न रखता हो तो अपनी ज़बान के ज़रिए उसको रोके, और अगर इसकी भी उसमें ताक़त न हो तो अपने दिल ही में उसको बुरा समझे और यह ईमान का सबसे कमज़ोर दर्जा है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मतलब यह कि जिस तरह से भी हो अल्लाह की ज़मीन को बुराइयों से पाक करने की कोशिश में लगे रहें, लोगों को भलाई की दावत देते रहें, उनको ग़लत कामों से रोकते रहें और ख़ुदा के बन्दों को ख़ुदा का पैग़ाम पहुँचाते रहें। क्योंकि मोमिन की ज़िन्दगी का यही मक़सद और दुनिया में उठाए जाने का भी यही मक़सद है।

यह बात हम सब जानते हैं कि इस दावत को लोगों तक पहुँचाने के लिए अल्लाह ने हर क़ौम में अपने नबी भेजे ताकि उन क़ौमों पर हक़ की दावत अच्छी तरह वाज़ेह (स्पष्ट) हो जाए और वे आख़िरत के दिन कोई बहाना न पेश कर सकें। इसी दावत को पूरा करने के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) सबसे आख़िर में भेजे गए और आप (सल्ल॰) के दुनिया से चले जाने के बाद यह ज़िम्मेदारी मुस्लिम उम्मत के सिर डाली गई है। अब यह फ़र्ज़ मुस्लिम उम्मत (समुदाय) के एक-एक फ़र्द (व्यक्ति) को अंजाम देना है।

सच पूछो तो इसी कोशिश का नाम जिहाद है, जो नेकी फैलाने और बुराइयों को मिटाने के लिए की जाती है। जिसके बहुत से तरीक़े हैं, जैसे किसी ख़ुदा के इनकारी को समझाया जाए, उसे सीधे रास्ते की तरफ़ बुलाया

जाए और बातिल से नफ़रत दिलाई जाए तो ज़बान के ज़रिए जिहाद होगा। किसी ग़ैर-मुस्लिम के इस्लाम के सिलसिले में आपत्तिपूर्ण लेख का जवाब लिखा जाएगा तो यह क़लम के ज़रिए जिहाद होगा या अगर कभी इस्लाम के लिए लड़ना पड़े तो यह तलवार के ज़रिए जिहाद कहलाएगा।

प्यारे नबी (सल्ल॰) को अपने ज़माने में ये सब मौक़े पेश आए। इधर से उधर तक जिहालत का तूफ़ान उमड़ा हुआ था। अरब, मिस्र, इराक़ हिन्दुस्तान में सब जगह शैतान का बोलबाला था। पत्थरों के बुत पूजना, शराब पीना, जुआ खेलना, लड़कियों को ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ देना एक आम चलन था। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने इस चीज़ को महसूस किया और अकेले ही इस माहौल को बदलने और लोगों तक हक़ की दावत पहुँचाने के लिए खड़े हो गए। शैतानी ताक़तों ने आगे बढ़कर नबी (सल्ल॰) को इस काम से रोकना चाहा लेकिन नबी (सल्ल॰) ने गुमराही और कुफ़्र के झंडाबरदारों से हर मैदान में टक्कर ली, तकलीफ़ें उठाईं, सख़्त कठिनाइयाँ और परेशानियाँ बरदाश्त कीं, मगर हक़ का झण्डा बुलन्द करके छोड़ा।

आज फिर दुनिया की बड़ी ख़राब हालत है। एक ख़ुदा के अलावा न जाने किस-किसकी इबादत की जा रही है। मज़हब और धर्म के नाम पर कितने ही उलटे-सीधे काम किए जा रहे हैं। इसके अलावा शराब पीना, सूद (ब्याज) लेना, जुआ खेलना दिन-रात का काम है।

करोड़ों मुसलमानों के सामने अल्लाह का दीन मग़लूब (पराजित) हो रहा है। पूरी ज़मीन फ़ितना-फ़साद का गढ़ बन गई है। हर तरफ़ कुफ़्र-शिर्क का दौर-दौरा है। ऐसे वक़्त में, ऐसे हालात में अगर सिर्फ़ कुछ रस्मी काम अंजाम देकर शैतान को पराजित किया जा सकता है और इन सबसे हमारी अपने मंसब की ज़िम्मेदारी अदा हो जाएगी तो यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। इस काम के लिए तो मैदान में निकलना पड़ेगा और पूरी तरह जान लड़ानी पड़ेगी और अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो अल्लाह की पकड़ में आ सकते हैं। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) बयान करते हैं कि मैंने प्यारे नबी (सल्ल॰) को इस तरह कहते सुना है कि—

''लोग जब किसी गुनाह को होते देखें और उसकी रोक-थाम की

कोशिश न करें तो अजब (हैरत) नहीं कि वे किसी सख़्त अज़ाब की पकड़ में आ जाएँ।"

मतलब यह है कि बुराई को रोकने की ज़िम्मेदारी इतनी अहम है कि अगर मुसलमान इस मामले में किसी भी प्रकार की कोताही बरतेंगे तो वे अल्लाह के ग़ज़ब (गुस्से) का शिकार हो सकते हैं। नोमान-बिन-बशीर (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"वह आदमी जो अल्लाह के हुक्मों की नाफ़रमानी करता है और ख़ुदा के हुक्मों की नाफ़रमानी होते हुए देखता है, मगर उसे टोकता नहीं, उसके साथ उदारता बरतता है। इन दोनों की मिसाल ऐसी है जैसे कि कुछ लोग जहाज़ में बैठे हैं, कुछ नीचे की मंज़िल में हैं और कुछ ऊपर की मंज़िल में। जब नीचेवालों को पानी की ज़रूरत होती है तो वे पानी के लिए ऊपर जाते हैं और ऊपरवालों को इससे तकलीफ़ होती है। आख़िरकार नीचे के लोगों ने कुल्हाड़ी ली और जहाज़ के पेंदे में सुराख़ करने लगे। अब अगर ऊपरवाले इन अहमक़ों (मुर्खों) को सुराख़ करने से न रोकेंगे तो ऐसी सूरत में जहाज़ में पानी भरने लगेगा और वह डूब जाएगा और दोनों फ़रीक़ हलाक हो जाएँगे। और अगर ऊपरवाले उनको रोक देंगे तो दोनों ही फ़रीक़ डूबने से बच जाएँगे।" (हदीस : बुख़ारी)

आज के दौर में अगर मुस्लिम उम्मत ने लोगों को अल्लाह की नाफ़रमानी से रोकने की कोशिश की तो तबाही से ख़ुद भी बच जाएगी और दुनिया को भी बचा लेगी। और अगर किसी तरह की कोताही दिखाई तो फिर दोनों की हलाकत में कोई शंका नहीं है। इसी लिए इस नाज़ुक हालत को सामने रखते हुए जब भी कहीं अच्छी बात बताने, किसी नेकी का मशवरा देने और लोगों को ग़लत काम से रोकने का मौक़ा मिले तो इससे बचना नहीं चाहिए।

इस वक़्त जो बुराई का तूफ़ान उमड़ पड़ा है उसकी रोक-थाम के लिए ज़रूरी है कि अकेले-अकेले कोशिश करने के साथ-साथ सामूहिक कोशिशें भी हों और पूरी उम्मत अपने मंसबी फ़र्ज़ को सामने रखकर नेकी और भलाई को फैलाने और बुराई को मिटाने के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगा दे।

(5)

अख़लाक़ी बुराइयाँ

इस्लाम की यह बहुत बड़ी ख़ूबी है कि उसने ज़िन्दगी की सभी बातों के बारे में बता दिया है कि कौन-सा काम अच्छा है और कौन-सा काम बुरा है। अब इनसान की सबसे बड़ी कामयाबी यह है कि वह अल्लाह को पसन्द आनेवाले काम करे और जिन कामों से उसने मना किया है उनके करने से रुक जाए और उसे यह समझना चाहिए कि उसे दुनिया में बिना नकेल का ऊँट बनाकर नहीं छोड़ा गया है बल्कि एक दिन अपने पालनहार के सामने खड़ा होना है और अपने आमाल (कर्मों) का हिसाब देना है। यह तसव्वुर इनसान को सही रास्ते पर चलने पर मजबूर करता है। जिसका नतीजा दिली सुकून की सूरत में निकलता है और समाज में वह इज़्ज़त (सम्मान) की निगाह से देखा जाता है।

इसके बरख़िलाफ़ बुराई का रास्ता अपनानेवाले हमेशा घाटे में रहते हैं, अगरचे वक़्ती तौर पर उन्हें झूठ बोलकर, किसी का हक़ मारकर, किसी की जेब काटकर या किसी की जान लेकर के कुछ रक़म हाथ लग जाती है, लेकिन आमतौर पर उनके उतरे हुए चेहरे, डरी-डरी हुई आँखें और उनके छूटते हुए पसीने खुद ही यह भेद खोल देते हैं कि उन्होंने कोई ग़लत और गुनाह का काम किया है।

यह इसलिए है कि वे मन की इच्छाओं की बन्दगी के आदी हैं और अपने-आपको ग़ैर ज़िम्मेदार समझकर ज़िन्दगी गुज़ार रहे हैं और खुश हैं। जबकि ज़ुल्म, ज़्यादती, गुस्सा-घमंड, गन्दी बातें करना और ग़ीबत-चुग़ली करना ऐसी बुराइयाँ हैं जिनको किसी भी समाज में अच्छा नहीं समझा जाता है। इसी लिए दीने-इस्लाम ने इस बात को बहुत ज़रूरी बताया है कि इनसान साफ़-सुथरी और पाकीज़ा ज़िन्दगी बसर करे और यह भी कि हसद, बदगुमानी, बदनिगाही, चोरी और इसी तरह की दूसरी बुराइयों से अपने-आप

को बचाए। क्योंकि ये बुराइयाँ आदमी को जहन्नम की तरफ़ ले जानेवाली हैं। हम यहाँ ऐसी ही बुराइयों का बयान करते हैं ताकि ख़बरदार होकर लोग उनसे अपना दामन बचा लें। हम सबसे पहले घमण्ड को लेते हैं, जो एक बहुत बड़ी बुराई है।

घमण्ड

घमण्ड के मानी हैं अल्लाह की बन्दगी के हक़ को अदा न करना और उसके बन्दों को हक़ीर और छोटा समझना। यह शैतानी रोग है। हज़रत आदम (अलैहि॰) की पैदाइश के वक़्त जब अल्लाह ने हुक्म दिया कि आदम (अलैहि॰) को सजदा करो तो सब फ़रिश्तों ने ख़ुदा के हुक्म के आगे गर्दन झुका दी, मगर शैतान घमण्ड में अकड़ गया और बोला, "मैं आदम को सजदा करूँ? जबकि मैं आग से पैदा हुआ हूँ और आदम मिट्टी से, आग मिट्टी से बरतर (श्रेष्ठ) है।" अतः उसने अपने घमण्ड में सजदा नहीं किया और आख़िरकार नतीजा यह हुआ कि—

तकब्बुर अज़ाज़ील रा ख़ार कर्द।
ब-ज़िन्दाने लानत गिरफ़्तार कर्द।।

(तकब्बुर ने अजाज़ील (शैतान) को रुसवा कर दिया।
और लानत के क़ैदख़ाने में उसे गिरफ़्तार कर दिया।)

जो आदमी घमण्ड के तरीक़े को अपनाएगा वह कभी पनप नहीं सकता। अल्लाह ऐसे शख़्स को पसन्द नहीं करता, जो थोड़ा भी ख़ुदपसन्द (अपनी बड़ाई जतानेवाला) होता है। क़ुरआन मजीद में ऐसे बहुत से बादशाहों, राजाओं की निशानदेही की गई है, जो घमण्ड की वजह से मारे गए। फ़िरऔन, नमरूद कैसे-कैसे बड़े बादशाह थे, जिनके पास दौलत की भरमार थी। चमचमाती तलवारें और फ़ौजों के बड़े-बड़े जत्थे थे, मगर जब उन्हें अपनी ताक़त के नशे में यह गुमान हो गया कि हम ख़ुद ख़ुदा हैं और लोगों की गर्दनें हमारे सामने झुकनी चाहिएँ, बस वही वक़्त उनकी गिरावट का था। एक मच्छर की क्या हैसियत है? मगर अल्लाह के हुक्म से इस नन्हें कीड़े ने नमरूद जैसे बड़े बादशाह को रुसवा ही नहीं किया बल्कि जान से

मार दिया। ऐसा ही हाल एक और राजा फ़िरऔन का भी हुआ। जब अल्लाह की पकड़ आई तो अच्छा-ख़ासा तख़्ते-ताऊस पर बैठा हुआ बादशाह नील नदी की लहरों में डूब गया। इन सच्ची कहानियों से यह सबक़ मिलता है कि घमण्ड का रवैया अच्छा नहीं होता है। ऐसा आदमी दुनिया में भी रुसवा होता है और आख़िरत में भी। अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"घमण्डी इनसान जन्नत में नहीं जाएगा और न वह जो झूठी शेख़ी बघारता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

"जो अपना कपड़ा (तहबन्द या पाजामा) वग़ैरा घमण्ड से ज़मीन पर घसीटेगा, अल्लाह क़ियामत के दिन उसकी तरफ़ (रहमत की नज़र से) नहीं देखेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

किसी के पास दौलत ज़्यादा हो जाए तो आदमी पहनने-ओढ़ने में दूसरों के मुक़ाबले में शान जताना चाहता है और कपड़ों को हद से ज़्यादा लटका लेता है, इमारतों को ऊँचा बनवाता है ताकि आसपास के लोगों से ज़रा ऊँचा माना जाए, मगर ये सब बातें अल्लाह की रहमत से दूर करनेवाली हैं। अल्लाह को आजिज़ी (विनम्रता) बहुत पसन्द है। घमण्ड के मुक़ाबले में हम लोगों को आजिज़ी (विनम्रता) अपनानी चाहिए। यह नबी (सल्ल॰) का तरीक़ा भी है।

हसद (ईर्ष्या)

हसद (ईर्ष्या) दिल का रोग है, जो दुनियादारों के दिल में दूसरों की अच्छाई, ख़ुशहाली और माल-दौलत देखकर पैदा होता है। हालाँकि ये सब चीज़ें और ये सब नेमतें ख़ुदा की मसलिहत से मिलती हैं। अल्लाह सारी दुनिया का मालिक है, सारी मख़लूक़ उसी की पैदा की हुई है जो चीज़ जिसके लिए उसकी हिकमत में बेहतर है वह अता करता है। इसको हम-आप क्या समझ सकते हैं। मगर हसद करनेवाला दूसरे व्यक्ति को ख़ुशहाल या ऐशो-आराम में देखकर जलता-किलसता है और उसकी यह ख़ाहिश रहती

है कि यह नेमत इसके पास न रहे। हज़रत ज़करीया (अलैहि॰) की तरफ़ से यह बयान किया गया है कि अल्लाह फ़रमाता है—

"हसद करनेवाला मेरा दुश्मन है। वह मेरे हुक्म और मेरी तक़्सीम (नेमतों के बटँवारे) से नाख़ुश है, जो मैंने अपने बन्दों में की है।"

यहूदियों की बिलकुल यही कैफ़ियत थी कि वे अच्छे-ख़ासे तौहीदपरस्त (एकेश्वरवादी) थे। अल्लाह ने उस क़ौम में नबी भेजे, किताबें उतारीं, प्यारे नबी (सल्ल॰) से पहले वे अपनी आसमानी किताबों की भविष्यवाणियों के मुताबिक़ नबी (सल्ल॰) के आगमन का इन्तिज़ार कर रहे थे। लेकिन जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) क़ुरैश ख़ानदान में पैदा हो गए तो वे हसद के मारे जल गए और अल्लाह की तक़्सीम से नाख़ुश हो गए कि हमारी क़ौम में वह नबी क्यों नहीं आया। ऐसे ही क़ुरैश के लोगों की कैफ़ियत हुई। अपनी सरदारी और अपनी शानो-शौकत के सामने नबी (सल्ल॰) की रिसालत और बुलन्दी को देखकर हसद की आग में जल-भुन गए और कहने लगे "तुम तो हम ही जैसे बशर (एक आदमी) हो।"

इस मौक़े पर नबी (सल्ल॰) ने कहा—

"बचाओ अपने-आपको हसद से, क्योंकि हसद नेकियों को इस तरह खा जाता है, जैसे आग सूखी लकड़ियों को खा जाती है।"

(हदीस : अबू-दाऊद)

मानो हसद की वजह से आदमी की नेकियाँ और अच्छाइयाँ बरबाद हो जाती हैं। अख़लाक़ में घुन लग जाता है और दुनिया के मामलों में भी हसद करनेवाला हमेशा रंज-ग़म का शिकार रहता है। इसी फ़िक्र में घुलता रहता है कि किस तरह फ़ुलाँ आदमी को रुसवाई और नाकामी नसीब हो। ऐसे विचारों से अपना ही नुक़सान होता है। जिस पर हसद किया जाता है उसका न तो दीन का नुक़सान न दुनिया का क्योंकि किसी आदमी की हसद की वजह से ख़ुदा, जो सबका पालनहार है, कभी अपनी दी हुई नेमत को नहीं छीनता। अगर आदमी इस तरह सोचेगा तो किसी के दिल में हसद पैदा ही न होगा और जब हसद न होगा तो वह बहुत सी बुराइयों जैसे अदावत,

कीना (द्वेष), दुश्मनी और ग़ीबत से बच जाएगा और अल्लाह की तरफ़ से साफ़ दिल होने के कारण इनाम का हक़दार ठहरेगा।

इब्ने-जरीर (रह॰) की तफ़्सीर (टीका) में है कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) के ज़माने में किसी आदमी की मौत हुई। ख़ुदा ने फ़रिश्तों को हुक्म दिया कि उसकी रूह (आत्मा) का स्वागत करें। हज़रत ईसा (अलैहि॰) ने अल्लाह से विनती की कि इसके आमालनामे से मुझको भी बाख़बर किया जाए कि उसे यह सम्मान कैसे मिला। अल्लाह ने फ़रमाया कि इसको यह मरतबा पाँच बातों की वजह से मिला है। एक इसमें कीना न था। दूसरी बात यह आदमी सख़ी और दानशील था। तीसरी इसने किसी की ग़ीबत नहीं की। चौथी बात इसमें लोभ-लालच न था। पाँचवी सबसे बड़ी बात यह कि इसने कभी किसी से हसद नहीं किया।

नबी (सल्ल॰) भी ऐसे इनसान को बेहतरीन इनसान मानते हैं जिसका दिल हसद से पाक-साफ़ हो। एक हदीस में है कि एक बार किसी ने आप (सल्ल॰) से पूछा कि सबसे अच्छा इनसान कौन है? जवाब में नबी (सल्ल॰) ने बताया, "जिसका दिल पाक-साफ़ हो और ज़बान सच्ची हो।" सहाबा (रज़ि॰) ने पूछा कि हम सच्ची ज़बानवाला तो समझते हैं मगर साफ़ दिलवाले से क्या मुराद है? प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "वह नेक और अल्लाह से डरनेवाला इनसान हो, जो कोई गुनाह न करे, किसी का कभी हक़ न मारे और उसके दिल में किसी से कीना और हसद न हो।" (हदीस : इब्ने-माजा)

देखा आपने, सबसे अच्छा और बेहतरीन इनसान बनने के लिए जहाँ यह बात ज़रूरी है कि आदमी गुनाहों से बचे वहीं यह भी लाज़िमी है कि दिल को कीना और हसद से पाक-साफ़ रखे। बेहतरीन इनसान बनना कौन नहीं चाहेगा! यक़ीनी तौर पर सभी की यह दिली आरज़ू होगी। तो बस इसका सबसे अच्छा तरीक़ा यही है कि हम बुरी बातों से बचें और अपने दिल में किसी से हसद और कीना न रखें तो दुनिया में भी सुकून मिलेगा और आख़िरत में भी भलाई और कामयाबी हासिल होगी। (इन-शाअल्लाह)

ग़ुस्सा

ग़ुस्से की मिसाल आग जैसी है। जिस तरह आग देखते ही देखते चीज़ों को जलाकर राख कर देती है, उसी तरह ग़ुस्सा भी तबाही का पेशख़ेमा है। किसी बात पर ज़रा-सी तू-तू, मैं-मैं हुई बस तेवर चढ़ गए, गाली-गलौच, मार-पीट और मुक़दमेबाज़ी तक नौबत पहुँच गई। इसी लिए इनसानियत की नस-नस जाननेवाले हम सब के रहनुमा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने ग़ुस्से की बार-बार निन्दा की है। एक हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ख़बरदार रहो! बेशक ग़ुस्सा इनसान के दिल में आग के अंगारे की तरह है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

और एक दूसरी हदीस में है—

"ग़ुस्सा ईमान को ऐसा फ़ासिद (ख़राब) कर देता है जैसे एलुवा शहद को बिगाड़ देता है।" (हदीस : बैहक़ी)

एलुवा एक कड़वी चीज़ है जो शहद तक को कड़वा कर देती है। अतः एलुवा और आग दोनों नुक़सान देनेवाली चीज़ें हैं और इसी तरह ग़ुस्सा भी अमन-चैन की ज़िन्दगी में ख़लल डालनेवाला है इससे जितना बचा जाए उतना ही अच्छा है।

समाज में रहते हुए कुछ बातें आप की मरज़ी के ख़िलाफ़ हो सकती हैं। कुछ लोग अपनी जिहालत में कुछ-से-कुछ कह जाते हैं जिन्हें सुनकर ग़ुस्सा आ सकता है। लेकिन ऐसे वक़्त अक़्लमन्दी का तक़ाज़ा यही है कि आप अपने-आपको क़ाबू में रखें। दिल चाहता है कि सामनेवाले को तहस-नहस कर दें मगर आप सब्र-ज़ब्त से काम लें तो यह दोनों पक्षों के लिए अच्छा होगा। यानी इस तरह झगड़ा मिट जाएगा और ख़ुदा के निकट आप की गिनती नेक बन्दों में होगी। जैसा कि क़ुरआन मजीद में आया है—

"जो लोग हर हालत में (अल्लाह के लिए) अपने माल ख़र्च करते हैं चाहे वे अमीर हों या ग़रीब, जो ग़ुस्से को पी जाते हैं और दूसरों की ग़लतियाँ माफ़ कर देते हैं। ऐसे नेक लोग अल्लाह को बहुत पसन्द हैं।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-134)

इस आयत पर अगर अमल किया जाए तो इससे न सिर्फ़ यह कि किसी तरह के झगड़े नहीं होंगे बल्कि बड़े-बड़े झगड़े आसानी से ख़त्म हो जाएँगे। मगर है यह बड़े दिल-गुर्दे का काम। गुस्से के वक़्त अपने-आपको क़ाबू में रखनेवाले को नबी (सल्ल०) पहलवान के नाम से याद करते हैं। हज़रत इब्ने-मसूद (रज़ि०) से रिवायत है कि नबी (सल्ल०) ने पूछा, "पहलवान किस को कहते हैं?" सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया, "पहलवान वह होता है जो किसी को कुश्ती में पछाड़ दे।" नबी (सल्ल०) ने कहा—

"नहीं, पहलवान वह होता है, जो गुस्से के वक़्त अपने-आप पर क़ाबू रखता हो।" (हदीस : बुख़ारी)

यानी अगर गुस्सा क़ाबू में है तो इसी को दिलेरी और बहादुरी कहते हैं, जो इनसान की महानता की अलामत है और अगर गुस्सा क़ाबू में न रहे तो जिहालत और जुल्म बन जाता है जिसे कोई भी पसन्द नहीं करता और अगर बरदाश्त करने की ताक़त से थोड़ा भी काम ले लिया तो ग़ैर भी अपने बन जाते हैं।

हज़रत अनस (रज़ि०) से रिवायत है कि मैं नबी (सल्ल०) के साथ जा रहा था। आप (सल्ल०) मोटे किनारेवाली चादर ओढ़े हुए थे कि एक देहाती ने आकर नबी (सल्ल०) की चादर को सख़्ती के साथ खींचा कि नबी (सल्ल०) देहाती के सीने से आ लगे और सख़्त झटके की वजह से नबी (सल्ल०) की गर्दन में चादर ने निशान डाल दिया। इसके बाद उस देहाती ने कहा, ऐ मुहम्मद! अल्लाह का जो माल तुम्हारे पास है उसमें से कुछ मेरे लिए हुक्म करो। प्यारे नबी (सल्ल०) ने उसकी तरफ़ प्यार से देखा और गुस्सा करने के बजाए हँसे और फिर देने का हुक्म दिया। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक बार एक देहाती ने मस्जिद में पेशाब कर दिया। सहाबा (रज़ि०) उस पर गुस्सा करने लगे, लेकिन नबी (सल्ल०) ने उनको रोका और जब वह आदमी पेशाब कर चुका तो नबी (सल्ल०) ने निहायत नर्मी से समझाया—

"यह मस्जिद है, यह अल्लाह का घर है, पेशाब की जगह नहीं है।"

दोनों मौक़े ऐसे थे कि नबी (सल्ल०) गुस्सा हो सकते थे लेकिन गुस्सा

नहीं किया। अस्ल में नबी (सल्ल॰) अख़लाक़ की तालीम देनेवाले थे कि मुहब्बत और नर्मी का असर गुस्से के मुक़ाबले में जल्दी होता है और देर तक रहता है, इसलिए अपने अन्दर बरदाश्त करने की आदत डालनी चाहिए।

सहाबा (रज़ि॰) ने ये बातें प्यारे नबी (सल्ल॰) से सुनीं और गाँठ बाँध ली और इन्तिहाई तल्ख़ी (कड़वाहट) के वक़्त भी भावनाओं को क़ाबू में रखा। इस सिलसिले में इस्लामी इतिहास की निम्नलिखित घटना याद रखने के क़ाबिल है—

एक जंग में हज़रत अली (रज़ि॰) ने किसी दुश्मन को पछाड़ा। जब उसे क़त्ल करने चले तो उसने अली (रज़ि॰) के चेहरे पर थूक दिया। यह बहुत ही बड़ी गुस्ताख़ी थी, लेकिन हुआ यह कि अली (रज़ि॰) ने उसको छोड़ दिया और क़त्ल करने से रुक गए। इस बात पर उस दुश्मन को बड़ा ताज्जुब हुआ और उसने हैरान होकर पूछा, "तुमने मुझे छोड़ क्यों दिया? मैंने तो यह हरकत इस ख़याल से की थी कि गुस्से में भरकर तुम मुझे जल्दी क़त्ल कर दोगे।" हज़रत अली (रज़ि॰) ने कहा—

> "पहले तो मैं तुम्हें अल्लाह के लिए क़त्ल करना चाहता था। मेरी कोई ज़ाती दुश्मनी नहीं थी लेकिन तुम्हारी इस हरकत की वजह से मुझे गुस्सा आ गया। अब अगर मैं तुम्हें क़त्ल कर देता तो यह अपनी तौहीन का बदला लेना होता। बस इसी लिए मैंने तुम्हें छोड़ दिया।"

इस बात का उस दुश्मन पर इतना अच्छा असर हुआ कि वह कलिमा पढ़कर उसी वक़्त ईमान ले आया और मुसलमान हो गया।

अगर आप भी ऐसा ही करें कि गुस्से में अपने-आपको क़ाबू में रखें और अपने विरोधी को माफ़ कर दें तो आपका दुश्मन भी आपका दोस्त बन सकता है। कभी इस नुस्ख़े को आज़माकर देखिए।

ज़ुल्म

ज़ुल्म-ज़्यादती को हर इनसान बुरा समझता है, लेकिन इसको बुरा समझने के बावजूद आदमी अपनी दौलत, अपनी ताक़त और अपने गरोह

व जत्थे के घमण्ड में दूसरों के साथ ग़लत व्यवहार करता है। लेकिन जब कोई ख़ुद उसके साथ ज़ुल्म-ज़्यादती करे तो वह चीख़ उठता है। इसी से पता चलता है कि यह कोई अच्छा काम नहीं है। ज़ालिम को ज़ुल्म करने के बाद न दुनिया में राहत मिलती है न आख़िरत में। इब्ने-हजर (रह॰) कहते हैं कि मैंने एक आदमी को देखा, जिसका हाथ मोंढ़े से कटा हुआ था। मेरे पूछने पर उसने बताया कि एक दिन एक मछुवारे के पास एक बड़ी-सी मछली देखी जो मुझे पसन्द आई। मैंने बिना क़ीमत दिए उससे वह छीन ली। वह चीख़ता-चिल्लाता रहा, मगर मैंने उसकी एक न सुनी। मैं उस मछली को लिए जा रहा था कि उस मछली ने मेरे अँगूठे में काट लिया, जिससे मुझे ज़ोर का दर्द होने लगा। मैं जल्दी-जल्दी घर पहुँचा और डॉक्टर के पास गया। उसने देखने के बाद कहा कि अँगूठा कटवा दो वरना ज़हर ऊपर तक चढ़ जाएगा। मुझे तकलीफ़ तो बहुत हुई। मगर करता क्या, अँगूठा कटवा दिया, लेकिन तकलीफ़ फिर भी कम न हुई। मैं डॉक्टर के पास गया तो उसने राय दी कि कुहनी तक हाथ काटा जाएगा। बस मैंने कटवा दिया मगर दर्द और ऊपर को फैल गया और आख़िरकार मोंढ़े तक हाथ कटवाना पड़ा। एक व्यक्ति ने मेरी यह हालत देखकर और क़िस्सा सुनकर कहा, तुमने मछलीवाले पर ज़्यादती की थी यह उसी का बदल है। अब तुम उसी के पास जाओ और उससे माफ़ी माँगो। चुनाँचे मैं उसके पास गया और सारा क़िस्सा सुनाकर माफ़ी माँगने लगा। वह मुझे देखकर बहुत मुतास्सिर (प्रभावित) हुआ। मैंने उससे पूछा कि जब मैंने तुमसे मछली छीनी थी तो तुमने बद्दुआ की थी? उसने सच बयान कर दिया कि मैंने कहा था, ऐ अल्लाह! यह आदमी मुझको कमज़ोर पाकर ज़ुल्म करके मछली ले गया है। अब इसको तू अपनी क़ुदरत दिखा दे। मैंने कहा कि वाक़ई उस ख़ुदा ने अपनी क़ुदरत मुझे दिखा दी। अब मैं तौबा करता हूँ कि कभी किसी पर ज़ुल्म-ज़्यादती नहीं करूँगा। फिर उसने भी मुझे माफ़ कर दिया।

यह क़िस्सा बहुत ही इबरतनाक (शिक्षाप्रद) है। हक़ीक़त में ज़ालिम लोगों को ऐसी ही सज़ा मिलती है। यह सिलसिला दुनिया ही में ख़त्म नहीं होता बल्कि आख़िरत तक पहुँचता है। इसी लिए हमारे प्यारे नबी (सल्ल॰)

ने मज़लूम की बद्दुआ से बचने की बहुत ताकीद फ़रमाई है। हज़रत अली (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"बचो मज़लूम की बद्दुआ से क्योंकि वह अल्लाह से अपना हक़ माँगता है और अल्लाह किसी का हक़ नहीं रोकता।"

एक दूसरी हदीस में नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"जिसने एक बालिश्त ज़मीन ज़ुल्म करके हासिल की तो क़ियामत के दिन सात ज़मीन का तौक़ उसकी गर्दन में डाला जाएगा।"

(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ज़िसने अपने भाई पर उसकी इज़्ज़त या किसी चीज़ के बारे में ज़ुल्म किया हो उसे ज़रूर चाहिए कि आज माफ़ करा ले। उस दिन (क़ियामत) से पहले कि न उसके पास दीनार (रुपया) होगा न दिरहम (पैसा) अगर उसका कोई अमल नेक़ होगा तो ज़ुल्म की मिक़दार के बराबर वह उससे ले लिया जाएगा और अगर नेकियाँ न होंगी तो मज़लूम के गुनाह लेकर उस पर लाद दिए जाएँगे।"

(हदीस : बुख़ारी)

यह बड़ा डरावा है और नबी (सल्ल॰) ने बताया है। अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) को मौत के उस पार की ज़िन्दगी का नज़ारा करा दिया था, इसलिए आप (सल्ल॰) ने अपनी उम्मत पर इस राज़ का परदा उठाकर बता दिया कि—

"हठधर्मी और छिछोरी तबियतवाले न बनो कि कहने लगो अगर लोग अच्छा बरताव करेंगे तो हम भी अच्छा बरताव करेंगे और लोग ज़ुल्म करेंगे तो हम भी ज़ुल्म करेंगे। बल्कि बड़े दिलवाले बनो कि लोग अच्छा बरताव करें तो तुम भी अच्छा बरताव करो और वे अगर ज़ुल्म करने लगें तो तुम ज़ुल्म मत करो।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

मतलब यह है कि तुम ज़ुल्म का कोई ऐसा काम न करो, जिससे ख़ुदा की पकड़ में आ जाओ।

बदगुमानी

कुछ बुराइयाँ ऐसी भी हैं जो व्यक्तिगत और सामाजिक ज़िन्दगी में बिगाड़ पैदा करती हैं और जिनकी वजह से आपस के ताल्लुक़ात (सम्बन्ध) ख़राब होते हैं। जैसे एक-दूसरे का ख़ाहमख़ाह मज़ाक़ उड़ाना, किसी के बारे में दिल में बदगुमानी को जगह देना, लोगों के हालात की खोज-कुरेद करना और पीठ-पीछे किसी की बुराई करना। ये वे काम हैं जो बजाए ख़ुद भी गुनाह हैं और समाज में भी फ़साद और बिगाड़ पैदा करते हैं। अल्लाह ने क़ुरआन में हुक्म दिया है–

> "ऐ लोगो, जो ईमान लाए हो! बहुत गुमान करने से बचो, क्योंकि कुछ गुमान गुनाह होते हैं। टोह में न पड़ो और तुम में कोई किसी की ग़ीबत न करे। क्या तुम्हारे अन्दर कोई ऐसा है जो अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाना पसन्द करेगा? देखो तुम ख़ुद इससे घिन खाते हो। अल्लाह से डरो, अल्लाह बड़ा तौबा क़बूल करनेवाला और रहम करनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-49 हुजुरात, आयत-12)

लोगों के बारे में बदगुमानी से काम न लें जबकि उनका ज़ाहिर हाल यह बता रहा हो कि वे नेक और शरीफ़ हैं। मिसाल के तौर पर कोई भला आदमी किसी महफ़िल से उठते हुए भूल में अपने जूते के बजाय किसी और का जूता पहन ले और आप यह राय क़ायम करें कि ज़रूर इसने जूता चुराने की नीयत ही से यह हरकत की है, हालाँकि वजह कुछ और है। दूसरी बात यह कही गई कि किसी का राज़ (रहस्य) न टटोलो, एक-दूसरे के ऐब न तलाश करो। एक ईमानवाले का यह काम नहीं है कि दूसरों के जिन हालात पर परदा पड़ा हुआ है वह उनकी खोज-कुरेद करे कि उनमें क्या कमज़ोरियाँ हैं। लोगों के निजी ख़तों को पढ़ना, दो आदमियों की बातें कान लगाकर सुनना, पड़ोसियों के घरों में झाँकना, दूसरों के निजी मामलों की टोह में रहना बड़ी बद-अख़लाक़ी है, जिससे तरह-तरह के फ़साद और बिगाड़ पैदा होते हैं। हज़रत

अबू-हुरैरा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"बचो गुमान से क्योंकि गुमान सबसे ज़्यादा झूठी बात है और तलाश व टोह में न रहा करो और आपस में बड़प्पन का घमण्ड न करो और एक-दूसरे पर हसद न किया करो, आपस में दुश्मनी न रखा करो, एक-दूसरे से मुँह मोड़कर न चला करो। अल्लाह के बन्दो भाई-भाई बनकर रहो।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

यह एक लम्बी हदीस का हिस्सा है, इसको ग़ौर से पढ़कर इस पर अमल किया जाए तो आज भी मुसलमानों के हालात ठीक हो सकते हैं। क्योंकि आज के समाज में बदगुमानी, दूसरों के मामलों की खोज-बीन और लोगों के भेदों को टटोलना एक आम बात हो गई है। जिसकी वजह से आपस में खींच-तान है, लड़ाई-झगड़े हैं, हालाँकि इस वक़्त प्यार-मुहब्बत की ज़रूरत थी। यह तभी हो सकता है जब अल्लाह के दिए हुए हुक्मों पर अमल किया जाए और बहुत सावधानी से ज़िन्दगी गुज़ारी जाए।

ग़ीबत (चुग़ली)

इसी तरह आज के समाज की आम कमज़ोरी 'ग़ीबत' है। ग़ीबत के मानी ये हैं कि इनसान किसी आदमी के पीठ-पीछे ऐसी बात कहे जो अगर उसको मालूम हो तो उसको नागवार गुज़रे। जैसा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने एक हदीस में फ़रमाया, "जानते हो कि ग़ीबत क्या है?" सहाबा (रज़ि०) ने अर्ज़ किया, "अल्लाह और उसका रसूल ही बेहतर जानता है।" नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अपने भाई का ज़िक्र इस तरह करना कि अगर वह उसे सुने तो नागवार गुज़रे।" अर्ज़ किया गया कि अगर वह बात मेरे भाई में पाई जाती हो जो मैं कह रहा हूँ तो इस हालत में आप का क्या ख़याल है? कहा, "अगर वह बात उसमें पाई जाती है तो तूने उसकी ग़ीबत की और अगर उसमें वह बात मौजूद न हो तो तूने उस पर बुहतान (तुहमत) लगाया।" (हदीस : मुस्लिम)

इस हदीस से मालूम हुआ कि किसी आदमी के ख़िलाफ़ उसके पीछे झूठा

आरोप लगाना बुहतान है और उसके सही ऐब बयान करना ग़ीबत है, जो ख़ुदा के निकट अपने मरे हुए भाई का गोश्त खाने के बराबर है। इसमें इशारा है कि इनसान की आबरू ख़ून और गोश्त की तरह है। और जब ग़ीबत करनेवाले ने उसको दूसरे लोगों के सामने रुसवा किया तो ग़ीबत करनेवाले ने अपने नफ़्स को अल्लाह के नज़दीक रुसवा किया, जिसका अंजाम बहुत ख़राब है।

हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन आदमी के पास उसका खुला हुआ आमालनामा (कर्मपत्र) लाया जाएगा। (वह उसको पढ़ेगा) फिर कहेगा, ऐ! मेरे पालनहार! मैंने दुनिया में फ़ुलाँ-फ़ुलाँ नेक काम किए थे, वे तो इसमें नहीं हैं। ख़ुदा जवाब देगा कि लोगों की ग़ीबत करने की वजह से वे नेकियाँ तुम्हारे आमालनामे से मिटा दी गईं।"

(हदीस : तरग़ीब व तरहीब)

इसके अलावा अल्लाह ने अपने प्यारे नबी (सल्ल॰) को ग़ीबत करनेवाले लोगों के अंजाम की भयानक तस्वीर भी मेराज की रात में दिखा दी ताकि आप ग़ीबत करनेवालों को बता दें कि क़ियामत में यह सज़ा भुगतनी पड़ेगी। प्यारे नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि—

"मेराज की रात मेरा गुज़र एक ऐसी क़ौम पर हुआ जिनके नाख़ून ताँबे के थे कि वे अपने चेहरे और गोश्त को नोच रहे थे। मैंने पूछा, जिबरील, ये कौन लोग हैं? जिबरील ने जवाब दिया, ये वे लोग हैं जो ग़ीबत करके लोगों का गोश्त खाते और उनकी इज़्ज़त को बट्टा लगाते हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

इस भयानक अंजाम को पढ़कर ही रूह काँप जानी चाहिए और तौबा में जल्दी करनी चाहिए। और यह भी कि जिसकी ग़ीबत की है उसके लिए ख़ुदा से माफ़ी की दुआ करनी चाहिए। और अगर वह आदमी मौजूद हो तो उससे माफ़ी माँगनी चाहिए। हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी

(सल्ल०) ने फ़रमाया—

"ग़ीबत के कफ़्फ़ारे का एक हिस्सा यह भी है कि जिसकी ग़ीबत की है उसके लिए ख़ुदा से माफ़ी की दुआ करे और कहे कि ऐ अल्लाह! मुझे माफ़ कर दे और उसे भी बख़्श दे।"

(हदीस : बैहक़ी)

अलबत्ता कुछ बातों में ग़ीबत करना जाइज़ भी है, जैसे मज़लूम के लिए हाकिम के सामने ज़ालिम की ग़ीबत करना जाइज़ है या फ़तवा लेने की सूरत में हक़ीक़त (सच्चाई) बयान करना या पता बताने के लिए काना, बहरा, गंजा वग़ैरा कह देना। लेकिन ऐब ज़ाहिर करने के लिए यह बात जाइज़ नहीं है।

ख़ियानत

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) कहते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने कहा—

"जिस आदमी ने तुम्हें अमानतदार होने के क़ाबिल समझकर अपनी अमानत तुम्हारे पास रखी है, उसकी अमानत वापस कर दो और जो तुम्हारे साथ ख़ियानत करे तो तुम उसके साथ ख़ियानत का मामला न करो बल्कि अपना हक़ वसूल करने के लिए दूसरे जाइज़ तरीक़े अपनाओ।" (हदीस : तिरमिज़ी)

रिया (दिखावा)

आदमी के अन्दर एक बीमारी रिया (दिखावे) की होती है। वह चाहता है कि लोग मुझे अच्छा काम करता हुआ देखें और मेरी तारीफ़ करें। अच्छा मकान, अच्छी दुकान, अच्छे कपड़े ग़रज़ हर चीज़ में यही तमन्ना रहती है कि दुनिया में मेरी शुहरत हो। इतना ही नहीं दीन के कामों में भी यह आदत अपना रंग दिखाती है। कोई देख रहा है तो नमाज़ लम्बी कर दी, रोज़ा रखकर हालत मरीज़ों जैसी बना ली कि लोग उसकी तरफ़ ध्यान दें, हालाँकि ये चीज़ें ईमान और तौहीद के ख़िलाफ़ हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने इस कैफ़ियत को छोटा शिर्क बताया है।

महमूद-बिन-लबीद (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मुझे तुम्हारे बारे में सबसे ज़्यादा ख़तरा 'छोटे शिर्क' का है।" कुछ सहाबा (रज़ि॰) ने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल! 'छोटे शिर्क' का क्या मतलब है, नबी (सल्ल॰) ने कहा, "'रिया' यानी कोई नेक काम लोगों को दिखाने के लिए किया जाए।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

मतलब यह है कि हमें हर काम दिली ख़ुलूस के साथ करना चाहिए। हर नेक काम जो ख़ुदा की ख़ुशी और रहमत पाने के लिए किया जाए, नेक है। लेकिन इसके बरख़िलाफ़ अगर लोगों के दिखावे के लिए किया जाए तो वह एक तरह का शिर्क है।

शद्दाद-बिन-औस (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) से सुना है, वे फ़रमाते थे—

"जिसने दिखावे के लिए नमाज़ पढ़ी उसने शिर्क किया, जिसने दिखावे के लिए रोज़ा रखा उसने शिर्क किया और जिसने दिखावे के लिए सदक़ा (दान) और ख़ैरात किया उसने शिर्क किया।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"आख़िरी ज़माने में कुछ ऐसे मक्कार लोग पैदा होंगे, जो दीन की आड़ में दुनिया का शिकार करेंगे। वे लोगों पर अपनी फ़क़ीरी और मिसकीनी (मुहताजी) ज़ाहिर करने और उनको मुतास्सिर करने के लिए भेड़ों की खाल का लिबास पहनेंगे, उनकी ज़बान शकर (चीनी) से ज़्यादा मीठी होगी मगर उनके सीने भेड़ियों जैसे होंगे। (उनके बारे में) अल्लाह का फ़रमान है, क्या ये लोग मेरे ढील देने से धोखा खा रहे हैं या मुझसे निडर होकर मेरे मुक़ाबले में आने का साहस कर रहे हैं। तो फिर मुझे क़सम है कि मैं उन मक्कारों पर उन्हीं में से एक ऐसा फ़ितना (बिगाड़) पैदा करूँगा, जो उनके अक़्लमन्दों को भी हैरान बनाकर छोड़ेगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

यह हाल उन लोगों का है जो पूरी-पूरी दीनी पहचान और शरीअत के मुताबिक़ चाल-ढाल के साथ ख़ुदा के बन्दों को गुमराह करते हैं।

बुरी बातों से बचना

गन्दा पानी कपड़ों को गन्दा भी करता है और नापाक भी इसी लिए हर आदमी उससे बचने की कोशिश करता है। इसी तरह दुनिया में बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन से आदमी के अख़लाक़ और किरदार पर बुरा असर पड़ता है। इसलिए ऐसी बातों से बचना आदमी का फ़र्ज़ है। इसमें बड़ी बुराइयाँ भी हैं और छोटी भी। मिसाल के तौर पर गाली देना, यह ऐसी बुराई है कि इससे ज़बान भी गन्दी होती है और इसी के साथ-साथ कभी ऐसा भी होता है कि एक गाली की वजह से झगड़ा इतना बढ़ जाता है कि क़त्ल और मुक़दमेबाज़ी तक की नौबत आ जाती है, जबकि ख़ुदा ने अपने नेक बन्दों की निशानी यह बताई है—

> "अल्लाह के नेक बन्दे वे हैं जो ज़मीन पर नर्म-चाल चलते हैं और जाहिल उनके मुँह लगें (झगड़ा करना चाहें) तो कह देते हैं, तुमको सलाम।" (क़ुरआन, सूरा-25 फ़ुरक़ान, आयत-63)

जो आदमी जिहालत और लड़ाई-झगड़े पर उतर आए और शरीफ़ आदमी से बदतमीज़ी का बरताव करने लगे तो नेक लोगों का तरीक़ा यह है कि वे गाली का जवाब गाली से और बुहतान का जवाब बुहतान से और बेहूदगी का जवाब बेहूदगी से नहीं देते बल्कि सलाम करके अलग हो जाते हैं, ताकि झगड़ा भी न बढ़े और गालियों की गन्दगी ज़्यादा न फैल पाए।

ज़िन्दगी को पाक-साफ़ रखने और ख़ुदा का नेक बन्दा बनने के लिए यह बात बहुत ज़रूरी है कि इनसान अपने-आपको ज़्यादा-से-ज़्यादा अच्छा बनाए और गाली-गलौज से दूर रहे। वैसे भी नबी (सल्ल॰) ने गाली देने को मुनाफ़िक़त (कपटाचार) का कर्म बताया है। चुनाँचे एक हदीस में आया है कि—

> "उस आदमी को मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) समझो, जो जब बोले तो झूठ बोले, वादा करे तो पूरा न करे, उसके पास अमानत रखी जाए

तो बेईमानी (ख़ियानत) करे और झगड़ा हो तो गाली-गलौच पर उतर आए।"

रास्ता चलते अगर कोई बता दे कि उधर एक बड़ा गड्ढा है तो हम बतानेवाले का एहसान मानते हैं और गड्ढे से बचकर चलते है। अगर बतानेवाले की नसीहत पर अमल नहीं करेंगे तो नुक़सान उठाएँगे। ऊपरवाली हदीस में दुनिया के सबसे महान इनसान ने बताया कि गाली देनेवाला मुनाफ़िक़ है तो हमें इससे बचना चाहिए।

इसी तरह ताश खेलना ज़ाहिर में तो यह दिलचस्प खेल है मगर सच पूछो तो इसके ज़रिए आदमी हक़ीक़ी जुआ खेलने का आदी होने के दरवाज़े तक पहुँचता है, जो बहुत ही ख़राब बात है। इसकी मिसाल साँप जैसी है कि छूने में नर्म-मुलायम और चिकना मगर मुँह में ज़हर भरा हुआ कि थोड़ी भी भूल-चूक हुई और ज़िन्दगी ख़तरे में। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इससे मना किया है क्योंकि यह एक तरह से दूसरों का माल नाहक़ और बिना मेहनत के खाना है और इसका अंजाम हमेशा अदावत व दुश्मनी और घरों की तबाही की सूरत में सामने आता है।

यह भी देखने में आया है कि जब कोई एक बार हार जाता है तो फिर इस उम्मीद में कि शायद अब मैं जीत जाऊँ बार-बार खेलेगा और आमतौर से यह उम्मीद पूरी नहीं होती और वह हारता चला जाता है और जब पास में कुछ नहीं रहता तो मकान, दुकान, बरतन यहाँ तक कि बीवी-बच्चे तक दाव पर लगा देता है और आख़िर में हार जाने पर मुक़ाबिल की दुश्मनी पर उतर आता है जो दुनियादारी के लिहाज़ से भी बुरा है और ख़ुदा भी नापसन्द करता है। घर की तबाही के अलावा यह काम आदमी को ख़ुदा के ज़िक्र और नमाज़ से भी रोकनेवाला है। चुनाँचे हज़रत अबू-मूसा से अहमद ने रिवायत की है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो शख़्स नर्द (चौसर) से खेला उसने अल्लाह और रसूल की नाफ़रमानी की।"

वैलमी (रह॰) बयान करते हैं जब तुम्हारा गुज़र ऐसे लोगों पर हो जो

पाँसे, शतरंज, जुआ और नर्द खेलते हैं तो उनको सलाम मत करो और अगर वे तुमको सलाम करें तो उनको जवाब मत दो।

शराब

एक और बुराई बहुत-से लोगों में शराब पीने की है जो परले दरजे का नीच काम है कि जब नशा चढ़ता है तो आदमी गन्दे-से-गन्दा काम कर डालता है। इब्ने-अबू-दुनिया (रह॰) का बयान है कि एक नशेबाज़ के पास से मेरा गुज़र हुआ तो देखा कि वह अपने हाथ पर पेशाब करता है और मुँह पर मलता है। यह आदमी वही हस्ती है जिसको फ़रिश्तों ने सजदा किया था। कहाँ वह बुलन्द मक़ाम और कहाँ यह पस्त अख़लाक़ी।

सच्चाई यह है कि शराब अक़्ल की दुश्मन और तमाम बुराइयों और ख़बासतों की जड़ है। इस सिलसिले में हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि हज़रत अबू-बक्र, हज़रत उमर और दूसरे सहाबा (रज़ि॰) अल्लाह के नबी (सल्ल॰) की वफ़ात के बाद मिलकर बैठे और कहने लगे कि सबसे बड़ा गुनाह कौन-सा है और इन हज़रात को इसका इल्म न था। आख़िर उन्होंने मुझको अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) के पास भेजा तो उन्होंने मुझे ख़बर दी कि सबसे बड़ा गुनाह शराब का पीना है। चुनाँचे मैंने उन हज़रात को आकर बताया। उन हज़रात ने इसको न माना और सब मिलकर हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) के मकान ही पर आए। तब हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) ने इन हज़रात से कहा कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया था कि बनी-इसराईल के बादशाहों में से एक बादशाह ने एक आदमी को गिरफ़्तार किया और उसको छूट दी कि या तो तू शराब पी या किसी का क़त्ल कर या ज़िना कर या सुअर का गोश्त खा, नहीं तो क़त्ल कर दिया जाएगा। अतः वह शराब पीने को तैयार हुआ और जब शराब पी तो उसके नशे में जो काम बादशाह ने उससे करवाना चाहा था उनमें से किसी एक से भी बाज़ न रहा।

शराब का नशा जब चढ़ता है तो अक़्ल पर ऐसा परदा पड़ता है कि आदमी को अच्छा-बुरा कुछ नहीं सूझता। इसी लिए शराब को बुराइयों की

जननी (माँ) कहा गया है और इसकी थोड़ी तादाद को भी हराम कहा गया है। चुनाँचे तिरमिज़ी ने हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से रिवायत की है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "जिस चीज़ की ज़्यादा मिक़दार नशा लाए उसकी थोड़ी मिक़दार भी हराम है।"

हज़रत तारिक़-बिन-सुवैद (रज़ि॰) ने कहा कि मैं दवा में इसका इस्तेमाल करता हूँ तो नबी (सल्ल॰) ने कहा कि "यह दवा नहीं बल्कि ख़ुद मर्ज़ है।"

एक और हदीस में नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) को वसीयत करते हुए फ़रमाया—

> "अल्लाह का किसी चीज़ को साझीदार मत समझो चाहे टुकड़े-टुकड़े कर दिए जाओ या ज़ला दिए जाओ। दूसरे, नमाज़ को जान-बूझकर न छोड़ना क्योंकि जिसने जानते-बूझते नमाज़ को छोड़ा उसकी ज़िम्मेदारी से अल्लाह बरी हो गया। तीसरे शराब कभी न पीना कि यह हर बुराई की कुन्जी है।"

ये तीनों बातें यानी अल्लाह को एक जानना, नमाज़ पढ़ना और शराब को हराम समझना इस्लामी अख़लाक़ का ज़रूरी हिस्सा हैं हालाँकि शैतान तो यही चाहता है कि आदमी ग़लत रास्तों पर चलकर शिर्क में फँसकर रहे, नमाज़ भी न पढ़े और शराब भी पीए ताकि दूसरे गन्दे काम अंजाम दे। मगर मुसलमान के लिए तो ज़रूरी है कि वह अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) के फ़रमान पर ईमान लाए और उसे सच्चा जाने इसलिए उसको हमेशा अच्छी बातें अपनानी चाहिएँ और बुरी बातों से हरदम बचना चाहिए और यह भी कि इस मामले में बहुत चौकन्ना रहना चाहिए क्योंकि नई तहज़ीब की यह सबसे ज़्यादा दिल को लुभानेवाली और इस्लामी हुक्मों को उलट देनेवाली चीज़ है जैसा कि नीचे लिखी हदीस से मालूम होता है।

हजरत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) को फ़रमाते हुए सुना है कि "सबसे पहले इस्लाम में जिस चीज़ को उलटा जाएगा जिस तरह भरे बरतन को उलट दिया जाता है, वह शराब

होगी। यानी इस्लाम में सबसे पहले अल्लाह के जिस हुक्म की नाफ़रमानी की जाएगी और उसके हुक्म को उलट दिया जाएगा वह शराब के मना होने का हुक्म होगा और पूछा गया कि ऐ अल्लाह के रसूल! ऐसा क्यों होगा, जबकि शराब के बारे में अल्लाह के हुक्म बयान हो चुके हैं और सब जानते-समझते हैं? नबी (सल्ल॰) ने कहा कि इस तरह कि शराब का दूसरा नाम रख लेंगे और उसको हलाल क़रार देंगे। (हदीस : दारमी, मिशकात)

इसके अलावा नबी (सल्ल॰) ने नशा लानेवाली सभी चीज़ों से मना किया है। हज़रत उम्मे-सलमा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि नबी (सल्ल॰) ने सभी ऐसी चीजों से मना किया है जो नशा लाती हों। (यानी अक़्ल में ख़राबी या होशो-हवास को दरहम-बरहम करती हों।)

इसमें अफ़यून (अफ़ीम) भी आ गई और कुछ हुक़्क़े भी आ गए। भंग, धतूरा और आजकल की स्मैक वग़ैरा भी आ गईं जिनसे दिमाग़ दिल और हाथ-पाँव बेकार हो जाते हैं।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"चार आदमी ऐसे हैं जिनके बारे में अल्लाह ने अपने ऊपर लाज़िम कर लिया है कि उनको जन्नत में न भेजेगा और न उनको जन्नत की नेमतों से कुछ देगा—

(1) शराब का आदी
(2) सूदख़ोर (बयाज खानेवाला)
(3) यतीम का माल खानेवाला
(4) माँ-बाप का नाफ़रमान। (हदीस : हाकिम)

हज़रत अबू-उमामा (रज़ि॰) कहते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"इस उम्मत (समुदाय) के कुछ लोग रात-दिन शराब पीने, खेल-तमाशों में गुज़ारेंगे तो एक दिन सुबह को ये लोग बन्दर और सुअर की सूरतों में बदल दिए जाएँगे। वे ज़मीन में भी धँसाए जाएँगे और उन पर आसमान से पत्थर भी बरसेंगे। लोग कहेंगे कि आज की रात फ़ुलाँ मुहल्ला धंस गया। उन पर लूत (अलैहि॰) की क़ौम की तरह

पत्थर बरसेंगे और आद की क़ौम की तरह आँधियों से तबाह किए जाएँगे। इसकी वजह यह होगी कि ये लोग शराब पिएँगे, सूद खाएँगे, रेशमी लिबास पहनेंगे, गानेवालियाँ उनके पास जमा होंगी और ये लोग रिश्ते-नाते तोड़नेवाले होंगे। (हदीस : मुसनद अहमद)

समझदार के लिए इशारा काफ़ी है और एक मुसलमान के लिए नबी (सल्ल॰) का फ़रमान पत्थर की लकीर से कम नहीं, बस अपनी सोच को बेदार (जागरूक) करने की ज़रूरत है।

शरीअत में मना की गई चीज़ें

औरत मर्द की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। जिस तरह हर अच्छी चीज़ को देखकर दिल उधर खिंच जाता है उसी तरह औरत को देखकर दिल मचलता है और आजकल तो पानी सिर से ही गुज़र गया है। औरत घर से निकलकर बाज़ारों, दुकानों, सिनेमाघरों, चौराहों, बस अड्डों और टी॰ वी॰ के पर्दों पर खुल्लम-खुल्ला नज़र आती है जो बरबादी का पेशख़ेमा (पूर्व-संकेत) है। हज़रत इब्ने-मसऊद (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"औरत छिपाने की चीज़ है, जब बेपरदा निकलती है तो शैतान उसको ताकता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत हसन बसरी (रह॰) कहते हैं कि मुझे यह हदीस पहुँची है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

" ख़ुदा उस आदमी पर लानत करे, जो किसी अजनबी और ग़ैर महरम औरत को देखे और उस औरत पर भी लानत है जो अपने को दिखाने पर राज़ी हो।" (हदीस : मिशकात)

हज़रत अबू-मूसा (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो आँखें (बुरी नज़र या वासना से) किसी अजनबी मर्द या औरत को देखती हैं वे ज़िनाकार (व्यभिचारी) हैं और औरत ख़ुशबू लगाकर जब किसी (मर्दों की) मजलिस पर गुज़रती है तो वह भी वैसी ही है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

औरत-मर्द के लिए सावधानी ज़रूरी है

जिस तरह औरत के लिए यह एहतियात करना ज़रूरी है कि ग़ैर-मर्द के कान में उसकी आवाज़ न पड़े, उसी तरह मर्द के लिए भी एहतियात करना वाजिब है कि सुरीली आवाज़ से ग़ैर-औरतों के सामने गीत-संगीत और शेरो-शायरी को पढ़ने से अपने-आपको बचाए। क्योंकि औरतें नर्म दिल होती हैं, उनकी ख़राबी का अन्देशा है। इसी लिए बहुत ज़्यादा सावधानी बरतने की ज़रूरत है।

बदनिगाही

हज़रत जरीर-बिन-अब्दुल्लाह कहते हैं कि मैंने नबी (सल्ल०) से किसी ग़ैर और अजनबी औरत पर अचानक निगाह पड़ जाने के बारे में पूछा तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुम अपनी निगाह फेर लो।" (हदीस : मुस्लिम)

हज़रत बुरैदा (रज़ि०) कहते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) से कहा—

"ऐ अली! किसी अजनबी औरत पर अचानक नज़र पड़ जाए तो नज़र फेर लो, दूसरी निगाह उस पर न डालो। पहली निगाह तो तुम्हारी है और दूसरी निगाह तुम्हारी नहीं (बल्कि शैतान की है)।"

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) ने बयान किया कि नबी (सल्ल०) ने इरशाद फ़रमाया—

"ऐ कुरैश के जवानो! तुम लोग ज़िना (व्यभिचार) कभी न करना। जो लोग पाक-साफ़ और पाकदामनी के साथ जवानी गुज़ारेंगे वे जन्नत के हक़दार होंगे।" (हदीस : तरग़ीब-तरहीब)

लिबास

औरतों के लिए ज़रूरी है कि वे ऐसा कपड़ा पहनें कि पूरा जिस्म ढक जाए। बदन खोलना सही नहीं है। औरतों के लिए मर्दाना लिबास पहनना भी ठीक नहीं। नबी (सल्ल०) ने ऐसी औरतों पर लानत की है जो मर्दाना

शक्लें बनाती हैं। (शरहुत्तनवीर)

प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है–

"बहुत-सी औरतें जो दुनिया में कपड़े पहननेवाली हैं क़ियामत के दिन नंगी समझी जाएँगी।" (हदीस : बुख़ारी)

यानी ऐसा लिबास पहनना, जिसमें बदन झलकता हो। ऐसी औरतें क़ियामत में नंगी उठाई जाएँगी।

औरतों के साथ तनहाई

ग़ैर-औरतों के साथ तनहाई में रहने-मिलने से बचने की ताकीद नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाई है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"क़सम है उस हस्ती की जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है कि जब भी कोई मर्द किसी ग़ैर-औरत के साथ तनहाई में होता है तो उनके बीच तीसरा शैतान आ घुसता है (और अपना जाल फैलाने लगता है)। आदमी का गारे में अटे हुए और बदबूदार सड़ी हुई कीचड़ में लिथड़े हुए सुअर से टकरा जाना गवारा है इसके मुक़ाबले कि उसका जिस्म किसी ऐसी औरत से टकरा जाए, जो उसके लिए हलाल न हो।" (हदीस : तबरानी)

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) कहते हैं कि अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"ऐसी औरतों के पास मत जाओ जिनके महरम उनके साथ न हों। क्योंकि शैतान आदमी के अन्दर ख़ून की तरह चक्कर लगाता रहता है।" (हदीस : मुस्लिम, तिरमिज़ी)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) के पास कुछ लोग बैठे हुए थे, नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों से फ़रमाया–

"तुम लोग मुझे छः बातों की ज़मानत दो तो मैं तुम्हें जन्नत की ज़मानत दूँगा!" लोगों ने पूछा कि वे छः बातें क्या हैं; ऐ ख़ुदा के रसूल? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया वे ये हैं, "नमाज़ पढ़ना, ज़कात

देना, अमानत में ख़ियानत न करना, शर्मगाह (गुप्ताँग), पेट और ज़बान की हिफ़ाज़त और निगरानी करना।"

(हदीस : तरग़ीब-तिबरानी)

हज़रत अली (रज़ि॰) कहते हैं कि बेहयाई की बातें करनेवाला और उनको फैलानेवाला दोनों गुनाह में बराबर हैं। (हदीस : अल-अदबुल-मुफ़रद)

खेल-तमाशे से परहेज़

खेल-तमाशे आदमी की तबियत में फ़ुतूर पैदा करते हैं, उनसे वक़्त तो ख़राब होता ही है और साथ-साथ बुराइयाँ भी धीरे-धीरे मिज़ाज में जड़ पकड़ती जाती हैं। ऐसा आदमी नेक कामों से दूर हटता जाता है और लायानी बातों को अपना लेता है। ख़ुदा के नबी (सल्ल॰) ने ऐसे बेहूदा कामों की सख़्त मज़म्मत (निन्दा) की है जैसे शरतरंज, ताश वग़ैरा।

हज़रत इब्ने-शहाब कहते हैं कि अबू-मूसा अशअरी (रज़ि॰) ने बयान किया है—

"शतरंज वही आदमी खेलता है जो ख़ताकार और गुनहगार है।"

(हदीस : मिशकात)

"शतरंज बेकार, ग़लत और झूठा खेल है और अल्लाह झूठ को पसन्द नहीं करता।" (हदीस : मिशकात)

नाच-गाने की महफ़िलों में शिरकत

ये शैतानी काम हैं, जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरह का बिगाड़ पैदा होता है इसलिए इनसे हमेशा बचना चाहिए। मुसनद इमाम अहमद में है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह तआला ने मुझे तमाम संसार के लिए रहमत बनाकर भेजा है और मुझे हुक्म दिया है कि साज़ और बाजों को मिटा दूँ।"

हज़रत नाफ़े (रज़ि॰) का बयान है कि जब हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर (रज़ि॰) ने साज़ (संगीत) सुना तो अपने कानों में उँगलियाँ दे लीं और कहा कि मैं प्यारे नबी (सल्ल॰) के साथ ऐसे ही एक मौक़े पर कहीं जा रहा था।

नबी (सल्ल॰) ने जब गाने-बजाने की आवाज़ सुनी तो अपनी उँगलियाँ अपने कानों में दे लीं। (हदीस : अबू-दाऊद, इब्ने-माजा)

मुसनद इब्ने-अबू-दुनिया में रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "इस उम्मत की एक क़ौम आख़िरी ज़माने में बन्दर और सुअर बन जाएगी।" सहाबा (रज़ि॰) ने अर्ज़ किया, ऐ अल्लाह के रसूल! क्या वे लोग 'ला इला-ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' के माननेवाले न होंगे? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्यों नहीं, बल्कि नमाज़, रोज़ा और हज सब कुछ करते होंगे।" किसी ने अर्ज़ किया, इस सज़ा की वजह? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि उन्होंने बाजा, सितार वग़ैरा और गानेवालियों का धंधा और काम अपनाया होगा।"

बैहक़ी ने शाबी से रिवायत की है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"ख़ुदा लानत करे गानेवालियों पर और उस पर जिसके लिए गाया जाए।"

तस्वीर बनाना

अल्लाह के सिवा किसी और की इबादत (पूजा) तस्वीर बनाने से शुरू होती है। आदमी पहले ख़याली तस्वीर बनाता है फिर फ़र्ज़ी बुत तैयार करता है और आख़िर में अपने हाथ से बनाई हुई मूर्ति की पूजा शुरू कर देता है। इसी लिए इस्लाम में तस्वीर बनाने को मना किया गया है।

हज़रत क़तादा (रज़ि॰) कहते हैं कि इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) से तस्वीरों के बारे में पूछा गया, हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि॰) ने जवाब में कहा, मैंने प्यारे नबी (सल्ल॰) को यह फ़रमाते सुना है—

"जो आदमी दुनिया में तस्वीर बनाएगा उसे क़ियामत के दिन उसमें रूह (जान) डालने के लिए कहा जाएगा, मगर वह उसमें रूह न डाल सकेगा।" (हदीस : बुख़ारी)

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जिस घर में तस्वीर या कुत्ता हो उसमें (रहमत के) फ़रिश्ते दाख़िल नहीं होते।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि नबी (सल्ल॰) किसी जंग के लिए तशरीफ़ ले गए थे, मैंने (आप के पीछे) एक चित्रकारी की हुई चादर लेकर दरवाज़े पर डाल दी। जब आप (सल्ल॰) वापस आए और आप (सल्ल॰) ने वह चादर पड़ी हुई देखी तो उसको खींचकर फाड़ डाला और कहा–

"अल्लाह ने हमको यह हुक्म नहीं दिया कि हम पत्थर, और गारे को लिबास पहनाया करें।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

क़ब्रपरस्ती का रोग

किताबवाले यानी यहूदियों और ईसाइयों में क़ब्रपरस्ती हमेशा से होती चली आई थी, जो शिर्क की एक शक्ल है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़माने में भी यह रिवाज आम था। इसी वजह से नबी (सल्ल॰) ने अपनी मुबारक ज़बान से किताबवालों के इन शिर्कवाले कामों पर लानत की और अपनी उम्मत को उनसे बचने के लिए हिदायत करते हुए फ़रमाया–

"अल्लाह ने लानत की है क़ब्र की ज़ियारत करनेवाली औरतों पर और कब्र पर मस्जिद बनाने और चिराग़ रौशन करनेवालों पर।"
(हदीस : नसई, इब्ने-माजा)

एक दूसरी हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"ख़बरदार रहो, तुम से पहले के लोग अपने नबियों की क़ब्रों को सजदे की जगह बना लेते थे। मैं तुम्हें इस हरकत से मना करता हूँ।" (हदीस : मुस्लिम)

इसका दूसरा मतलब यह है कि तुम मेरी क़ब्र के साथ ऐसा कोई काम मत करना कि तुम पर भी ख़ुदा की लानत हो।

इन हदीसों की रौशनी में क़ब्रों पर गुम्बद बनाना, धूम-धाम से उर्स करना, क़ब्रों पर चिराग़ जलाना, चादरें चढ़ाना, क़ब्रों पर मेले लगाना सब कुछ मना है। इसके अलावा ताज़िया बनाना, अलम (झंडा) उठाना, उन पर चढ़ावे चढ़ाना, नज़र व नियाज़ गुज़ारना। शादी में सेहरा बाँधना, नुजूमियों (ज्योतिषियों) से ग़ैब की ख़बरें पूछना, किसी को मुश्किलकुशा (संकट-मोचक)

हाजतरवा (ज़रूरतें पूरी करनेवाला) समझना, फ़ाल निकलवाना ये सब काम इन्तिहाई ग़लत हैं। क़ुरआन मजीद और हदीस में इन बातों का सुबूत कहीं नहीं मिलता। और न नबी (सल्ल॰) और सहाबा (रज़ि॰) के ज़माने में मुसलमानों ने इन बातों पर अमल किया है, और न ही इसके सुबूत मिलते हैं। ये सब बाद के ज़माने की पैदावार हैं। जो बिदअत है (यानी दीन में नई बात पैदा करना) और हर बिदअत गुमराही है और हर गुमराही जहन्नम में ले जानेवाली है। हमें इन सब से बचना चाहिए।

बात-बात पर क़सम खाना

कुछ लोगों को ख़ामख़ाह क़सम खाने की आदत होती है, लेकिन यह आदत अच्छी नहीं है। बार-बार क़सम खाने से एक तो आदमी का भरोसा उठ जाता है और इस तरह क़सम खाने से अल्लाह के नाम की बेहुरमती भी होती है, इसलिए जहाँ तक हो सके इससे बचना चाहिए। याद रखो अल्लाह को किसी झूठी बात पर गवाह बनाना कुफ़्र तक पहुँचा देता है।

कुछ लोग अपनी बात में ज़ोर पैदा करने के लिए या तकिया-कलाम (आदत) के तौर पर क़सम खाते रहते हैं। जैसे, अल्लाह की क़सम, रसूल की क़सम, काबा की क़सम, अपनी आँख की क़सम, अपनी जवानी की क़सम, अपने बाप की क़सम, अपने बच्चे की क़सम, अपने प्यारों की क़सम, तुम्हारे सिर की क़सम, तुम्हारी जान की क़सम, तुम्हारी क़सम, अपनी क़सम, ये सब बेकार की क़समें हैं। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "तुम न अपने बापों की क़सम खाओ और न अपनी माँ की। ख़ुदा की क़सम भी तुम सिर्फ़ इस सूरत में खाओ जबकि तुम सच्चे हो।"

इससे मालूम हुआ कि ख़ुदा के सिवा किसी और की क़सम खाना बहुत बड़ा गुनाह है। यह शिर्क कहलाता है इससे बचना चाहिए। हाँ, जिसने किसी सही मौक़े पर अल्लाह की क़सम खाई और इस तरह कहा कि अल्लाह की क़सम, ख़ुदा की क़सम, ख़ुदा के इज़्ज़त व जलाल की क़सम तो क़सम होगी। अब इसके ख़िलाफ़ करना ठीक नहीं। अगर ख़ुदा नाम नहीं लिया सिर्फ़ इतना कह दिया कि ख़ुदा को गवाह बनाके कहता हूँ या ख़ुदा को हाज़िर-

नाज़िर जानकर कहता हूँ, तब भी क़सम हो गई, अगर यों कहा कि ऐसा करूँ तो मरते वक़्त ईमान नसीब न हो तो ऐसी सूरत में भी क़सम हो गई। इसके ख़िलाफ़ करने में कफ़्फ़ारा देना पड़ेगा। लेकिन यह बात भी सख़्ती से ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई आदमी क़सम खाने को हँसी-खेल न बनाए कि पहले क़सम खा ली और फिर कफ़्फ़ारा दे दिया यह गुनाह की बात है। कफ़्फ़ारा देने से कोई फ़ायदा न होगा, बल्कि वह आदमी दस्तूर के मुताबिक़ गुनाहगार ही रहेगा।

औरतों को आमतौर से देखा गया है कि वे जान-बूझकर झूठी क़सम खा लेती हैं हालाँकि झूठी क़सम अगर जान-बूझकर खाई तो उसके गुनाह की कोई हद नहीं। इसके अलावा अकसर औरतें यह भी कहा करती हैं कि अगर फ़ुलाँ काम करूँ तो हाथ टूटें, दीदे (आँखें) फूटें, कोढ़ी हो जाऊँ, ख़ुदा की मार पड़े, क़ियामत के दिन ख़ुदा और रसूल के सामने पीले मुँह होऊँ—ये सब बातें बहुत ही ग़लत हैं। अगर कभी मुँह से निकल जाएँ तो बस दिन-रात अल्लाह से तौबा करके अपना गुनाह माफ़ कराएँ।

अगर कोई ऐसी क़सम खाए जिससे किसी का हक़ मारा जाता हो और क़सम खाने के बाद उसको एहसास हो या किसी और के ध्यान दिलाने पर बात वाज़ेह हो जाए तो चाहिए कि उस क़सम को तोड़ दे और कफ़्फ़ारा अदा करे। अगर किसी ने ऐसी बात पर क़सम खाई जो अभी नहीं हुई बल्कि आइन्दा होगी जैसे कोई कहे कि ख़ुदा की क़सम आज मैं क़ुरआन मजीद पढ़ूँगा, अब पढ़ना वाजिब हो गया। न पढ़ेगा तो कफ़्फ़ारा देना पड़ेगा या किसी ने क़सम खाई कि आज मैं फ़ुलाँ चीज़ न खाऊँगा, फिर भूले से वह चीज़ खा ली और क़सम याद न रही तो ऐसी सूरत में भी कफ़्फ़ारा देना चाहिए।

यह भी याद रखिए कि अगर कोई आदमी किसी बीती हुई घटना या किए हुए काम के बारे में झूठा हलफ़िया बयान (क़सम खाकर बयान) देता है तो यह और भी बड़ा गुनाह है और यह तो झूठ बात पर अल्लाह को गवाह बनाना हुआ। यह मुनाफ़िक़ों का काम है, ईमानवालों का नहीं। इससे छुटकारा कफ़्फ़ारा देने से भी नहीं मिलेगा।

किसी दूसरे आदमी के क़सम दिलाने से क़सम नहीं होती, जैसे किसी ने कहा कि तुम को ख़ुदा की क़सम यह काम ज़रूर करो; तो यह क़सम नहीं हुई। दुरुस्त है क़सम खाकर उसके साथ 'इन-शाअल्लाह' का लफ़्ज़ भी कह दिया जाए। मिसाल के तौर पर ख़ुदा की क़सम यह काम 'इन-शाअल्लाह' करूँगा, तो यह क़सम नहीं हुई। हाँ अगर कोई ऐसी क़सम खा ले जिस से मक़सद नेकी या ख़ुदा के बन्दों की भलाई के कामों से रुक जाना हो तो जब भी इस संगीन ग़लती का एहसास हो जाए तो अपनी क़सम को तोड़ दे जिसे पूरा करना गुनाह है और इससे नजात पाने के लिए कफ़्फ़ारा अदा करे।

क़सम तोड़ देने का कफ़्फ़ारा यह है कि दस मुहताजों को दो वक़्त का खाना दे या खिलाए या कच्चा अनाज दे। हर आदमी को अंग्रेज़ी तौल से दो सेर गेहूँ देना चाहिए। अगर जौ दे तो इसका दो गुना दे या दस फ़क़ीरों को इतना कपड़ा पहना दे जिससे बदन का ज़्यादा हिस्सा ढक जाए जैसे चादर या लम्बा कुरता दे दिया तो कफ़्फ़ारा अदा हो गया। लेकिन कपड़ा बहुत पुराना नहीं होना चाहिए। अगर हर आदमी को एक लुंगी या एक पाजामा दिया तो कफ़्फ़ारा अदा नहीं हुआ, अगर लुँगी के साथ कुर्ता भी दिया है तो कफ़्फ़ारा अदा हो जाएगा। अगर कोई ऐसा ग़रीब है कि न खाना खिला सकता है और न कपड़ा दे सकता है तो ऐसा आदमी लगातार तीन रोज़े रखे, अलग-अलग रोज़े रखने से कफ़्फ़ारा अदा नहीं होता।

(6)

रोज़मर्रा की बातें

नीयत साफ़ रखना

कहते हैं कि एक आदमी ने निहायत शौक़ और बड़ी मेहनत से रुपया पैसा लगाकर मकान बनवाया। मकान बन चुका तो उसने अपने पीर-मुरशिद (धर्म-गुरु) को ख़बर की कि अगर हज़रत इस मकान में अपने क़दम रख दें तो यह मेरे लिए बरकत और बड़ी ख़ुशी की बात होगी। पीर साहब ने मुरीद की दरख़ास्त मंज़ूर कर ली और मकान देखने के लिए तशरीफ़ लाए। मकान देखकर बहुत ख़ुश हुए और बड़ी तारीफ़ की। आख़िर में मुरीद से पूछा, "मियाँ यह रौशनदान किस लिए बनवाया है?" मुरीद ने निहायत अदब से अर्ज़ किया, "हज़रत इस रौशनदान के ज़रिए कमरे में रौशनी आएगी।" हज़रत शेख़ ने फ़रमाया, "वह तो मैं भी जानता हूँ, मगर देखो अस्ल मक़सद तो रौशनदान का यह होना चाहिए कि इसके ज़रिए अज़ान की आवाज़ मकान के अन्दर तक आए। रौशनी तो अपने-आप आती है। अगर तेरी नीयत रौशनदान के बनवाने में अज़ान की आवाज़ आने की होती तो तुझे इस नीयत का सवाब भी मिलता।" नबी (सल्ल॰) ने "आमाल का दारोमदार नीयत पर है" फ़रमाकर यही बात समझाई है कि आदमी के अमल का दारोमदार उसकी अच्छी नीयत पर है और एक दूसरे मौक़े पर यह भी फ़रमाया—

"लोग क़ियामत के दिन अपनी नीयतों पर उठाए जाएँगे।"

(हदीस : बुख़ारी, इब्ने-माजा)

इन दोनों हदीसों का मतलब यह है कि आख़िरत में इनसान का ज़ाहिर नहीं देखा जाएगा, बल्कि सिर्फ़ यह देखा जाएगा कि उसने जो भी नेक काम किए हैं वे किस नीयत से किए हैं? उसके दिल का इरादा क्या था और काम

के पीछे क्या भावना थी? उसी लिहाज़ से उसके अमल को क़बूल या रद्द किया जाएगा। क़ुरआन मजीद में अल्लाह का फ़रमान है—

"न उनके गोश्त अल्लाह को पहुँचते हैं न ख़ून, मगर उसे तुम्हारा तक़्वा (ईश-भय) पहुँचता है।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-37)

इस आयत की व्याख्या करते हुए मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०) कहते हैं कि "जाहिलियत के ज़माने में अरबवाले जिस तरह बुतों के नाम से की गई क़ुरबानी का गोश्त बुतों पर ले जाकर चढ़ाते थे, उसी तरह अल्लाह के नाम की क़ुरबानी का गोश्त काबा के सामने लाकर रखते और ख़ून उसकी दीवारों पर लिथेड़ते थे। उनके नज़दीक यह क़ुरबानी मानो इसलिए की जाती थी कि अल्लाह के यहाँ उसका ख़ून और गोश्त पेश किया जाए। इस जिहालत का परदा चाक करते हुए फ़रमाया कि अस्ल चीज़ जो अल्लाह के यहाँ पेश होती है वह जानवरों का ख़ून और गोश्त नहीं, बल्कि तुम्हारा तक़्वा है। अगर तुम नेमत का शुक्र अदा करने के जज़्बे के साथ, ख़ालिस नीयत से सिर्फ़ अल्लाह के लिए क़ुरबानी करोगे तो इस जज़्बे, नीयत और ख़ुलूस का नज़राना उसके पास पहुँच जाएगा, वरना ख़ून और गोश्त यहीं धरा रह जाएगा। यही बात है जो हदीस में नबी (सल्ल०) से नक़ल की गई है। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"अल्लाह तुम्हारी सूरतें और तुम्हारे रंग नहीं देखता बल्कि तुम्हारे दिल और आमाल देखता है।"

(तफ़हीमुल-क़ुरआन भाग-3, सूरा-22 हज, हाशिया-73)

इसके साफ़ मानी ये हैं कि किसी भी नेक काम पर उस वक़्त तक अज्र या सवाब नहीं मिलता जब तक कि वह सही नीयत के साथ न किया जाए और सिर्फ़ ख़ुदा ही के लिए न किया जाए। मिसाल के तौर पर नमाज़ जैसी बड़ी इबादत का सवाब भी उसी वक़्त मिलेगा जब वह अल्लाह की ख़ुशनूदी के लिए पढ़ी जाएगी और अगर इसके पीछे दिखावे का जज़्बा काम कर रहा हो कि लोग मुझे नमाज़ी समझें तो सारा सवाब ग़ारत हो जाएगा बल्कि उल्टा गुनाह होगा।

नमाज़ ही नहीं जिहाद और हिजरत तक के लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने यही वईद (चेतावनी) सुनाई है। हज़रत उमर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"आमाल का दारोमदार नीयत पर है। और आदमी को वही मिलेगा जिसकी उसने नीयत की होगी। मिसाल के तौर पर जिसने अल्लाह और रसूल के लिए हिजरत की होगी, उसकी हिजरत हक़ीक़ी होगी और जिसकी हिजरत दुनिया हासिल करने या किसी औरत से शादी करने के लिए होगी तो उसकी हिजरत दुनिया के लिए या औरत के लिए शुमार होगी।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हिजरत बहुत कठिन काम है। अपने आराम, सुख, चैन को छोड़कर घर से निकलना होता है। उन जगहों और ज़मीन को छोड़ना होता है जिन से बरसों का प्यार और लगाव होता है और ज़ाहिर में नेकी का काम भी है लेकिन ऐसा नेकी का काम है कि अगर ख़ुदा की ख़ुशनूदी के लिए नहीं है बल्कि किसी दुनियावी ग़रज़ के लिए किया गया है तो आख़िरत के बाज़ार में उसकी कोई क़ीमत नहीं है। ऐसा अमल ख़ुदा की तराज़ू में खोटा सिक्का ठहरेगा। इसके बरख़िलाफ़ मामूली से मामूली काम अगर अच्छी नीयत से किया जाए, तो वह इबादत बन जाता है और उस पर सवाब मिलता है, चाहे वह रास्ते में से ईंट ही हटाना हो कि किसी आते-जाते आदमी को चोट न लग जाए। थोड़े अमल के सिलसिले में हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) जब मुझे यमन के इलाक़े में भेज रहे थे तो मैंने अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! मुझे कुछ नसीहत कीजिए! नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अपनी नीयत को हर खोट से पाक रखो, जो अमल करो सिर्फ़ ख़ुदा को राज़ी करने के लिए करो। थोड़ा अमल भी तुम्हारी नजात के लिए काफ़ी है।" (हदीस : तरग़ीब व तरहीब)

हम सब जानते हैं कि खाना जाइज़ चीज़ों में से है, लेकिन अगर कोई खाना इस नीयत से खाए कि उसके ज़रिए मेरे जिस्म में ताक़त आएगी। इस

क़ुव्वत को अल्लाह का दीन फैलाने में लगाऊँगा तो यह खाना अज्र व सवाब बन जाएगा। या मिसाल के तौर पर रोज़ी कमाना, जिसको हर आदमी सुख-चैन और आराम के लिए कमाता है। इसमें अगर वह यह नीयत कर ले कि ख़ुदा ने मेरे नफ़्स और मेरे घरवालों के हक़ फ़र्ज़ किए हैं यह कमाई इसलिए कर रहा हूँ कि वे सब हक़ ठीक-ठीक अदा कर सकूँ तो हलाल रोज़ी की यह सारी भाग-दौड़ इबादत और सवाब बन जाएगी।

या कोई आदमी डाक्टरी की तालीम हासिल कर रहा है और वह नीयत कर ले कि मैं इसके ज़रिए लोगों की ख़िदमत करूँगा, या इंजीनियरिंग का स्टूडेन्ट है तो यह नीयत कर ले कि मैं इस फ़न से मुल्क और क़ौम की ख़िदमत करूँगा तो इस नीयत की वजह से उसको सवाब ज़रूर मिलेगा।

कोई आदमी बाज़ार से पँखा ख़रीदकर लाता है और उसकी नीयत यह है कि इसे मस्जिद में लगाऊँगा ताकि नमाज़ियों को आराम मिले तो यक़ीनी तौर पर यह सवाब का काम है लेकिन इसके बरख़िलाफ़ इस पंखे को किसी जुएख़ाने या शराबख़ाने में लगा दिया तो आपका खुद ही फ़ैसला होगा कि यह ग़लत काम है। यहाँ तक कि दीन का इल्म जिसकी बेइन्तिहा अहमियत है अगर दुनिया कमाने-बनाने और दौलत समेटने के लिए हासिल किया है तो वह भी आख़िरत में वबाले-जान बन जाएगा। हज़रत इब्ने-अब्बास (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "वह आदमी जिसको ख़ुदा ने अपने दीन का इल्म अता किया और उसने अल्लाह के बन्दों को दीन का इल्म सिखाने में कंजूसी से काम लिया और सिखाया तो उस पर माल वसूल किया और अपनी दुनिया कमाई तो ऐसे आदमी को क़ियामत के दिन आग की लगाम पहनाई जाएगी।" (हदीस : तरग़ीब व तरहीब)

हालाँकि वह दीन का आलिम है, मगर ख़ुदा की नज़र में उसकी कोई हैसियत नहीं है क्योंकि इल्म हासिल करने का मक़सद सिर्फ़ दुनिया कमाना था, इसलिए अज़मतवाले अल्लाह की नाराज़गी हिस्से में आई।

इसलिए हमें हर दम चौकन्ना और होशियार रहना चाहिए, अपने कामों

में ख़ुलूस पैदा करना चाहिए और नीयत को हर खोट से पाक रखना चाहिए क्योंकि जैसा कि हम जानते हैं कि आख़िरत में आदमी का ज़ाहिर नहीं देखा जाएगा बल्कि यह देखा जाएगा कि उसने जो नेक काम किए हैं, किस नीयत से किए हैं। नीयत की सूरत में अल्लाह ने ईमानवालों को एक ऐसा क़ीमती नुस्ख़ा अता किया है कि जिसके ज़रिए थोड़ी-सी मेहनत से अपने आमालनामे (कर्म-फल) में बेइन्तिहा नेकियाँ बढ़ाई जा सकती हैं। इस दावे के सुबूत के लिए नीचे लिखी हदीस का पढ़ना फ़ायदे से ख़ाली नहीं। हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो शख़्स अपने बिस्तर पर इस नीयत और इस इरादे के साथ लेटा कि वह तहज्जुद (रात की ख़ास नमाज़) के लिए उठेगा लेकिन गहरी नींद आ गई और न उठ सका यहाँ तक कि फ़ज्र का वक़्त हो गया तो ऐसे आदमी के आमालनामे में उस रात की तहज्जुद की नमाज़ लिख दी जाएगी और यह नींद उसके लिए उसके 'रब' की तरफ़ से इनाम के तौर पर शुमार होगी।"

(हदीस : नसाई, इब्ने-माजा)

नेकी कमाने के इस गुर को आप अच्छी तरह समझ लीजिए कि हर काम सही नीयत से किया जाए। ऐसा करने से दुनिया में भी आराम मिलेगा और आख़िरत में भी राहत नसीब होगी। (इन-शाअल्लाह)

एक और हदीस में हज़रत अनस (रज़ि॰) बयान करते हैं कि तबूक की मुहिम से फ़ारिग़ होकर हम लोग नबी (सल्ल॰) के साथ वापस हुए तो (सफ़र के दौरान) आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"कुछ लोग हमारे पीछे मदीना में रह गए हैं, लेकिन इस सफ़र में अस्ल में हमारे साथ रहे। हम लोग जिस घाटी में चले और जो वादी हमने तय की हर जगह वे हमारे साथ रहे, उनको उज़्र (मजबूरी) ने रोक दिया था।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस हदीस से भी यह मालूम हुआ कि अगर किसी ने कोई नेक अमल करने की नीयत की और किसी जाइज़ वजह से वह न कर सका तो अल्लाह

के यहाँ आख़िरत में उस अमल के अज्र व सवाब से वह महरूम नहीं रहेगा।

आदमी के सामने कुछ मजबूरियाँ आ सकती हैं, ख़ुद बीमार हो जाए, माँ-बाप बूढ़े हों, अचानक कोई हादसा ऐसा पेश आ जाए, जिसकी वजह से आदमी घर से बाहर क़दम निकालने से मजबूर होता है। मदीना के लोगों के सामने कुछ जाइज़ वजहें थीं जिनकी वजह से इसके बावजूद कि लड़ाई में शामिल होने के लिए दिल तड़प रहा था मगर वे मैदाने-जंग में न पहुँच सके, लेकिन अल्लाह और उसका रसूल उनके ख़ुलूस को समझ रहे थे और उनकी सच्ची भावनाएँ भी साफ़ थीं, इसलिए अल्लाह के सच्चे नबी (सल्ल॰) ने ये बातें कहीं।

रोज़ी कमाना ज़िन्दगी के ज़रूरी कामों में से एक है। अब वह चाहे तिजारत की शक्ल में हो या मुलाज़मत (नौकरी) की शक्ल में या खेती वग़ैरा की। लेकिन इसमें भी अगर आदमी यह नीयत कर ले कि अल्लाह ने जो मेरे ज़िम्मे मेरे नफ़्स और मेरे घरवालों के हक़ सौंपे हैं वह कमाई उसके लिए कर रहा हूँ तो हलाल रोज़ी कमाने की यह सारी दौड़-धूप इबादत और सवाब बन जाएगी। या घर का काम इस नीयत से किया जाए कि प्यारे नबी (सल्ल॰) जब घर में तशरीफ़ लाते तो घर के कामों में अपने घरवालों का हाथ बँटाते थे तो इस नीयत का सवाब मिलेगा। अपने बच्चों से इस नीयत से प्यार करे कि नबी (सल्ल॰) की सुन्नत (तरीक़ा) है, कि नबी (सल्ल॰) बच्चों से मुहब्बत करते थे तो इस नीयत की पैरवी का सवाब ज़रूर मिलेगा। ऐसे ही घरवालों के साथ हँसी-मज़ाक़ की बातें करना, मेहमानों का आदर-सत्कार इस ग़रज़ से करना कि यह नबी (सल्ल॰) की सुन्नत है और नबी (सल्ल॰) ने सब के साथ अच्छे सुलूक का हुक्म दिया है। घर में कोई पौधा या पेड़ इस नीयत से लगाया जाए कि इससे जानवरों और इनसानों को आराम मिलेगा, तो जब तक वह पेड़ क़ायम रहेगा सवाब मिलता रहेगा।

इस्लाम में नीयत को अमल का दारोमदार क़रार दिया गया है। वह इनसान के ज़ाहिरी अमल से ज़्यादा उसकी दिली कैफ़ियत को नज़र के सामने रखता है। जैसा कि नबी (सल्ल॰) की एक हदीस से साफ स्पष्ट है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह तुम्हारी सूरतों और तुम्हारे मालों को नहीं देखता बल्कि वह तुम्हारे दिलों और तुम्हारे आमाल (कामों) को देखता है।"

(हदीस : मुस्लिम)

एक और जगह फ़रमाया—

"जो कोई सच्चे दिल से शहीद होने की तमन्ना रखता है अल्लाह उसे शहीदों के दर्जे तक पहुँचा देता है चाहे उसे बिस्तर पर मौत क्यों न आ जाए।" (हदीस : मुस्लिम)

शहीद होना एक बहुत बुलन्द दर्जा है, जिसकी तमन्ना में आदमी तलवारों के नीचे अपनी बहादुरी के जौहर दिखाता है लेकिन कभी-कभी यह तमन्ना पूरी नहीं होती और अपने बिस्तर पर ही ख़ुदा को प्यारा हो जाता है तो भी उसको शहादत का सवाब मिलेगा क्योंकि उसकी नीयत अल्लाह की राह में अपने-आपको क़ुरबान करने की थी। मतलब यह है कि अगर आदमी की नीयत सही हो तो ख़ुदा के यहाँ कंजूसी से काम नहीं लिया जाता बल्कि बढ़ा-चढ़ाकर इनाम दिया जाता है। यहाँ तक कि जो काम आदमी आदत के तौर पर करता है इस्लाम उसे भी इबादत क़रार देता है। मिसाल के तौर पर आदमी भलाई की नीयत से जाइज़ तरीक़े से अपनी शहवत (काम-वासना) को पूरी करता है या औरत जाइज़ बनाव-सिंगार इसलिए करे कि शौहर ख़ुश हो तो यह भी सवाब का कारण है। घड़ी इस नीयत से रखी जाए कि इसके ज़रिए नमाज़ों का वक़्त मालूम होगा। वक़्त की क़द्रो-क़ीमत पहचानकर उसे अच्छे कामों में लगा दूँगा तो अल्लाह के यहाँ अज्र मिलेगा। घोड़ा पालना ज़ाहिर में एक जाइज़ काम है लेकिन अगर इनसान का मक़सद अल्लाह के कलिमे को बुलन्द करना हो तो इस काम को भी नबी (सल्ल॰) अज्र और सवाब का सबब क़रार देते हैं। संक्षेप में यह कि अगर आदमी की नीयत अच्छी होगी तो उसे अल्लाह की मदद भी हासिल होगी और सवाब भी मिलेगा। इसके बरख़िलाफ़ नीयत में इख़लास न हो तो जिहाद और हिजरत जैसे बड़े-बड़े काम भी बेकार बनकर रह जाएँगे। मिसाल के तौर पर कोई आदमी सूद (ब्याज) इसलिए ले कि इससे मस्जिद बनवाऊँगा तो उसकी इस अच्छी नीयत से यह हराम माल हलाल नहीं हो सकेगा। क्योंकि पहले

तो यह माल हराम तरीक़े से आया है दूसरे इसके पीछे दिखावे का जज़्बा काम कर रहा है। बड़े से बड़ा नेकी का काम अगर इसलिए किया गया है कि दूसरे उससे ख़ुश हों या लोगों की निगाह में उसकी इज़्ज़त बढ़े तो याद रखिए अल्लाह की नज़र में उसकी कोई क़ीमत नहीं है। बल्कि दिखावे और नामो-नुमूद का जज़्बा और ज़्यादा तबाह करनेवाला साबित होगा। आदमी बहुत से काम इसी जज़्बे के मातहत करता है, जो उसको शिर्क के ग़ार में धकेल देता है। नबी (सल्ल॰) ने जिसकी सख़्त मज़म्मत की है।

हज़रत उमर (रज़ि॰) से रिवायत है कि वे एक दिन घर से निकलकर मस्जिदे-नबवी में पहुँचे, वहाँ देखा कि मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) की क़ब्र के पास बैठे रो रहे हैं। पूछा, "क्यों रो रहे हो?" मुआज़-बिन-जबल (रज़ि॰) ने कहा, एक बात मैंने नबी (सल्ल॰) से सुनी थी, वही बात मुझे रुला रही है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया था कि "थोड़ी-सी रिया (दिखावा) भी शिर्क है।" यानी शिर्क सिर्फ़ यही नहीं है कि आदमी किसी बुत के सामने सजदा करे और चढ़ावे चढ़ाए बल्कि अगर कोई आदमी बड़े से बड़ा अमल दूसरों को ख़ुश करने, दिखाने, और उनकी नज़र में नेक और पाकबाज़ बनने की नीयत से करता है तो हक़ीक़त में वह शिर्क करता है। क्योंकि ख़ुश करने का हक़ ख़ुदा का है और उसने यह हक़ ग़ैर-ख़ुदा को दे दिया।

संक्षेप में यह कि इस्लाम नीयत को अमल की कसौटी क़रार देता है। वह इनसान के ज़ाहिरी अमल से ज़्यादा उसकी दिली कैफ़ियत को पेशे-नज़र रखता है। इनसान एक काम किस जज़्बे से कर रहा है अस्ल में उसके नज़दीक देखने की यह चीज़ होती है। नमाज़ तक के मामले में ख़ुदा ने यहाँ तक फ़रमा दिया है—

> "नेकी यह नहीं है कि तुम (नमाज़ में) अपना मुँह पूरब या पश्चिम की तरफ़ करो।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-177)

यह आयत एक आईना है, जिसके ज़रिए हम अपने खोट को दूर कर सकते हैं।

तहारत और पाकीज़गी

सफ़ाई व तहारत कहने को तो मामूली चीज़ हैं मगर सच पूछो तो अपने अन्दर बड़े असरात रखती है। इसके ज़रिए इनसान को सेहत जैसी नेमत तो मिलती ही है और साथ ही ज़िन्दगी को ज़ाहिरी और अन्दरूनी तौर से सँवारने और बनाने के लिए भी इसकी सख़्त ज़रूरत है। इसी लिए हमारे प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है—

"तहारत व पाकीज़गी आधा ईमान है।"

इसका मतलब यह है कि इनसान को अन्दरूनी पाकीज़गी जो उसने तौहीद का कलिमा पढ़कर हासिल की है, उसके साथ-साथ ज़ाहिरी पाकीज़गी भी अपनानी चाहिए। ताकि मन के साथ तन भी पाक-साफ़ रहे और जिससे ईमान मुकम्मल हो सके।

बात यह है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) के आने से पहले कम ही लोगों की निगाह बदन की पाकी की तरफ़ जाती थी। राजा, राहिब (दुनिया को तर्क कर देनेवाला ईसाई पादरी), साधू, संन्यासी जो भी था वह तहारत (पाकी) के मतलब से बिलकुल अनजान था। पेशाब करके खड़े हो गए, पत्तों से पेशाब- पाख़ाना (मल-मूत्र) साफ़ कर लिया और बस देखने-दिखाने के लिए बदन पर पानी बहा लिया। बल्कि कुछ क़ौमों में तो जिस्म को पानी लगाना ही ख़ुदापरस्ती और दीनदारी के ख़िलाफ़ समझा जाता था। जिस्म की सफ़ाई को रूह की गिरावट समझा जाता था। कहते हैं कि ईसाइयों में सेन्ट अब्राहम ने ईसाई बनने के बाद पचास साल तक न मुँह धोया न ही हाथ-पाँव। एक और मशहूर राहिबा कुँवारी स्लोया ने उम्रभर अपनी उँगलियों के सिवा जिस्म के किसी हिस्से को पानी नहीं लगने दिया।

(तफ़हीमुल-क़ुरआन, जिल्द सोम, पेज-328)

लेकिन यह इस्लाम ही था जिसने आज से चौदह सौ बरस पहले पाकी सफ़ाई की एक बुलन्द कसौटी पेश की। पेशाब-पाख़ाना तो नापाकतर चीज़ें हैं ही उसने तो शराब, ख़ून और कीचड़ की छींटों तक से बचने की ताकीद की है। बाल कटवाने, जनाबत (हमबिस्तरी) का ग़ुस्ल और इस्तिंजा करने को

लाज़िम क़रार दिया है।

अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने खुद अमली तौर पर तहारत की तालीम दी। नबी (सल्ल०) हमेशा पाक-साफ़ रहते थे और साफ़-सुथरे कपड़े पहनते थे। दूसरों को भी अगर मैले और गन्दे कपड़े पहने देखते तो सफ़ाई की तरफ़ ध्यान दिलाते।

- प्यारे नबी (सल्ल०) सफ़ेद लिबास (पोशाक) पहना करते थे। नबी (सल्ल०) ने खुद भी सफ़ेद लिबास पसन्द किया और उम्मत के मर्दों को भी इसी के पहनने की तरग़ीब दी और हर जुमे को नहाने की ताकीद फ़रमाई। (हदीस : बुख़ारी)
- एक बार जुमे के दिन नबी (सल्ल०) मस्जिद में तशरीफ़ लाए, मस्जिद छोटी थी। काम-काज करनेवाले लोग मैले कपड़े पहने ही चले आए थे, गर्मी का मौसम था। पसीने की बदबू तमाम मस्जिद में फैल गई। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "लोग अगर नहाकर आते तो अच्छा था।" उसी दिन से जुमा के दिन नहाना शरीअत का हुक्म क़रार दिया गया। (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) का बयान है कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"हर मुसलमान पर खुदा का यह हक़ है कि हर हफ़्ते ग़ुस्ल करे, सिर और बदन को धोए।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी (रज़ि०) कहते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"जो आदमी जुमा के दिन ग़ुस्ल करे और अगर उसके पास खुशबू हो तो खुशबू लगाए और अच्छा कपड़ा पहने। फिर घर से निकलकर मस्जिद में आए फिर जहाँ जगह मिले नमाज़ पढ़े और किसी को तकलीफ़ न पहुँचाए। यहाँ तक कि नमाज़ पूरी हो जाए तो उसका यह अमल इस जुमे से अगले जुमे तक (सग़ीरा गुनाहों का) कफ़्फ़ारा हो जाता है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

ग़ुस्ल के फ़र्ज़

ग़रारा करना, नाक के निचले हिस्से तक पानी पहुँचाना और सारे बदन पर इस तरह पानी बहाना कि बाल बराबर भी जगह सूखी न रह जाए।

बस यह समझिए कि इस्लाम जिस्मानी सफ़ाई पर बहुत ज़ोर देता है। सफ़ाई और तहारत न सिर्फ़ दुनियावी ज़िन्दगी में सेहत बरक़रार रखने, तहज़ीब व इनसानियत के फूल खिलाने के लिए ही नहीं, बल्कि आख़िरत की ज़िन्दगी में रूह की नजात के लिए भी ज़रूरी है। पेशाब-पाख़ाना और नींद के बाद नमाज़ पढ़ने के लिए वुज़ू करना लाज़मी है। जुमा और दोनों ईदों की नमाज़ से पहले और हमबिस्तरी, एहतिलाम, हैज़, बच्चे की पैदाइश और मैइत को नहलाने के बाद ग़ुस्ल करना वाजिब है।

हज़रत आइशा (रज़ि॰) बयान करती हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया : दस चीज़ें हैं जो फ़ितरी कामों में से हैं—

(1) मूँछों को कटवाना (2) दाढ़ी छोड़ना (3) मिस्वाक करना (4) नाक में पानी लेकर सफ़ाई करना (5) नाख़ून काटना (6) जोड़ों को एहतिमाम से धोना (7) बग़ल के बाल साफ़ करना (8) नाफ़ के नीचे के बालों की सफ़ाई करना (9) पानी से इस्तिंजा करना (10) कुल्ली करना।

पेशाब-पाख़ाना करने के बाद पानी से गन्दगी साफ़ करने को इस्तिंजा कहते हैं। हज़रत ज़ैद-बिन-अरक़म (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

पाख़ाना करने की जगहों में ख़बीस मख़लूक़ शैतान वग़ैरा रहते हैं, इसलिए तुम में से जब कोई पाख़ाने में जाए तो चाहिए कि पहले यह दुआ करे।

اَللّٰهُمَّ اِنِّيْ اَعُوْذُ بِكَ مِنَ الْخُبُثِ وَالْخَبَائِثِ

अल्लाहुम-म इन्नी अऊज़ु बि-क मिनल ख़ुब्सि वल ख़बाइस।

"ऐ अल्लाह मैं तेरी पनाह चाहता हूँ ख़बीस जिन्नों से, मर्द हों या औरत।" (हदीस : मुस्लिम)

- पाख़ाने में नंगे सिर न जाए।
- पाख़ाने में जाते हुए पहले बायाँ पाँव अन्दर ले जाए और मसनून दुआ पढ़े।
- जब तक अन्दर रहे कोई बात न करे।
- खड़े होकर कभी पेशाब न करे । पेशाब की छींटों से बहुत बचना चाहिए क्योंकि क़ब्र का अज़ाब पेशाब की छींटों से परहेज़ न करने से होता है।
(हदीस : तिरमिज़ी)
- ग़ुस्ल ख़ाने में पेशाब कभी नहीं करना चाहिए।
- क़िबला की तरफ़ मुँह या पीठ करके न बैठे।
- जब बाहर आए तो यह दुआ पढ़े।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِیْ اَذْهَبَ عَنِّی الْاَ ذٰی وَعَافَانِیْ.

अल-हमदुलिल्लाहिल्लज़ी अज़्-ह-ब अ़न्निल अज़ा व आ़फ़ानी।

"सब तारीफ़ें अल्लाह ही के लिए हैं जिसने मुझ से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ को दूर कर दिया और चैन दिया।"

वुज़ू

ग़ुस्ल से पहले वुज़ू करना सुन्नत है। नमाज़ से पहले भी वुज़ू के ज़रिए पाकीज़गी हासिल करना वाजिब है। हज़रत जाबिर (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जन्नत की कुंजी नमाज़ है और नमाज़ की चाबी तहारत और सफ़ाई है।" (हदीस : मुसनद अहमद)

एक दूसरी जगह फ़रमाया—

"बग़ैर पाकीज़गी या वुज़ू के नमाज़ नहीं होती और न हराम माल की ख़ैरात क़बूल होती है।" (हदीस : मुस्लिम)

वुज़ू से पाकी तो हासिल होती ही है इसके अलावा बन्दा अल्लाह के सामने ख़ड़े होने के क़ाबिल हो जाता है और दिल में नूरानियत पैदा हो जाती

है, जो आख़िरत में काम देगी।

इस सिलसिले में हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"मेरे उम्मती क़ियामत के दिन बुलाए जाएँगे तो वुज़ू के असर से उनके चेहरे और हाथ-पाँव रौशन और चमकते होंगे। तो फिर तुम में से जो कोई आदमी अपनी रौशनी और नूरानियत बढ़ा सके और मुकम्मल कर सके तो वह ऐसा ज़रूर करे।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

वुज़ू में चार फ़र्ज़ हैं अगर एक भी छूट जाए तो वुज़ू न होगा। और वुज़ू न होगा तो नमाज़ भी न होगी। वुज़ू के फ़र्ज़ ये हैं—

(1) पेशानी के बालों से ठोड़ी तक और एक कान की लौ से दूसरे कान की लौ तक तमाम चेहरा धोना (2) कुहनियों तक हाथ धोना (3) चौथाई सिर का मसह करना (4) टख़नों तक पैर धोना। धोने में बाल बराबर भी जगह सूखी न रहे।

दाँतों की सफ़ाई

साफ़-सफ़ाई के सिलसिले में दाँतों की सफ़ाई का भी प्यारे नबी (सल्ल॰) को बेहद ख़याल था। चुनाँचे हज़रत आइशा (रज़ि॰) कहती हैं कि "नबी (सल्ल॰) घर में दाख़िल होने के बाद सबसे पहला काम जो करते वह मिस्वाक करना होता था और वुज़ू और नमाज़ के वक़्त भी मिस्वाक करते थे।"

(हदीस : बुख़ारी)

- मिस्वाक करना मुँह की पाकीज़गी का ज़रिआ है।
- नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "जब भी जिबरील (अलैहि॰) आए तो उन्होंने मुझे मिस्वाक करने के लिए ज़रूर कहा। ख़तरा है कि (जिबरील अलैहि॰ की बार-बार ताकीद और वसीयत पर) मैं अपने मुँह के अगले हिस्से को मिस्वाक करते-करते घिस न डालूँ।"
- सीरत की किताबों में मिलता है कि जब नबी (सल्ल॰) क़ुरआन पढ़ते या सोने का इरादा फ़रमाते तो मिस्वाक करते और नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि वह नमाज़ जिसके लिए मिस्वाक की जाए उस नमाज़ के मुक़ाबले

में जो बिना मिस्वाक किए पढ़ी जाए सत्तर गुना फ़ज़ीलत रखती है।

(हदीस : शुअबुल-ईमान)

- एक हदीस में नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया, "अगर मुझे उम्मत की तकलीफ़ का ख़याल न होता तो मैं उनको हर वुज़ू में मिस्वाक करने का हुक्म देता।" (हदीस : अबू-दाऊद)
- एक बार नबी (सल्ल॰) के पास कुछ लोग आए जिनके दाँत मैले हो रहे थे, आपने देखा तो फ़रमाया, "मिस्वाक किया करो।"

इन वक़्तों में मिस्वाक करने का ख़ास ख़याल रखा जाए

● सोने के बाद उठने पर ● वुज़ू करते वक़्त ● क़ुरआन मजीद और हदीस पढ़ने से पहले ● ख़ुदा का ज़िक्र करने से पहले ● ख़ाना-काबा या हतीम में दाख़िल होने के वक़्त ● मियाँ-बीवी के हमबिस्तर होने से पहले ● किसी भी मजलिस में जाने से पहले ● सहरी खाने के बाद ● सोने से पहले ● अस्ल में मिस्वाक मुँह को साफ़ तो करती ही है इसके इलावा परवरदिगार की ख़ुशनूदी और रिज़ा का सबब भी है।

इसके अलावा बालों में कंघा करना और उनको दुरुस्त करना भी बदन की सफ़ाई में शामिल है। इसी लिए बालों में कंघा करने और तेल लगाने का भी नबी (सल्ल॰) बड़ा एहतिमाम करते थे। दाढ़ी के बढ़े हुए बालों को सही करने, नाख़ून कटवाने का ख़ास ख़याल रखते और अगर किसी को इसके ख़िलाफ़ करते हुए देखते तो मन में घिन महसूस करते।

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि हमारे प्यारे नबी (सल्ल॰) एक बार मुलाक़ात की ग़रज़ से तशरीफ़ लाए तो आप (सल्ल॰) ने एक आदमी को देखा जो गर्द-ग़ुबार से अटा हुआ था और बाल बिखरे हुए थे, आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क्या इस आदमी के पास कोई कंघा नहीं है, जिससे यह अपने बालों को ठीक कर लेता? और नबी (सल्ल॰) ने एक दूसरे आदमी को देखा जिसने मैले कपड़े पहन रखे थे। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क्या इस आदमी के पास वह चीज़ (साबुन वग़ैरा) नहीं है, जिससे

यह अपने कपड़े धो लेता।" (हदीस : मिशकात)

मतलब यह है कि अपने-आपको मैला कुचैला न रखो बल्कि साफ़-सफ़ाई से रहो। सफ़ाई-सुथराई से रहना ईमानवालों की ख़ूबियों में से है और सिर्फ़ बदन की सफ़ाई ही नहीं बल्कि रहने-सहने की जगहों और मस्जिद-मकतब सब जगह इसका ख़याल और एहतिमाम होना चाहिए।

प्यारे नबी (सल्ल॰) की सीरत में आया है कि अगर कोई आदमी मस्जिद की दीवार पर या सामने फ़र्श पर थूक देता तो नबी (सल्ल॰) सख़्त नापसन्द करते। एक बार नबी (सल्ल॰) ने दीवार पर थूक देखा तो गुस्से से आप (सल्ल॰) का मुबारक चेहरा लाल हो गया। एक अनसारी औरत ने उस धब्बे को मिटाया और उस जगह खुशबू लगा दी तो नबी (सल्ल॰) बहुत ख़ुश हुए।

ख़ुशअख़लाक़ी और नर्मी की आदत

इनसान जब दुनिया में आता है तो उसको दूसरे लोगों से कुछ-न-कुछ वास्ता ज़रूर पड़ता है। इसी आपसी रब्त-ज़ब्त की वजह से उस पर कुछ ज़िम्मेदारियाँ और हुक़ूक़ लागू होते हैं। ज़िम्मेदारियों और हक़ों को अच्छे ढंग से निभाने को अख़लाक़ कहते हैं। यह लफ़्ज़ अपने अन्दर बड़ा फैलाव रखता है। मुहब्बत, शफ़क़त, आदर, एहसान, माफ़ी, रहम और आसपास के लोगों के साथ अच्छा सुलूक ग़रज़ कि ज़िन्दगी की तमाम ख़ूबियाँ इसमें शामिल हैं। दुनिया की सुख-शान्ति, ख़ुशी और ख़ुशहाली का दारोमदार भी इन्हीं ख़ूबियों पर है। इसी लिए प्यारे नबी (सल्ल॰) ने इन ख़ूबियों को अपने अन्दर पैदा करने पर बहुत ज़ोर दिया है। हज़रत मुआज़ (रज़ि॰) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल॰) ने मुझे यमन भेजते वक़्त जो आख़िरी वसीयत घोड़े पर चढ़ते वक़्त फ़रमाई थी, वह यह थी—

"लोगों के साथ अच्छे अख़लाक़ से पेश आना।"

(हदीस : मुवत्ता इमाम मालिक)

लोगों के साथ अच्छा बरताव करना अल्लाह के नज़दीक बहुत पसन्दीदा अमल है, जिसको अपनाकर बन्दा ख़ुदा का महबूब बन जाता है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"अल्लाह के बन्दों में सबसे ज़्यादा प्यारा वह है, जिसके अख़लाक़ सबसे अच्छे हैं।" (हदीस : बुख़ारी)

ख़ुद नबी (सल्ल०) की ज़िन्दगी अख़लाक़ का सबसे बड़ा नमूना थी। नबी (सल्ल०) घर में होते या मस्जिद में, बाज़ार में होते या जंग के मैदान में, दोस्त से बात करते या दुश्मन से, अपने से मिलते या पराए से ग़रज़ हर जगह, हर काम और हर बात में प्यारे नबी (सल्ल०) का अख़लाक़ नुमायाँ नज़र आता। जो भी नबी (सल्ल०) से मिलता अख़लाक़ की ठंडक ज़रूर महसूस करता।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि नबी (सल्ल०) न तो बेहयाई की कोई बात ज़बान से निकालते और न बेहयाई के काम करते और न दूसरों को बुरा-भला कहते। नबी (सल्ल०) फ़रमाते थे कि "तुम में बेहतर लोग वे हैं जो अख़लाक़ के अच्छे हैं।"

हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि मैं दस साल तक नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में रहा। लेकिन इस अर्से में नबी (सल्ल०) ने बेज़ारी या नफ़रत की बात कभी नहीं कही।

हालाँकि हम अपने समाज में देखते हैं कि लोग ज़रा-ज़रा सी बातों पर तेवर बदल लेते हैं। ग़ुस्से की हालत में अपने मुख़ालिफ़ को गालियाँ तक दे देते हैं और कभी-कभी हाथापाई होने की नौबत आ जाती है, जबकि हमारे प्यारे नबी (सल्ल०) ने नर्म ख़ूई (बरताव में नरमी), नर्ममिज़ाजी और ख़ुश अख़लाक़ी की तालीम दी है। आज के दौर में जिसकी और भी ज़्यादा ज़रूरत है ताकि अपने ग़ैर-मुस्लिमों पर हमारे अख़लाक़ का असर पड़े।

नर्म ख़ूई का मतलब यह है कि आदमी ग़ुस्से में बेक़ाबू होकर सख़्त रवैया न अपनाए। नर्मी, माक़ूलियत और दिलजोई को अपनाना ख़ुदा के यहाँ पसन्दीदा अमल है। प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है—

"ख़ुदा नर्मी का मामला करनेवाला है और नर्मी को पसन्द करता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

प्यारे नबी (सल्ल०) के साथ ताइफ़ में क्या कुछ नहीं हुआ! आप (सल्ल०)

को इतने पत्थर मारे गए कि आप (सल्ल॰) लहूलुहान होकर बेहोश हो गए। लेकिन इसके बावजूद नबी (सल्ल॰) ने होश में आने के बाद सख़्ती के बजाय प्यार और दिलसोज़ी का पहलू अपनाया और क़रीबी लोगों के यह कहने पर कि इनके लिए बद्दुआः फ़रमाएँ आप (सल्ल॰) ने कहा—

"नहीं, ये लोग मुझे जानते नहीं; मैं इनके लिए बद्दुआ क्यों करूँ?" (हदीस : मुस्लिम)

आमतौर से दुकानदारों में लड़ने-झगड़ने की आदत बहुत होती है। ख़रीदने-बेचने का मामला पड़ता है तो इसमें क़ीमत वग़ैरा के मामले में ज़िद और बहस का अन्दाज़ पैदा हो जाता है हालाँकि यह तरीक़ा ठीक नहीं होता। ख़ामख़ाह की बहस से ग्राहक हाथ से निकल जाता है। ख़ुशअख़लाक़ी और नर्मी वे जौहर हैं जिन से दिल जीता जाता है। इसलिए इस ख़ूबी को आपनाना चाहिए और दुनिया ही नहीं बल्कि यह जौहर आख़िरत में भी खरा सिक्का साबित होगा। हज़रत अबू-दरदा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"क़ियामत के दिन मोमिन बन्दे की तराज़ू में कोई चीज़ ख़ुशअख़लाक़ी से ज़्यादा वज़नी नहीं होगी और अल्लाह गन्दी बातें करनेवाले और बेहूदा आदमी को सख़्त नापसन्द करता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) का बयान है कि नबी (सल्ल॰) से पूछा गया, सबसे ज़्यादा इनसानों को जन्नत में दाख़िल करनेवाली चीज़ क्या है? नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—"तक़्वा और ख़ुशअख़लाक़ी।"

एक दूसरी हदीस में ख़ुदा के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने फ़रमाया, जिसके बयान करनेवाले हज़रत अबू-ज़र ग़िफ़ारी (रज़ि॰) हैं—

"नेकी के किसी काम को हक़ीर न समझो चाहे वह नेक काम यह हो कि तुम अपने भाई से ख़ुशमिज़ाजी से मिलो।"

(हदीस : मुस्लिम)

यानी मुसलमान का मुसलमान से मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ मिलना बहुत बड़ी नेकी है। हमें इस अमल को अपनाना चाहिए और दुनिया और

आख़िरत में अल्लाह से अज्र की उम्मीद रखनी चाहिए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"तुम सब में मुझको ज़्यादा प्यारा और आख़िरत में सबसे ज़्यादा मुझसे क़रीब वह आदमी होगा, जिसके अख़लाक़ अच्छे हों और तुम सब में मुझको ज़्यादा बुरा लगनेवाला और आख़िरत में मुझसे सबसे दूर रहनेवाला वह आदमी है जिसके अख़लाक़ बुरे हों।"

(बहिश्ती ज़ेवर)

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ईमानवालों में ज़्यादा पक्के ईमानवाले वे लोग हैं जो अख़लाक़ में ज़्यादा अच्छे हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

लड़ाई-झगड़े से परहेज़

जब दो बरतन पास-पास रखे होते हैं तो खनकते ज़रूर हैं। इसी तरह क़रीब रहनेवाले लोगों में कभी-कभी किसी बात पर गरमा-गरमी हो जाती है। एक ने दूसरे से कोई सख़्त बात कह दी और बस झगड़ा शुरू हो गया। लेकिन याद रखिए लड़ाई-झगड़ा ख़ुदा को सख़्त नापसन्द है और क़ुरआन मजीद में झगड़ालू आदमी की बहुत मज़म्मत की गई है। इसके बरख़िलाफ़ बरदाश्त करने और झगड़े से बचने को पसन्द किया गया है। अगर अपने मालिक की इस बात को याद रखा जाए तो झगड़ा शुरू ही न होगा। कभी शुरू भी हो गया तो यह बात याद आने पर बहुत आसानी से ख़त्म हो जाएगा और सब सुख-चैन और शान्ति की ज़िन्दगी गुज़ारने लगेंगे। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बार नबी (सल्ल॰) ने अब्दुल-क़ैस नामी क़बीले के एक आदमी से फ़रमाया—

"तुम्हारे अन्दर दो आदतें ऐसी हैं, जिनको अल्लाह पसन्द करता है, एक बरदाश्त और दूसरी तमकिनत (स्वाभिमान)।"

(हदीस : मुस्लिम)

यह एक बहुत बड़ी ख़ुशख़बरी थी जो उनको सुनाई गई कि लड़ाई-झगड़े

के वक़्त बुर्दबारी से काम लेना अच्छी ख़ूबी है। यह ख़ूबी अल्लाह को बहुत पसन्द है। एक और हदीस में नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"हज़रत मूसा (अलैहि०) ने अल्लाह से पूछा, ऐ मेरे रब! आपके बन्दों में कौन सबसे ज़्यादा प्यारा है? अल्लाह ने कहा, वह जो बदला लेने की ताक़त रखने के बावजूद माफ़ कर दे।"

(हदीस : मिशकात)

मतलब यह है कि अगर सिर्फ़ बुराई ख़त्म करने और झगड़े से बचने के लिए कोई आदमी नर्म दिली और बुर्दबारी अपनाता है तो ऐसा आदमी ख़ुदा को बहुत प्यारा लगता है। क्या अच्छा हो कि हम जज़्बात में आकर सख़्त बरताव करने से परहेज़ करें। अगर ऐसा करेंगे तो बहुत से झगड़े आप-से-आप ख़त्म हो जाँएगे। इस बात के सुबूत के लिए यह क़िस्सा याद रखने के लायक़ है।

मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह०) अपने ज़माने के बहुत बड़े आलिम और बड़ी सलाहियतवाले बुज़ुर्ग थे। एक बार वे किसी जलसे के सिलसिले में जौनपुर जानेवाले थे कि उन्हें एक ख़त डाक से मिला। खोलकर पढ़ा तो लिखा था, तुम जुलाहे हो, काफ़िर हो, जाहिल हो।

मौलाना ने ख़त सम्भालकर रख लिया और जब जौनपुर पहुँचे तो वअज़ (उपदेश) की महफ़िल में लोगों को ख़त सुनाया और कहा कि इस में लिखा है कि तुम जुलाहे हो, काफ़िर हो, जाहिल हो। भई अगर मैं जुलाहा हूँ तो इसमें क्या हर्ज है, मैं यहाँ शादी करने तो नहीं आया हूँ। मैं तो अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) की बातें सुनाने आया हूँ। फिर यह तो अल्लाह की मरज़ी है जिसको चाहे जहाँ पैदा कर दे, सारी बात तो अमल की है जिसका अमल अच्छा है वही आदमी सबसे अच्छा है।

कितने ही हमारे दीनी बुज़ुर्ग हैं जो लोहार, बढ़ई, धुनिया वग़ैरा थे। कौन नहीं जानता कि हज़रत ज़करिया (अलैहि०) लोहार थे। दुनिया के दूसरे बहुत से आदमी भी जो बाद में ऊँचे मरतबे पर पहुँचे मामूली दर्जे के थे। स्टालिन मोची का बेटा था, मुसोलिनी लोहार का बेटा था। क़ुतुबुद्दीन ऐबक, जो

दिल्ली का बादशाह हुआ, अल्तमश का ग़ुलाम था। मौलाना ने कहा कि ख़त लिखनेवाले ने लिखा है कि तुम काफ़िर हो। इसमें क्या बात है, मैं अभी तुम्हारे सामने शहादत का कलिमा (अशहदु अल्ला-इला-ह इल्लल्लाहु व अशहदु अन-न मुहम्मदन अब्दुहू व रसूलुहू) पढ़ता हूँ और लिखा है कि तुम जाहिल हो, मैं आप सबके सामने इक़रार करता हूँ कि मैं जाहिल हूँ। देखिए अगर मौलाना चाहते तो झगड़ा खड़ा भी कर सकते थे। मगर नहीं, आपने निहायत हिक्मत और बुर्दबारी (सहनशीलता) से झगड़े को ख़त्म कर दिया और अपने पीछे सख़्ती के बजाय ख़ैरख़ाही और दिलसोज़ी का नमूना छोड़ गए कि हम भी इस डगर को अपनाएँ। इस्लामी अख़लाक़ यही है।

इस्लाम की हमेशा से यही तालीम है कि कभी किसी बुरी बात से ज़बान गन्दी न करें। दूसरों की बुराई को न उछालें, चुग़ली न खाएँ, शिकायतें न करें, दूसरों की नक़लें न उतारें, किसी की हँसी न उड़ाएँ, अपनी बड़ाई न जताएँ, कट-हुज्जती (फ़ुज़ूल की बहसों) से बचें, हमेशा दरमियानी आवाज़ से बोलें, ख़ामख़ाह चीख़-चीख़कर कमरे को सिर पर न उठाएँ। क़ुरआन मजीद में है कि सबसे ज़्यादा नागवार गधे की आवाज़ है और ऐसी ही आवाज़ों से झगड़े खड़े होते हैं। इनसे बचना चाहिए।

क़ुरआन मजीद में झगड़ालू आदमी की बहुत मज़म्मत की गई है। इसके बरख़िलाफ़ सब्र करनेवाले, शुक्र करनेवाले, बुर्दबार और झगड़े से परहेज़ करनेवाले आदमी को ख़ुदा पसन्द करता है, क्योंकि इससे समाज में अमन और भलाई का माहौल पैदा होता है जो तामीर (निर्माण) की ज़मानत देता है। अगर कोई इनसान हक़ पर होने के बावजूद सिर्फ़ बुराई दूर करने और लड़ाई-झगड़े से बचने के लिए अपना हक़ छोड़ दे और सुलह कर ले तो उसके लिए प्यारे नबी (सल्ल०) की बड़ी ख़ुशख़बरी है। हज़रत अबू-उमामा (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

> "मैं उस आदमी को जन्नत के किनारों पर घर दिलवाने की ज़मानत देता हूँ, जो झगड़े से दरगुज़र करे, चाहे वह हक़ पर हो।"
>
> (हदीस : अबू-दाऊद)

सोचिए जिस इनसान को जन्नत के किनारे पर घर दिलवाने की ज़मानत

अल्लाह के नबी (सल्ल॰) ले रहे हों उसकी ख़ुशक़िस्मती का क्या ठिकाना। बस ज़रा दिल मारने का मामला है। अगर सामनेवाला कुछ सख़्त बात कह रहा है लेकिन आप उसके लिए उलट कर वैसा ही जवाब नहीं देते कि इस तरह का अमल ख़ुदा को पसन्द नहीं है तो यह बात दुनिया में भी सुख-चैन और राहत की है और आख़िरत के लिए भी ख़ुशी का सबब है। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है—

"सबसे वज़नी चीज़ जो क़ियामत के दिन मोमिन की तराज़ू में रखी जाएगी वह उसका अच्छा अख़लाक़ होगा और अल्लाह उस आदमी को बहुत नापसन्द करता है जो ज़बान से बेहयाई की बात निकालता है और बद्ज़बानी करता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

इस हदीस के आईने में हम आज भी अपना चेहरा देख सकते हैं।

रास्ते से तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ को हटाना

रास्ते से तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ को हटाना ईमान की आख़िरी क़िस्म है, मगर है बहुत अहम। रास्ते में कोई ऐसी चीज़ पड़ी हो जिससे आने-जानेवालों को तकलीफ़ पहुँचने का अन्देशा हो, मिसाल के तौर पर कोई काँटा, कील, पत्थर, केले का छिलका जिससे पैर फिसलने का ख़तरा हो तो उसको रास्ते से हटा देना नेकी का काम है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) से रिवायत है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"रास्ते से गन्दगी और तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ को दूर कर दो यह भी सदक़ा है।" (हदीस : बुख़ारी)

एक और हदीस में नबी (सल्ल॰) ने यह क़िस्सा बयान किया कि एक आदमी ने रास्ता चलते हुए एक काँटेदार टहनी ज़मीन पर पड़ी हुई देखी और लोगों को तकलीफ़ से बचाने की ख़ातिर उसे रास्ते से हटा दिया, तो अल्लाह तआला ने उसके अमल को क़बूल फ़रमाकर उसकी मग़फ़िरत (बख़्शिश) कर दी। एक और हदीस में है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "मैंने ऐसे इनसान को जन्नत में चलते-फिरते देखा है।" (हदीस : मुस्लिम)

इन हदीसों से मालूम होता है कि रास्तों और गलियों को साफ़-सुथरा

रखने और लोगों को तकलीफ़ से बचाने की इस्लाम में कितनी अहमियत है। हालाँकि आम लोगों की नज़र में रास्ते से ईंट हटा देना एक मामूली काम है, लेकिन यही काम खुदा की नज़र में ऐसे आदमी की अहमियत बढ़ानेवाला है; जो रास्ते की सफ़ाई का ख़याल इसलिए रखता है कि लोगों को तकलीफ़ न हो।

लेकिन कुछ आदमी इसका उलट करने को तैयार रहते हैं। वे कितना बुरा करते हैं, आप सोच सकते हैं। रास्तों में भैंस बाँधना, अपनी सवारी को आड़ी-तिरछी खड़ी करना, जिससे चलनेवालों को परेशानी उठानी पड़ती है। याद रखिए जिस काम से किसी दूसरे को तकलीफ़ पहुँचे गुनाह है; हम सब को इससे बचना चाहिए।

इसी तरह सड़क पर आने-जाने के जो क़ायदे और नियम मुक़र्रर किए गए हैं वे इसी लिए होते हैं कि आने-जानेवालों को तकलीफ़ न हो। लेकिन अगर कोई उनकी पाबन्दी नहीं करता तो ज़ाहिर है कि उससे बदनज़्मी पैदा हो जाती है। मिसाल के तौर पर एक उसूल बनाया गया है कि अपने बाएँ को चलो और हम कभी बाएँ कभी दाएँ चलते हैं तो इससे सभी को परेशानी होगी, दोहरा गुनाह होगा। एक तो लोगों को तकलीफ़ पहुँचाने का दूसरा नज़्म-ज़ब्त में बाधा डालने का। हमें इन बातों से बचना चाहिए।

रास्ते के हुक़ूक़

आदमी को अपनी ज़रूरतों की वजह से इधर-उधर आना-जाना पड़ता है। ऐसे वक़्त भी हमें वक़ार और संजीदगी अपनानी चाहिए। मुख़्तसर यह कि रास्ते में चलते वक़्त नीचे लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए।

● निगाहें नीची रखिए ● तकलीफ़ देनेवाली चीज़ों को रास्ते से हटा दीजिए ● सामने से आनेवाले को सलाम भी कीजिए और सलाम का जवाब भी दीजिए ● भूले-भटकों की रहनुमाई कीजिए ● रास्ते में हमेशा अच्छे आदमी का साथ पकड़िए ● बुरे लोगों के साथ चलने से परहेज़ कीजिए ● ग़ैर-औरत और ग़ैर-मर्द साथ-साथ मिलकर न चलें ● शरीफ़ औरतें जब किसी ज़रूरत से बाहर निकलें तो बुरक़ा या चादर से अपने

जिस्म, लिबास और ज़ेबो-ज़ीनत (शृंगार) की हर चीज़ अच्छी तरह छिपा लें और चेहरे पर नक़ाब डाल लें ● औरतें फैलनेवाली खुशबू लगाकर रास्ते पर न चलें ● कोई ऐसा ज़ेवर पहनकर न चलें जिसमें चलते वक़्त झनकार पैदा हो ● एक जूता पहनकर कभी न चलें। (आदाबे-ज़िन्दगी)

ज़रूरतमन्द की मदद करना

कुछ लोगों के आमदनी के साधन बहुत महदूद (सीमित) होते हैं। वे दिन-भर मेहनत करके इतना भी नहीं कमा पाते हैं कि अपने घर की ज़रूरतों को भी पूरा कर सकें। ऐसे लोगों को अकसर किसी रुपये-पैसेवालों से क़र्ज़ लेना पड़ता है। ऐसे लोगों की मदद करना और वक़्त पड़ने पर उनको क़र्ज़ देना बड़े सवाब का काम है। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) से रिवायत है कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"हर क़र्ज़ सदक़ा है।" (हदीस : तबरानी)

मतलब यह है कि मालदार और खुशहाल लोग अगर ग़रीब आदमी को क़र्ज़ दें तो यह बड़े सवाब का काम है। वे अल्लाह से इसका अज्र पाएँगे। यह इसलिए कि उसने ग़रीब की मुश्किल आसान कर दी तो खुदा क़र्ज़ देनेवाले की मुश्किल क़ियामत के दिन आसान कर देगा।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) से एक रिवायत यह भी है कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"जो मुसलमान किसी मुसलमान को एक बार क़र्ज़ देगा तो उसको इतना सवाब मिलेगा कि मानो उसने दो बार इतनी रक़म खुदा की राह में दी।" (हदीस : इब्ने-माजा)

अपने पास से रुपया-पैसा निकालकर किसी को पकड़ा देना बड़े दिल-गुर्दे का काम है। वही लोग ऐसा कर सकते हैं जो अल्लाह पर भरोसा करते हैं। उनके दरजों को बुलन्द करने का यह तरीक़ा अल्लाह ने निकाला है कि उनके सवाब में इज़ाफ़ा कर दिया जाएगा। मगर इसमें यह बात याद रखनी चाहिए कि क़र्ज़े-हसना हो यानी बिना सूदी क़र्ज़ हो और तंगदस्त क़र्ज़दार को परेशान करने की नीयत भी न हो ऐसे लोगों के लिए अच्छे बदले की

ख़ुशख़बरी है। हज़रत हुज़ैफ़ा बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

"तुमसे पहले जो (मुसलमान) गुज़रे हैं उनमें से एक मुसलमान के पास (मरने के बाद) फ़रिश्ते पहुँचे। उन्होंने पूछा, तुमने दुनिया में कोई अच्छा काम किया है? उसने कहा, नहीं। फ़रिश्तों ने कहा, याद करो, अपनी याददाश्त पर ज़ोर डालो! कोई काम किया हो तो बताओ? उसने कहा, मैं लोगों को क़र्ज़ दिया करता था और अपने मुलाज़िमों को हिदायत करता था कि अगर क़र्ज़दार तंगदस्त हो और मुक़र्रर वक़्त पर क़र्ज़ वापस न कर सके तो उसको और मुहलत दे देना और अगर क़र्ज़दार क़र्ज़ वापस करने की क़ुदरत (सकत) रखता हो तो उसके साथ नर्मी से पेश आना। नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि अल्लाह ने फ़रिश्तों से कहा, इसकी ग़लतियों को माफ़ कर दो।" (हदीस : बुख़ारी)

अल्लाह को उसका यह अमल पसन्द आ गया। बस इसी से उसका बेड़ा पार हो गया। यह बात पढ़ने से ज़्यादा समझने की है, ताकि इस पर अमल किया जा सके। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया–

" जो आदमी किसी तंगदस्त को मुहलत दे, या उसके क़र्ज़ में कमी कर दे। अल्लाह उसको ऐसे दिन अपने अर्श की छाया में रखेगा, जिस दिन उसकी छाया के सिवा कोई छाया न होगी।"

(हदीस : तिरमिज़ी)

इन हदीसों के साथ ही क़र्ज़ लेनेवालों को भी चाहिए कि वे क़र्ज़ उतारने की फ़िक्र में रहें, ख़ामख़ाह रुपये होते हुए रुपये न रोकें क्योंकि अगर जान बूझकर कोई ऐसा करेगा तो क़ियामत में उसके लिए यह बात भारी पड़ जाएगी। जैसा कि नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है–

"वह आदमी जिसने ख़ुदा की राह में जान दी है उसका हर गुनाह माफ़ हो जाएगा, सिवाय क़र्ज़ के।" (हदीस : मुस्लिम)

अब देखिए कि जान कितनी प्यारी चीज़ है और आदमी ख़ुदा की राह में उसे क़ुरबान कर रहा है जिसके लिए जन्नत की ख़ुशख़बरी दी गई है। लेकिन अगर किसी के ऊपर किसी का क़र्ज़ है और देकर नहीं आया है तो वह माफ़ नहीं होगा। क्योंकि यह बन्दों के हक़ों से ताल्लुक़ रखता है। जब तक क़र्ज़ देनेवाला माफ़ न करे, उस वक़्त तक अल्लाह तआला भी माफ़ नहीं करेगा। क़र्ज़ की अदायगी में टाल-मटोल नहीं करनी चाहिए। एक और जगह नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो लोगों का माल (क़र्ज़ के तौर पर) ले और वह नीयत उसके अदा करने की रखता हो, तो अल्लाह उस की तरफ़ से अदा कर देगा और जिस आदमी ने माल (क़र्ज़ के तौर पर) लिया और नीयत अदा करने की नहीं रखता तो अल्लाह तआला उस आदमी को इसकी वजह से तबाह कर देगा।" (हदीस : बुख़ारी)

यानी अगर आदमी क़र्ज़ अदा करने की नीयत रखता है तो अल्लाह ऐसा इन्तिज़ाम कर देगा कि क़र्ज़दार एक-न-एक दिन अपने क़र्ज़ से छुटकारा पा लेगा। इसके बरख़िलाफ़ जिसकी नीयत क़र्ज़ अदा करने की न होगी, वह दुनिया में भी मुश्किलों में फँसा रहेगा और आख़िरत में भी पछताएगा।

मेहमान की इज़्ज़त

लोगों को अकसर अपने काम के सिलसिले में एक जगह से दूसरी जगह और एक शहर से दूसरे शहर में आना-जाना पड़ता है। और कभी-कभी एक दूसरे के यहाँ ठहरना भी होता है। जो लोग इस तरह आते और ठहरते हैं, वे मेहमान कहलाते हैं। मेहमान की इज़्ज़त और मुनासिब ख़ातिरदारी भी दीन का एक हिस्सा है, जिसकी इस्लाम में बहुत ताकीद की गई है। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) बयान करते हैं कि प्यारे नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"जो आदमी अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो, उसको चाहिए कि वह अपने मेहमान की इज़्ज़त (सम्मान) करे।"
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

मेहमान की इज़्ज़त का मतलब यह है कि ख़न्दा-पेशानी और ख़ुशी-ख़ुशी

मेहमान का आदर-सत्कार किया जाए। उसको इज़्ज़त से बिठाया जाए। उसके आराम का ख़याल रखा जाए। खाने का वक़्त हो तो अपनी हैसियत के मुताबिक़ खाने से उसका सत्कार किया जाए। हमारे सरदार नबी (सल्ल॰) ख़ुद भी मेहमान का बड़ा इकराम (सत्कार) किया करते थे और महमानों के लिए दस्तरख़ान हमेशा खुला रखते। अबू-बसरा ग़िफ़ारी (रज़ि॰) का बयान है कि उस ज़माने में जब मैं मुसलमान नहीं हुआ था, मैं मदीना में नबी (सल्ल॰) का मेहमान हुआ। रात को मैंने तमाम बकरियों का दूध निकाला और सब पी गया। रात को इसके बावजूद कि तमाम घरवाले भूखे ही सोए, मगर नबी (सल्ल॰) ने मुझे कुछ भी नहीं कहा।

एक बार एक यहूदी नबी (सल्ल॰) का मेहमान हुआ। वह सारे घर का खाना अकेला खा गया। रात को उसे बदहज़्मी हो गई। उसने शरारत में नबी (सल्ल॰) के पास बिस्तर पर ही पाख़ाना कर दिया और सुबह होते ही वहाँ से रवाना हो गया। नबी (सल्ल॰) जब आए तो मेहमान को न पाने पर बहुत अफ़सोस किया और ख़ुद अपने मुबारक हाथों से गन्दगी को साफ़ करना शुरू किया। इत्तिफ़ाक़ की बात वह आदमी अपनी तलवार भूल गया था, रास्ते में तलवार याद आई। वह उसको लेने के लिए वापस हुआ। नबी (सल्ल॰) ने उसको देखा तो निहायत प्यार से उसकी मिज़ाजपुर्सी की। आप (सल्ल॰) की मेहमान-नवाज़ी और अच्छे अख़लाक़ को देखकर वह मुसलमान हो गया।

शिहाब-बिन-इबाद (रज़ि॰) कहते हैं कि क़बीला अब्दुल-क़ैस का एक दल प्यारे नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में इस्लाम लाने के मक़सद से मदीना आया। नबी (सल्ल॰) ने अनसार की तरफ़ मुतवज्जोह होकर फ़रमाया कि "अपने इन भाइयों का आदर-सत्कार करो। ये इस्लाम लाने में भी तुम्हारे ही जैसे हैं और चेहरे-मुहरे के लिहाज़ से भी तुम से मिलते-जुलते हैं। ये लोग बग़ैर किसी जब्र और दबाव के ख़ुशी-ख़ुशी ईमान लाए हैं, जबकि दूसरे लोगों ने इस्लाम क़बूल करने से इनकार कर दिया यहाँ तक कि जंग के मैदान में मारे गए।"

दूसरे दिन सुबह को नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों से पूछा कि तुम्हारे अनसारी भाइयों ने तुम्हारी मेहमानदारी और ख़ातिरदारी कैसी की? उन्होंने

कहा, "ये बेहतरीन भाई हैं। इन्होंने हमारे लिए आराम देनेवाले बिस्तर फ़राहम किए, बेहतरीन खाना खिलाया और रात में और सुबह को ये लोग हमें हमारे रब की किताब और नबी (सल्ल०) के तरीक़े की तालीम देते थे।"

यह सुनकार नबी (सल्ल०) बहुत ख़ुश हुए। आप समझे क्यों? यह इसलिए कि उन्होंने मेहमान-नवाज़ी का हक़ पूरी तरह अदा कर दिया था। एक और इस से भी अजीब क़िस्सा सुनिए—

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) ने बयान किया कि एक मरतबा प्यारे नबी (सल्ल०) के यहाँ एक मेहमान आया। नबी (सल्ल०) ने घर में मालूम कराया कि कुछ हो तो लाओ! मगर वहाँ से जवाब आया कि पानी के सिवा कुछ नहीं है। तब नबी (सल्ल०) ने लोगों से कहा कि कौन है जो इस मेहमान को आज रात का खाना खिलाएगा? अनसार में से एक आदमी ने कहा, ऐ अल्लाह के नबी! मैं खिलाऊँगा। वह मेहमान को लिए हुए अपने घर गए और बीवी से कहा, ये नबी (सल्ल०) के मेहमान हैं, इनकी ख़ातिर (आदर) करो। क्या तुम्हारे पास कुछ है? उन्होंने कहा सिर्फ़ बच्चों का खाना है और बच्चों ने अभी खाया नहीं है। अनसारी ने अपनी बीवी से कहा कि बच्चों को किसी तरह बहला-फुसलाकर सुला दो और जब मेहमान खाना खाने बैठे तो चिराग़ बुझा देना और कुछ ऐसा करना कि मेहमान यह समझे कि हम दोनों भी खाने में शरीक हैं। चुनाँचे वे सब लोग खाना खाने बैठे। मेहमान तो पेट भरकर उठा लेकिन अनसारी और उनके बीवी-बच्चों ने भूखे रहकर रात गुज़ारी। जब सुबह को ये लोग नबी (सल्ल०) के पास पहुँचे तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम दोनों मियाँ-बीवी ने मेहमान के साथ जो सुलूक किया उससे अल्लाह बहुत ख़ुश हुआ।"

यह ईसार (त्याग) का बेहतरीन नमूना था कि आदमी के पास सिर्फ़ अपनी ज़रूरत भर खाना है लेकिन वह अपने ऊपर मेहमान को तरजीह देता है और ख़ुद भूखा रहकर उसका पेट भरता है। एक दिन के न खाने से वे मर तो नहीं गए मगर अपने ख़ुलूस की मेहमान-नवाज़ी से अपने रब को ख़ुश कर दिया। (हदीस : बुख़ारी)

दुआ मोमिन का असल सरमाया

आदमी सरासर मुहताज है। उसके अन्दर इन्तिहाई बेचारगी है। वह एक क़दम उठाता है तो दूसरा क़दम आगे रखने का पता नहीं कि रखा भी जाएगा या नहीं। कोई कारोबार करता है तो यह मालूम नहीं कि लाभ होगा या नुक़सान। खेत में बीज डालकर आता है लेकिन यह यक़ीन से नहीं कहा जा सकता कि उग भी आएगा या नहीं। लेकिन अल्लाह जिसके कब्ज़-ए-क़ुदरत में सब कुछ है जो हर मुश्किल को आसान कर सकता है, हर मुसीबत को टाल सकता है, उसी का यह फ़रमान है—

"और फ़रमाया तुम्हारे रब ने कि मुझसे दुआ करो, मैं क़बूल करूँगा।" (क़ुरआन, सूरा-40 मोमिन, आयत-60)

दुआ का अर्थ है माँगना। ख़ुदा कहता है कि मुझसे माँगो मैं दूँगा। बन्दा जब अपने रब के आगे अपनी ज़रूरतें पेश करता है और बेकसी और बेचारगी की हालत में उसे पुकारता है तो इस तरह हक़ीक़त में वह ख़ुदा की ख़ुदाई और अपनी बन्दगी का इक़रार करता है तो उसको भी रहम आ जाता है। किसी को रोज़ी की, नौकरी की, मकान की, औलाद की ज़रूरत है वह अल्लाह के सामने रोता है, गिड़गिड़ाता है तो वह अता कर देता है। इन चीज़ों के अलावा अगर उससे अक़्ल, हिकमत, सच बोलने और हलाल खाने की दुआ माँगें तो वे भी मिलेंगी। यह मैंने कोई नई बात नहीं बताई बल्कि हम लोगों का बार-बार का तजरिबा है कि जब दिल की गहराई से और पूरे यक़ीन के साथ कोई दुआ उस सबसे बड़े करीम (दयालु) से माँगी जाती है तो क़बूल होने में देर नहीं लगती। लेकिन शर्त यह है कि दुआ दिल के ख़ुलूस और पाकीज़ा नीयत से माँगी जाए और इस यक़ीन के साथ माँगी जाए कि जिस ख़ुदा से आप माँग रहे हैं वह आपके हालात का पूरा-पूरा इल्म रखता है और आप पर बहुत ज़्यादा मेहरबान भी है। वही तो है जो अपने बन्दों की पुकार सुनता है और उनकी दुआएँ क़बूल करता है। हदीस में आया है कि "दुआ दिल की गहराई से माँगो क्योंकि ख़ुदा ऐसी दुआ क़बूल नहीं करता जो ग़ाफ़िल और बेपरवाह दिल से निकली हो।" (हदीस : तिरमिज़ी)

प्यारे नबी (सल्ल०) ने एक बार ऐसे तीन दोस्तों का क़िस्सा सुनाया, जो एक अंधेरी रात में एक ग़ार (गुफ़ा) के अन्दर फंस गए थे। उन लोगों ने दिल के पूरे एहसास और गहराई के साथ अपने मुख़्लिसाना अमल का वास्ता देकर दुआ की और अल्लाह ने अपनी रहमत से उनको मुसीबत से निकाल दिया।

घटना यह है कि एक रात तीन साथियों ने एक ग़ार में पनाह ली। ख़ुदा का करना कि पहाड़ से एक भारी चट्टान फिसलकर ग़ार के मुँह पर आ पड़ी और ग़ार का द्वार बन्द हो गया और निकलने का रास्ता भी न रहा। उन्होंने कोशिश भी बहुत की मगर वह चट्टान इतनी भारी थी कि उनसे टस-से-मस न हो सकी। आख़िरकार मशवरा यह हुआ कि अल्लाह से अपने-अपने किसी ख़ुलूस से भरे हुए अमल का वास्ता देकर दुआ करो शायद ख़ुदा सुन ले और इस मुसीबत से नजात मिल जाए।

चुनाँचे एक ने कहा कि मैं जंगल में बकरियाँ चराया करता था और उसी पर गुज़र-बसर करता था। जब मैं जंगल से वापस आता तो सबसे पहले अपने बूढ़े माँ-बाप को दूध पिलाता और फिर अपने बच्चों को। एक दिन मैं देर से आया, बूढ़े माँ-बाप सो चुके थे। बच्चे जाग रहे थे और वे भूखे थे, लेकिन मैंने यह गवारा न किया कि माँ-बाप से पहले बच्चों को दूध पिलाऊँ और यह भी अच्छा न लगा कि माँ-बाप को जगाकर तकलीफ़ दूँ। फिर तो मैं रातभर दूध का प्याला लिए उनके सिरहाने खड़ा रहा। बच्चे मेरे पैरों में लिपट-लिपटकर रोते रहे लेकिन मैं सुबह तक इसी तरह खड़ा रहा। ऐ मेरे अल्लाह! मैंने यह अमल ख़ालिस तेरे लिए किया! तू इसकी बरकत से ग़ार के मुँह से इस पत्थर को हटा दे और फिर चट्टान इतनी हट गई कि आसमान नज़र आने लगा।

दूसरे ने कहा कि मैंने कुछ मज़दूरों से काम लिया और सबको मज़दूरी दे दी लेकिन एक आदमी अपनी मज़दूरी छोड़कर चला गया। कुछ अर्से के बाद जब वह मज़दूरी लेने आया तो मैंने उससे कहा कि ये गाएँ, बकरियाँ और नौकर चाकर तुम्हारे हैं, ले जाओ। वह बोला ख़ुदा के लिए मज़ाक़ न करो। मैंने कहा मज़ाक़ नहीं है, अस्ल में जो रक़म तुम छोड़कर गए थे मैंने

उसको कारोबार में लगाया। ख़ुदा ने उसमें बरकत दी जो तुम्हारे सामने है। तुम इसे ले जाओ यह सब तुम्हारा है। वह आदमी सब कुछ लेकर चला गया। ऐ अल्लाह! अगर मेरा यह अमल तेरी रिज़ा (ख़ुशनूदी) के लिए था तो इसकी बरकत से इस ग़ार के मुँह से चट्टान को हटा दे। ख़ुदा के रहम-करम से चट्टान कुछ और हट गई।

तीसरे ने कहा कि मेरे चचा की लड़की थी, जिससे मुझे ग़ैर-मामूली मुहब्बत थी। उसने अपनी किसी मजबूरी में मुझसे कुछ रक़म माँगी। मैंने इस शर्त के साथ रक़म मुहैया कर दी कि वह मेरी ख़ाहिश पूरी करेगी। लेकिन जब मैं अपनी ज़रूरत पूरी करने उसके पास बैठा तो उसने कहा कि ख़ुदा से डरो और इस काम से बाज़ रहो। मैं फ़ौरन उठ बैठा और मैंने वह रक़म भी उसी को दे दी। ऐ ख़ुदा! तू ख़ूब जानता है कि मैंने यह सब कुछ तेरी ख़ुशनूदी के लिए किया था, तू इस की बरकत से ग़ार के मुँह को खोल दे। ख़ुदा ने उन तीनों के ख़ुलूस की बदौलत ग़ार का मुँह खोल दिया और उन्हें मुसीबत से नजात दे दी।

सच पूछो तो ख़ुदा ही है जो आदमी को मुसीबत और तकलीफ़ से बचाता है। दुआ बन्दे को ख़ुदा से क़रीब करती है, जब वह गिड़गिड़ाकर उससे माँगता है तो ख़ुदा की रहमत को प्यार आ जाता है और बन्दे के लिए सफलता और कामयाबी के दरवाज़े खुल जाते हैं। जैसे-जैसे बन्दा दुआ करता है, वैसे-वैसे उसके मामले ठीक होते जाते हैं।

तो जब हमें मालूम हो गया कि दुआ बन्दे को ख़ुदा से क़रीब कर देती है और जो चीज़ आदमी को अपने ख़ुदा से क़रीब करनेवाली हो, उससे ज़्यादा अहम चीज़ और क्या हो सकती है, हमें दिलो-जान से यही काम करना चाहिए और कभी मायूस नहीं होना चाहिए। दुआ के क़बूल होने के मामले में ख़ुदा पर पूरा भरोसा होना चाहिए। यह भी याद रखिए कि दुआ करनेवाला कभी भी घाटे में नहीं रहता। या तो उसकी ख़ास माँगी हुई चीज़ उसे मिल जाती है या उस दुआ की बदौलत उस पर आनेवाली मुसीबत को टाल दिया जाता है। या फिर उस दुआ को उसके लिए आख़िरत का सरमाया बना दिया जाता है। इसी लिए दुआ माँगते हुए कभी थकना नहीं चाहिए

और ज़िन्दगी की हर ज़रूरत को ख़ुदा ही से तलब करनी चाहिए। हज़रत अनस (रज़ि०) का बयान है कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तुममें से हर एक को अपनी हाजत (ज़रूरत) अपने रब से माँगनी चाहिए यहाँ तक कि जूती का तस्मा भी उसी से माँगो अगर वह टूट जाए।" (हदीस : तिरमिज़ी)

यानी ऐसी बातें जो ज़ाहिर में अपने बस में मालूम होती हैं उनको भी ख़ुदा ही से माँगनी चाहिए; क्योंकि बग़ैर उसकी तौफ़ीक़ और ताईद के हमारी कोशिशें कामयाब नहीं हो सकतीं।

नबी (सल्ल०) ने दुआ की क़बूलियत के लिए रात का पिछला हिस्सा बताया है। क्योंकि यह वक़्त सुकून का होता है, दुआ करने में दिल भी लगता है। बिस्तर से उठना, आराम को छोड़ना और उसके सामने खड़ा होना बग़ैर ख़ुलूस के मुमकिन नहीं है और ख़ुलूस के साथ माँगी हुई दुआ ज़रूर क़बूल होती है।

मक़बूल दुआएँ

प्यारे नबी (सल्ल०) का फ़रमान है कि अज़ान और इक़ामत के बीच के वक़्त की दुआ रद नहीं की जाती। हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) का बयान है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया—

"तीन दुआएँ हैं, जो ख़ास तौर पर क़बूल होती हैं, उनकी क़बूलियत में शक नहीं।

(1) औलाद के हक़ में माँ-बाप की दुआ।

(2) मुसाफ़िर और परदेसी की दुआ।

(3) मज़लूम की दुआ। (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अब्बास (रज़ि०) का बयान है कि प्यारे नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "पाँच आदमियों की दुआएँ क़बूल की जाती हैं—

(1) मज़लूम की दुआ, जब तक वह बदला न ले ले।

(2) हज करनेवाले की दुआ, जब तक वह लौटकर अपने घर न आ जाए।

(3) ख़ुदा की राह में जिहाद करनेवाले की दुआ, जब तक वह शहीद होकर दुनिया से चला न जाए।

(4) बीमार की दुआ, जब तक वह सेहतमन्द न हो जाए।

(5) एक भाई की दूसरे भाई के लिए ग़ाइबाना (पीठ-पीछे) दुआ।

यह सब बयान करने के बाद नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "और इन सब दुआओं में सबसे जल्दी क़बूल होनेवाली दुआ किसी मुसलमान भाई के लिए ग़ाइबाना दुआ है।" (मारिफ़ुल-हदीस)

इससे तरग़ीब (प्रेरणा) मिलती है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की उम्मत को अपनी दुआ में शरीक करना चाहिए। अगर सिर्फ़ अपने ही लिए दुआ माँगी तो यह कंजूसी होगी। एक हदीस में आया है कि–

"जिस आदमी ने नमाज़ पढ़ी और उसमें उम्मत के मर्द और औरतों के लिए दुआ न माँगी तो वह नमाज़ नाक़िस है।"

- एक बार एक अरबी देहाती ने नबी (सल्ल॰) के सामने यह दुआ माँगी कि ऐ अल्लाह! मुझ पर और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर रहम करना और हमारे अलावा किसी और पर रहम न फ़रमा। नबी (सल्ल॰) को यह बात बहुत नागवार गुज़री और नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि "ऐ फ़ुलाँ तूने बहुत वसीअ (विशाल) चीज़ को बहुत महदूद कर दिया।"
- एक जगह नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया, "कोई दुआ अल्लाह के बन्दे की इस दुआ से ज़्यादा पसन्दीदा नहीं कि–"ऐ अल्लाह हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की मग़फ़िरत फ़रमा दे।"
- दुआ के आख़िर में 'आमीन' ज़रूर कहना चाहिए।
- हर दुआ के शुरू में और आख़िर में दुरूद शरीफ़ जरूर पढ़ना चाहिए। हज़रत उमर (रज़ि॰) का बयान है कि दुआ आसमान और ज़मीन के बीच में लटकी रहती है। अगर दुरूद शरीफ़ न पढ़ा जाए।

दुआ क़बूल होने के मक़ाम और वक़्त

वैसे तो दुआ हर वक़्त माँगते ही रहना चाहिए लेकिन कुछ वक़्त ख़ास तौर से क़बूल होने का दर्जा रखते हैं। मिसाल के तौर पर–

- जुमा का पूरा दिन दुआ क़बूल होने और माफ़ी माँगने का दिन है। इस दिन दुरूद शरीफ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़कर दुआ करनी चाहिए। जुमे की अज़ान के बाद से अस्र और मग़रिब तक दुआ क़बूल होने की घड़ियाँ हैं।
- अरफ़ा यानी नौ (9) ज़िलहिज्जा के दिन। हदीस में है कि "बेहतरीन दुआ अरफ़ा के दिन की दुआ है।"
- अज़ान और तकबीर के बीच की दुआ रद्द नहीं की जाती है।
- रात का पिछला पहर यानी आधी रात से लेकर सुबह की अज़ान तक।
- रोज़ा इफ़्तार करने के वक़्त।
- लैलतुल-क़द्र की पूरी-की-पूरी रात।
- जिहाद और हज के सफ़र या दीन-फैलाने की वापसी तक।
- मज़लूम होने की हालत में उस मज़लूम की दुआ।

दुआ क़बूल होने के वक़्तों के साथ-साथ कुछ मक़ाम (स्थान) भी ऐसे हैं जहाँ पर दुआ क़बूल होती है। वे ये हैं—

(1) अरफ़ात (2) मुज़्दलफ़ा (3) मुल्तज़िम (4) हजरे-असवद (5) हतीम (6) मक़ामे-इबराहीम व मताफ़ (7) बैतुल्लाह पर पहली नज़र पड़ते ही जो दुआ की जाती है, वह क़बूल होती है।

प्यारे नबी (सल्ल०) की कुछ दुआएँ

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) से रिवायत है कि जब नबी (सल्ल०) को किसी बात का सदमा (दुख) होता तो आप आसमान की ओर सिर उठाकर पढ़ते—

سُبْحَانَ اللّٰهِ الْعَظِيْم **"सुबहानल्लाहिलअज़ीम"** और जब किसी ख़ास मामले में दुआ फ़रमाते तो يَاحَيُّ يَا قَيُّوْمُ **"या हय्यु या क़य्यूम"** पढ़ते। (हदीस : तिरमिज़ी)

हज़रत अनस (रज़ि०) बयान करते हैं कि नबी (सल्ल०) पर जब कोई फ़िक्र और परेशानी आती तो आप की यह दुआ होती थी।

يَاحَيُّ يَا قَيُّوْمُ! بِرَحْمَتِكَ اَسْتَغِيْثُ

"या हय्यु या क़य्यूम बि-रहमति-क अस्तग़ीसु"

ऐ ज़िन्दा व जावेद बस तेरी रहमत से मदद चाहता हूँ।"

(ज़ादुल-मआद)

हदीस की किताब 'मुसनद अहमद' में है कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अगर कोई शख़्स मुसीबत में फँस जाए तो इस तरह दुआ करे :

اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّا اِلَيْهِ رَاجِعُوْنَ اَللّٰهُمَّ أْجُرْنِىْ مُصِيْبَتِىْ وَاخْلُفْ لِىْ خَيْرًا مِّنْهَا

"इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन अल्लाहुम-म अजिर्नी मुसीबती वख़्लुफ़ ली ख़ैरममिन्हा"

'बेशक हम अल्लाह ही के हैं और हम अल्लाह ही की तरफ़ लौटनेवाले हैं। ऐ अल्लाह! मेरी मुसीबत में मुझे अज्र दे और इसके बदले मुझे उससे अच्छा बदला अता कर।" (ज़ादुल-मआद)

सूरा फ़ातिहा तो सारी दुआओं की सरताज है, जिसको अल्लाह ने सूची में सबसे पहले रखा है।

सख़्त ख़तरे के वक़्त की दुआ

हज़रत अबू-सईद ख़ुदरी (रज़ि०) का बयान है कि हम लोगों ने ख़न्दक़ की जंग के दिन नबी (सल्ल०) से अर्ज़ किया कि ऐ अल्लाह के रसूल! क्या इस नाज़ुक वक़्त के लिए कोई ख़ास दुआ है, जो हम अल्लाह के सामने अर्ज़ करें? हालत यह है कि हमारे दिल मारे दहशत के उछल-उछलकर हमारे हलक़ में आ रहे हैं। तो नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, 'हाँ' अल्लाह के सामने इस तरह अर्ज़ करो—

اَللّٰهُمَّ اسْتُرْ عَوْرَاتِنَا وَاٰمِنْ رَوْعَاتِنَا.

"अल्लाहुम्मस्तुर औरातिना व आमिन रौआतिना"

"ऐ अल्लाह! हमारी परदादारी फ़रमा और हमारी घबराहट को बेख़ौफ़ी और इत्मीनान से बदल दे।"

अबू-सईद (रज़ि॰) कहते हैं कि फिर अल्लाह ने आँधी भेजकर दुश्मनों के मुँह फेर दिए और आँधी ही से अल्लाह ने उनको शिकस्त दी।"

(हदीस : मुसनद अहमद)

रोज़मर्रा की बातें

असली ज़िन्दगी यही है कि इनसान को हर वक़्त अल्लाह का अपने साथ होने का एहसास होता रहे। जो आदमी इस एहसास से ख़ाली है, वह क़ुरआन मजीद की नज़र में ज़िन्दा नहीं बल्कि मुर्दा है। जिसको ख़ुदा के सामने हमेशा हाज़िर रहने की दौलत मिली हुई है वह सच्चा मोमिन है और यह दौलत मिलती है, प्यारे नबी (सल्ल॰) के बताए हुए रास्ते पर पूरी तरह चलने से। अगर आप हमेशा रहनेवाली ज़िन्दगी की चाहत रखते हैं तो अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) की मुबारक ज़िन्दगी से पूरा-पूरा फ़ायदा उठाएँ क्योंकि नबी (सल्ल॰) की पैरवी ही हक़ीक़ी ज़िन्दगी दिला सकती है। इतना ही नहीं बल्कि मुझे पक्का यक़ीन है कि आख़िरत की नेमतों का मिलना भी नबी (सल्ल॰) की पैरवी पर ही निर्भर है। यहाँ मैं कुछ ऐसी सुन्नतों (नबी के तरीक़ों) की तरफ़ इशारा कर रहा हूँ जो बहुत आसान हैं और जिन पर अमल करने का हर वक़्त, उम्रभर और मरने के बाद भी सवाब मिलता रहेगा।

(1) सुबह-सवेरे उठने की आदत डालिए और नमाज़ के बाद कुछ देर टहलिए सुबह का टहलना अच्छा होता है। नबी (सल्ल॰) बाग़ में टहलने को पसन्द करते थे क्योंकि सुबह की ताज़ा हवा सेहत पर बहुत अच्छा असर डालती है।

(2) सोकर उठने के बाद हाथ धोए बग़ैर पानी के बरतन में हाथ न डालिए। क्या मालूम सोने में आप का हाथ कहाँ-कहाँ पड़ा हो।

(3) पाख़ाना-पेशाब के वक़्त क़िबला की तरफ़ मुँह न करना चाहिए और न पीठ। पाख़ाना-पेशाब के बाद अपने हाथों को साबुन या मिट्टी से अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

(4) बैतुल-ख़ला (शौचालय) में बायाँ पैर रखकर अन्दर जाना चाहिए और

बाहर आते वक़्त पहले दायाँ पैर निकालना चाहिए।

(5) गुस्लख़ाने की ज़मीन पर पेशाब करने से परहेज़ कीजिए, ख़ास तौर से जब गुस्लख़ाने की ज़मीन कच्ची हो।

(6) पेशाब की छींटों से हमेशा बचना चाहिए, क्योंकि अकसर क़ब्र का अज़ाब पेशाब की छींटों से न बचने की वजह से होता है।

(7) आम रास्तों पर पाख़ाना-पेशाब के लिए न बैठिए।

(8) रोज़ाना सुबह-सवेरे नहाने की आदत डालिए।

(9) पाबन्दी के साथ मिस्वाक कीजिए। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि "अगर मुझे उम्मत की तकलीफ़ का ख़याल न होता तो मैं हर वुज़ू में उनको मिस्वाक का हुक्म देता।" एक बार नबी (सल्ल॰) के पास कुछ लोग आए। उनके दाँत पीले हो रहे थे। नबी (सल्ल॰) ने देखा तो ताकीद की कि मिस्वाक किया करो।

(10) बालों में तेल डालने और कंघा करने का एहतिमाम कीजिए।

(11) ख़ुशबू का इस्तेमाल ज़्यादा-से-ज़्यादा कीजिए। नबी (सल्ल॰) को ख़ुशबू बहुत पसन्द थी।

(12) छींकते वक़्त मुँह पर रुमाल रखिए और 'अल-हमदुलिल्लाह' ज़रूर कहिए।

(13) कमीज़, फ़ाक, कुर्ता-पजामा या शलवार पहनते वक़्त पहले दाईं आस्तीन या दायाँ पाइंचा पहनना चाहिए, फिर बाईं आस्तीन या बायाँ पाइंचा। इसी तरह जूता पहनते वक़्त पहले दायाँ पैर जूते में डाला जाए, फिर बायाँ पैर।

(14) हर इनसान से ख़ुशदिली से मिलिए। नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं कि सीधे-सादे रहो, अख़लाक़ में बीच का रास्ता अपनाओ और ख़ुश-ख़ुश और हमेशा हँस-मुख रहो।

(15) खाना हमेशा वक़्त पर खाइए, सादा खाइए, बैठकर खाइए। 'बिसमिल्लाह' पढ़कर खाइए। खाना खाने से पहले हाथों को धो लेना

चाहिए और सिर को ढक लेना चाहिए। खाना खाने के बाद कोई मसनून दुआ पढ़िए।

(16) पानी बैठकर और तीन साँस में पीना चाहिए।

(17) दोपहर का खाना खाने के बाद थोड़ी देर के लिए लेट जाना नबी (सल्ल०) का तरीक़ा यानी सुन्नत है।

(18) सूरज छिप जाने और मग़रिब की नमाज़ पढ़ने के बाद घर में दाख़िल हो जाना चाहिए। छोटे बच्चों को भी इस वक़्त घर से बाहर न निकलने दें। इस वक़्त शैतानी लश्कर इधर-उधर फैले हुए होते हैं।

(19) बाहर से घर में दाख़िल होते वक़्त जो भी छोटा-बड़ा नज़र आए उसे सलाम करना चाहिए।

(20) रात को सोने से पहले घर और कमरे के दरवाज़ों को 'बिसमिल्ला-हिर्रहमानिर्रहीम' पढ़कर बन्द करें।

(21) जिन बरतनों में खाने-पीने की चीज़ें हों उनको ढककर रखना चाहिए।

(22) जिस रौशनी से आग लगने का डर हो, उसे सोते वक़्त बुझा देना चाहिए।

(23) सोने से पहले बिस्तर को अच्छी तरह झाड़ लेना चाहिए।

(24) क़िबला की तरफ़ रुख़ करके दाएँ करवट सोना चाहिए।

(25) बिस्तर पर पहुँचकर क़ुरआन मजीद का कुछ हिस्सा ज़रूर पढ़ना चाहिए। नबी (सल्ल०) का फ़रमान है—

"जो आदमी अपने बिस्तर पर आराम करने के वक़्त अल्लाह की किताब की कोई सूरा पढ़ता है तो ख़ुदा उसके पास एक फ़रिश्ता भेजता है, जो हर तकलीफ़ पहुँचानेवाली चीज़ से उसके जाग उठने तक उसकी हिफ़ाज़त करता है। चाहे वह किसी भी वक़्त नींद से जागे। (हदीस : अहमद)

(26) रात के आख़िरी हिस्से में उठने की आदत डालिए। प्यारे नबी (सल्ल०) का मामूल (नियम) था कि आप रात के पहले हिस्से में आराम करते

और रात के आख़िरी हिस्से में उठकर ख़ुदा की इबादत में लग जाते।

(27) दुरूद शरीफ़ ज़्यादा-से-ज़्यादा पढ़िए। इसकी प्यारे नबी (सल्ल॰) ने बड़ी फ़ज़ीलत बताई है।

(28) जब कोई ख़ुशी की बात सुनें तो ख़ुदा का शुक्र अदा कीजिए। और अपनी ख़ुशी में दूसरे लोगों को भी शामिल कीजिए। ईद-बक़रीद के मौक़े पर खुलकर ख़ुशी मनाइए। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है : "ये दिन खाने-पीने, आपस में मिलकर ख़ुशी का लुत्फ़ उठाने और ख़ुदा को याद करने के हैं।" (हदीस : शरह मानी-अलआसार)

(29) कोई रंज-ग़म और दुख की ख़बर सुनें या कोई नुक़सान हो जाए या कोई दुख तकलीफ़ पहुँचे तो 'इन्नालिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़िए और सब्र अपनाइए। प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि—

"जिस मुसलमान को भी कोई दिली तकलीफ़ या जिस्मानी कष्ट और बीमारी या कोई रंज-ग़म और दुख पहुँचता है, यहाँ तक कि अगर उसे एक काँटा भी चुभ जाता है और वह इस पर सब्र करता है तो ख़ुदा उसके गुनाहों को माफ़ कर देता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(30) ग़म की ज़्यादती में कोई ऐसी हरकत न कीजिए कि जिससे नाशुक्री और शिकायत की बू (गंध) आती हो और शरीअत के ख़िलाफ़ हो। मिसाल के तौर पर किसी के मरने पर दहाड़ें मार-मारकर रोना या कपड़े फ़ाड़ लेना, चीख़ना-चिल्लाना और मातम में सिर या सीना पीटना मोमिन के लिए किसी तरह जाइज़ नहीं है। प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि "जो इनसान गिरेबान फ़ाड़ता है, गालों पर तमाचे मारता है, जाहिलों की तरह चीख़ता-चिल्लाता और बैन करता है वह मेरी उम्मत में नहीं है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

(31) दुख-दर्द में एक-दूसरे का साथ दीजिए। रंज-ग़म के मौक़े पर शरीक रहिए ताकि उनका ग़म कम हो सके। प्यारे नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि "सारे मुसलमान मिलकर एक जिस्म की तरह हैं कि अगर उसकी आँख दुखे तो सारा बदन दुख महसूस करता है और सिर में

दर्द हो तो सारा जिस्म तकलीफ़ में मुबतला हो जाता है।

(हदीस : मुस्लिम)

(32) अपने मुसलमान भाई की ज़रूरत को पूरा करना चाहिए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि—"जब तक कोई मुसलमान अपने मुसलमान भाई की हाजत और ज़रूरत पूरी करता रहता है, अल्लाह भी उसकी हाजत और ज़रूरतें पूरी करता रहता है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(33) वलीमे के मौक़े पर ग़रीबों की दावत करनी चाहिए। नबी (सल्ल॰) ने उस वलीमे को बुरा क़रार दिया है, जिसमें अमीरों को बुलाया जाए और ग़रीबों को नज़रअन्दाज़ (अनदेखा) कर दिया जाए।

(34) ख़ौफ़ और मायूसी के मौक़े पर हिम्मत न हारिए, सब्र के साथ अल्लाह से मदद माँगें। प्यारे नबी (सल्ल॰) का यही तरीक़ा था।

(35) जब आँधी या तूफ़ान आता हुआ देखें तो अल्लाह की पनाह माँगिए। हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि "जब कभी आँधी या घटा आती तो नबी (सल्ल॰) घबरा जाते और दुआ करने लगते। ख़ौफ़ की वजह से कभी उठते, कभी बैठते और जब तक पानी न बरस जाता आप (सल्ल॰) की यही हालत रहती।" मैंने पूछा कि ऐ अल्लाह के नबी! मैं लोगों को देखती हूँ कि जब वे बादल देखते हैं तो ख़ुश होते हैं कि अब पानी बरसेगा और आपको देखती हूँ कि जब आप बादल देखते हैं तो आप के चेहरे पर गिरानी और परेशानी दिखाई देने लगती है। इस पर नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आइशा! आख़िर में कैसे बेख़ौफ़ हो जाऊँ कि इस बादल में अज़ाब न होगा जबकि आद की क़ौम पर आँधी का अज़ाब आ चुका है। आद की क़ौम ने जब इस बादल को देखा था तो कहा था कि यह बादल हम पर पानी बरसाएगा।" (हदीस : बुख़ारी)

(36) जब भी कहीं आग लगती देखें तो बुझाने की पूरी कोशिश करें और ज़बान से 'अल्लाहु-अकबर' कहते रहें। नबी (सल्ल॰) का फ़रमान है कि "जब आग लगती देखो तो 'अल्लाहु-अकबर' कहो, तकबीर आग

को बुझा देती है।"

(37) आपकी कोई मजलिस ख़ुदा और आख़िरत के ज़िक्र से ख़ाली नहीं होनी चाहिए।

(38) मजलिस में जहाँ जगह मिल जाए बैठ जाइए। लोगों को चीरते और कूदते-फलाँगते आगे जाने की कोशिश न कीजिए।

(39) मजलिस में या मस्जिद में कहीं भी पहले से बैठे हुए आदमी को उठाकर उसकी जगह बैठने की कोशिश न कीजिए।

(40) मजलिस में कुछ कहना हो तो मजलिस के सदर (अध्यक्ष) से इजाज़त लेकर कहिए। बात साफ़-साफ़ कहिए ताकि पूरी तरह सबकी समझ में आए। और जो बातें मजलिस में राज़ की हों उनको हर जगह बयान न कीजिए।

***